सर्वे भवन्तु सुखिनः

1993-2018
एनएचआरसी • पच्चीस वर्ष • असंख्य आशाएं
NHRC • Twenty Five Years • Billion Hopes

मानव अधिकार

नई दिशाएं

रजत जयंती विशेषांक

अंक - 15, वर्ष - 2018

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
भारत

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

मानव अधिकार : नई दिशाएं

रजत जयंती विशेषांक

अंक–15, वर्ष–2018

महात्मा गांधी

मेरे सपनों का भारत

मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें गरीब से गरीब आदमी भी यह महसूस करे कि यह उसका देश है, जिसके निर्माण में उसकी आवाज का महत्व है। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें ऊंच–नीच का कोई भेद न हो। जातियां मिल–जुलकर रहती हों। ऐसे भारत में, अस्पृश्यता व शराब तथा नशीली चीजों के अनिष्टों के लिए कोई स्थान न होगा। उसमें स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार मिलेंगे। सारी दुनिया से हमारा संबंध शांति और भाईचारे का होगा। यह है मेरे सपनों का भारत।

मानव अधिकार शपथ

मैं निष्ठापूर्वक शपथ लेता/लेती हूं कि मैं "मानव अधिकारों" अर्थात् संविधान द्वारा प्रत्याभूत अथवा संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा अंगीकृत सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों संबंधी अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों संबंधी अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा में सम्मलित प्रत्येक व्यक्ति के जीवन, समानता एवं गरिमा से संबंधित अधिकारों, जैसा भी केन्द्र सरकार के अध्यादेश द्वारा समय–समय पर भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय रूप में विनिर्दिष्ट हो, का संवर्द्धन, संरक्षण एवं समर्थन करूंगा/करूंगी।

कि, अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते समय, मैं मानव अधिकारों की जागरुकता का प्रचार–प्रसार करूंगा/करूंगी।

कि, मैं अपने संज्ञान में आने वाले, लोक सेवक द्वारा किए गए किसी भी प्रकार के मानव अधिकार उल्लंघन अथवा उसके अवप्रेरण अथवा ऐसे उल्लंघन की रोकथाम में की गई लापरवाही के विरूद्ध कार्रवाई करूंगा/करूंगी तथा/अथवा संबद्ध प्राधिकारी को सूचित करूंगा/करूंगी।

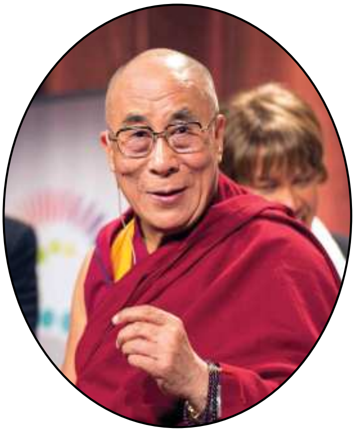

14वें दलाई लामा

जहां मानव अधिकारों का सम्मान हो,
लोगों को भोजन मिले और जहां व्यक्ति
व राष्ट्र स्वतंत्र हों, शांति वहीं स्थाई
रह सकती है।

(Peace can only last where human rights are respected, where the people are fed, and where individuals and nations are free)

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

अध्यक्ष
न्यायमूर्ति श्री एच. एल. दत्तू

सदस्य
न्यायमूर्ति श्री पी. सी. घोष
न्यायमूर्ति श्री डी. मुरुगेसन
श्रीमती ज्योतिका कालरा

महासचिव
श्री अम्बुज शर्मा, आई.ए.एस.

महानिदेशक
श्री गुरबचन सिंह, आई.पी.एस.

रजिस्ट्रार
श्री सुरजीत डे

संयुक्त सचिव
श्री दिलीप कुमार, आई.ए.एस.

संयुक्त सचिव
डॉ. रणजीत सिंह

प्रकाशक : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
मानव अधिकार भवन,
ब्लॉक–सी, जी. पी. ओ. कॉम्प्लेक्स,
आई. एन. ए., नई दिल्ली – 110023 भारत

© 2018 राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

अस्वीकरण : प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, सलाहकार मण्डल या संपादक मण्डल का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

प्राप्ति स्थान : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
मानव अधिकार भवन,
ब्लॉक–सी, जी. पी. ओ. कॉम्प्लेक्स,
आई. एन. ए., नई दिल्ली – 110023 भारत
वेबसाईट : www.nhrc.nic.in
ई–मेल : covdnhrc@nic.in

मूल्य : निशुल्क

मुद्रण एवं डिज़ाईनिंग :
डॉल्फिन प्रिन्टो ग्राफिक्स
1ई/18, चौथी मंजिल,
झंडेवालान एक्स. नई दिल्ली–110055
फोन : 011–23593541–42

मानव अधिकार : नई दिशाएं
राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

अंक– 15 वर्ष–2018

सलाहकार मण्डल

श्रीमती ज्योतिका कालरा
माननीय सदस्य, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

श्री अम्बुज शर्मा
महासचिव,
राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

डॉ. रणजीत सिंह
संयुक्त सचिव,
राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

डॉ सरोज कुमार शुक्ल
सहायक निदेशक,
राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय
हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रो. फैज़ान मुस्तफा
कुलपति, नालसार विधि
विश्वविद्यालय, हैदराबाद

प्रो. नन्द किशोर आचार्य
गांधीवादी विचारक एवं
साहित्यकार, बीकानेर

प्रो. आनन्द प्रकाश
मनोविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

श्री राहुल देव
वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक, गुरुग्राम

संपादक –डॉ. रणजीत सिंह

सह संपादक – डॉ. सरोज कुमार शुक्ल

संपादन सहयोग – श्रीमती अंजलि सकलानी, श्री अमित कुमार साव

तकनीकी सहयोग एवं कम्प्यूटरीकरण – श्रीमती सीमा शर्मा, श्री जितेन्द्र सिंह

न्यायमूलं स्वराज्यं स्यात्

अर्थात्

स्वराज के मूल में न्याय होता है।

(संदर्भ : माननीय प्रधानमंत्री द्वारा 30.09.2018 को आकाशवाणी से प्रसारित 'मन की बात' से साभार)

मानव अधिकार : नई दिशाएं

अंक–15 वर्ष–2018

अनुक्रम

दो शब्द

न्यायमूर्ति श्री एच. एल. दत्तू

अध्यक्ष, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

आमुख

श्रीमती ज्योतिका कालरा

सदस्य, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

प्रस्तावना

श्री अम्बुज शर्मा

महासचिव, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

संपादकीय

डॉ. रणजीत सिंह

संयुक्त सचिव, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

खण्ड I: संदेश

	पृष्ठ सं.
श्री रामनाथ कोविंद, माननीय राष्ट्रपति, भारत	1
श्री एम. वेंकैया नायडु, माननीय उपराष्ट्रपति, भारत	5
श्री नरेन्द्र मोदी, माननीय प्रधानमंत्री, भारत	7
श्री राजनाथ सिंह, माननीय गृहमंत्री, भारत	9

खण्ड II: मानव अधिकारों पर मेरे विचार

	पृष्ठ सं.
बौद्ध गुरू दलाई लामा	13-14
कैलाश सत्यार्थी	15-16
प्रो. गिरीश्वर मिश्र	17-18
प्रो. नन्द किशोर आचार्य	21-24
आर. के. पचनन्दा	25-26
रजनीकांत मिश्रा	27-28
जाएद राद अल हुसैन	29-30
निष्ठा सत्यम	31-32

खण्ड III
महिला सशक्तीकरण और मानव अधिकार पर केन्द्रित आलेख

	लेखक / लेखिका का नाम	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	कृपाशंकर चौबे	आदिवासी अधिकार की अग्निशिखा	35-52
2.	डॉ. विजयलक्ष्मी बरार	पूर्वोत्तर में महिला सशक्तीकरण का सच	53-58
3.	डॉ. सुप्रिया पाठक	मानवाधिकारों का सार्वभौमिक परिप्रेक्ष्य एवं स्त्री	59-68
4.	डॉ. आकांक्षा	'थर्ड जेंडर' की अस्मिता और मानवाधिकार के सवाल	69-81

खण्ड IV
मानव अधिकार और शिक्षा पर केन्द्रित आलेख

5.	डॉ. भवानी शंकर	शिक्षा और हाशिए का समाज	83-90
6.	डॉ राजेश कुमार शर्मा	शिक्षा, मानवाधिकार और गांधी	91-97
7.	फ़रहानाज़ खान	मानवाधिकार शिक्षा एवं संवेदीकरण	99-109
8.	डॉ. राजकुमार	मानव अधिकार शिक्षा : मुद्दे, चुनौतियॉं और समाधान	111-118

खण्ड V
न्याय, सुशासन और मानव अधिकार पर केन्द्रित आलेख

9.	डॉ. सुदर्शन वर्मा नितेश कुमार चतुर्वेदी	मानव अधिकारों का संवर्द्धन एवं संरक्षण : सरकार की भूमिका	121-136
10.	नम्रता वर्मा	मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्द्धन में मानव अधिकार संस्थाओं की भूमिका	137-146
11.	कृष्ण कुमार चौधरी	शासन की नीतियों में मानवाधिकारों के सरोकार और संवेदना	142-161
12.	डॉ. के. पी. सिंह	किशोर को वयस्क मानकर न्याय करने की अवधारणा : एक समालोचना	163-172
13.	राम शरण तिवारी	शासन की नीतियों में मानव अधिकारों के सरोकार और संवेदना–संदर्भः विस्थापित कश्मीरी पंडित	173-180

खण्ड VI
मीडिया और मानव अधिकार

14.	डॉ. विश्वास पटेल डॉ. तुहिना जौहरी	मानवाधिकार और मीडिया	183-192
15.	डॉ. अर्चना मिश्रा	वैश्विक परिवेश, मीडिया एवं मानव अधिकार	193-200

खण्ड VII

मानव अधिकार कुछ अन्य संदर्भों में

16.	डॉ. आलोक चान्टिया	बहुसंस्कृतिवाद और मानवाधिकार : एक अवलोकन	203-211
17.	प्रो. प्रतिभा	भारतीय बहुसंस्कृतिवाद : ऐतिहासिक परिपार्श्व और वर्तमान चुनौतियां	213-219
18.	डॉ. कमलेश कुमार	यातना के पीड़ितों के पुनर्वसन में मानवाधिकार संगठनों की चुनौतियां।	221-235
19.	शीलेन्द्र कुमार	भाषा, न्याय और मानव अधिकार	237-248
20.	श्री अग्निहोत्री	बाजार एवं मानव अधिकार	249-262

खण्ड VIII

1	मानव अधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा–पत्र	265-271

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
NATIONAL HUMAN RIGHTS COMMISSION
मानव अधिकार भवन, सी–ब्लॉक, जीपीओ कम्पलेक्स, आईएनए, नई दिल्ली–110 023
Manav Adhikar Bhawan, C-Block, GPO Complex, INA, New Delhi-110 023
Phone : 91-011-24663201, 24663202 Fax : 91-11-24651329
E-mail : chairnhrc@nic.in

Justice H.L. Dattu
Chairperson
(Former Chief Justice of India)

दो शब्द

भारतीय सभ्यता और संस्कृति विश्व में न केवल सबसे प्राचीन है, बल्कि इसमें विभिन्न विचारधाराओं, मतों और पंथों का अनोखा मेल भी है। विविधता हमारी संस्कृति की विशेषता है तथा इस विविधता का सार–तत्व प्रेम और करुणा की भावना है। हमारी संस्कृति में मानव मात्र से ही नहीं, बल्कि सभी जीवों से प्रेम करने की बात बार–बार कही गई है। कहने का अभिप्राय यह है कि सह–अस्तित्व और सहिष्णुता की भावना हमारे यहां हमेशा से रही है। हमारे यहां पूरे विश्व को ही एक परिवार या कुटुंब माना जाता है।

समकालीन विश्व में किसी राष्ट्र की नैतिक उपस्थिति का एक बुनियादी मानदंड यह है कि मानव अधिकारों के समर्थन व पोषण के प्रति वह कितना प्रतिबद्ध है। भारत में मानव अधिकार आयोग की स्थापना के तो पच्चीस वर्ष ही हुए हैं किंतु सभ्य समाज के रूप में भारत प्राचीन काल से मानव अधिकारों के प्रति जागरूक रहा है और उसके प्रति प्रकट रूप से सकारात्मक सोच रखता रहा है।

मानवीय इतिहास का एक सुदीर्घ कालखंड मानवीय सम्मान और अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष को समर्पित है। जहां भारत के प्राचीन ग्रंथ ऋगवेद में प्रकारान्तर से समानता, स्वतंत्रता जैसे अधिकारों को वर्णित किया गया है वहीं अथर्ववेद में भोजन तथा जल में सभी को समान अधिकार का समर्थन भी किया गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्रजा के सुख को ही अपना सुख समझने वाले राजा को श्रेष्ठ घोषित किया गया है–

प्रजा सुखे सुखं राज्ञं प्रजानां च हिते हितम्
नात्मप्रियं हिंत राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्।।

आधुनिक समाज में मानवाधिकारों के प्रति सजगता, सतर्कता एवं जागरूकता अपेक्षया अधिक है। इस दिशा में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग मानवाधिकारों के सजग प्रहरी की भूमिका अपनी स्थापना के समय से निभा रहा है। आयोग की एक ऐसी ही सार्थक पहल है – **मानव अधिकार : नई दिशाएं,** जो अपने 15 प्रकाशकीय वर्षों की यात्रा में मानव अधिकारों से जुड़े अनगिनत विषयों पर प्रभावी संवाद स्थापित करने में सफल रहा है। पत्रिका का रजत जयंती अंक नए कलेवर के साथ आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें गर्व तथा हर्ष की एक साथ अनुभूति हो रही है।

आशा और विश्वास है कि इस विशेष अंक के माध्यम से मानव अधिकार मात्र बौद्धिक चर्चा का विषय न रहकर सामाजिक परिवर्तन का औजार बन कर उभरेगा। सम्पादकीय टीम को बहुत–बहुत बधाई, जो सारगर्भित एवं सामाजिक आलेखों को विज्ञ विद्वानों तथा आम नागरिकों तक एक साथ पहुंचाने के कार्य में सफल रही।

(एच. एल. दत्तू)

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
NATIONAL HUMAN RIGHTS COMMISSION
मानव अधिकार भवन, सी–ब्लॉक, जीपीओ कम्पलेक्स, आईएनए, नई दिल्ली–110 023
Manav Adhikar Bhawan, C-Block, GPO Complex, INA, New Delhi-110 023
Phone : 91-1124663207, 24663208

JYOTIKA KALRA
MEMBER, NHRC

आमुख

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को वैधानिक दर्जा पाए पच्चीस साल का जीवन बहुत बड़ा नहीं माना जा सकता है पर इतना तो निश्चत है कि इतना समय किसी भी संस्था की गतिविधियों और मानवीय समाज–निर्माण की दिशा में उसके द्वारा किए कदमताल को जानने के लिए पर्याप्त है। आयोग के द्वारा किए कार्यों को लेखा–जोखा इसकी प्रगति की कहानी का बयान भर नहीं है अपितु भारतीय नागरिकों के आयोग में विश्वास की गाथा भी है। इन पच्चीस वर्षों में आयोग ने लोकतंत्र को मजबूत और टिकाऊ बनाने की दिशा में सकारात्मक पहल करते हुए उसके अनुकूल माहौल बनाने की भरसक कोशिश की है। लोकतंत्र सिर्फ जनता का, जनता के लिए और जनता के द्वारा होने वाली शासन प्रणाली ही नहीं है बल्कि यह सभी नागरिकों को समान मानने वाली श्रेष्ठ व्यवस्था भी है।

मनुष्य–मनुष्य को समान मानने का विचार हमारे देश की साहित्य–संस्कृति में पहले से मौजूद रहा है। जब कभी कोई शासन–पद्धति या मान्यताएं मनुष्यों में भेदभाव को स्वीकृति देती थी तो इसका प्रतिरोध साहित्य–संस्कृति के विभिन्न अंगों में पूर्ण रूपेण अभिव्यक्त होता था। 19वीं सदी में हिंदी के महान कवि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने प्रश्न पूछा था : "होयहिं मनुष्यहिं क्यों भये हम गुलाम वे भूप।"

अर्थात् मनुष्य होने के बावजूद ऐसा क्यों है कि हम गुलाम ही बने रहते हैं ओर वे राजा बनते रहते हैं? भारतेंदु हरिश्चंद्र कोई अपवाद नहीं थे बल्कि एक श्रृंखला के महान नायक थे। ऐसे ही तमाम समाज सुधारकों ने समाज में मौजूद विभिन्न मान्यताओं को, जो भेदभाव पर आधारित थी, उनको न केवल तर्क सहित ख़ारिज किया अपितु मानवीय गरिमा को स्थापित करने में अपना योगदान भी दिया।

लोकतंत्र की श्रेष्ठता बहुत हद तक मानव अधिकारों पर आधारित है, सबके मत को आदर देना एवं समान मानना लोकतंत्र का प्राण तत्व है। मानव अधिकार मनुष्य के

जन्म होने से ही उसके अधिकारों का शास्त्र है। लोकतांत्रिक समाज और तंत्र में भी अगर किसी व्यक्ति के साथ 'किसी भी स्तर पर अमानवीय व्यवहार या भेदभाव' होता है तो मानव अधिकार उसकी चिंता करते हुए उससे निजात दिलाने का भी भरपूर प्रयास करता है।

भारत विविधताओं का देश है लेकिन इस वैविध्य में भी अनेकता में एकता के स्वर सुनाई पड़ते हैं। इस एकता को एक सूत्र में पिरोने के लिए भारतीय भाषाओं का भी अहम् योगदान रहा है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अपनी भाषाई अस्मिता को कायम रखते हुए आम जनमानस की भाषाओं में मानव अधिकार के संवर्द्धन हेतु उत्कृष्ट साहित्य सृजन में निरन्तर प्रयासरत है।

मुझे यह बताते हुए काफी हर्ष का अनुभव हो रहा है कि आयोग पिछले 15 वर्षों से मानव अधिकारों से संबंधित समसामयिक एंव ज्वलंत मुद्दों पर "मानव अधिकार : नई दिशाएं" नाम से हिंदी जर्नल का प्रकाशन करता आ रहा है। आयोग का यह प्रकाशन न केवल मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्द्धन में अपनी प्रतिबद्धता को उजागर करता है अपितु इसने अकादमिक क्षेत्र से जुड़े हुए बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों, मीडिया के विशिष्ट प्रतिनिधियों तथा मानव अधिकार के क्षेत्र में शोध कर रहे शोधार्थियों के बीच अपनी एक अलग पहचान बनाई है।

मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि "मानव अधिकारः नई दिशाएं" का रजत जयंती विशेषांक मानव अधिकार के विभिन्न पहलुओं की जानकारी के लिए मील का पत्थर साबित होगा। मैं इस कार्य से जुड़े राजभाषा एकक के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को उनके इस उत्कृष्ट प्रयास के लिए शुभकामनाएं देती हूं।

ज्योतिका

(ज्योतिका कालरा)

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
NATIONAL HUMAN RIGHTS COMMISSION
मानव अधिकार भवन, सी–ब्लॉक, जीपीओ कम्पलेक्स, आईएनए, नई दिल्ली–110 023
Manav Adhikar Bhawan, C-Block, GPO Complex, INA, New Delhi-110 023

अम्बुज शर्मा, भा॰प्र॰से॰
महासचिव

Ambuj Sharma, IAS
Secretary General

प्रस्तावना

"जहाँ मन भयमुक्त हो और मस्तक ऊँचा रहे जहाँ ज्ञान सर्व–सुलभ हो, जहाँ विश्व संकीर्ण देशी दीवारों से संबंधों में विभक्त न हो, जहाँ शब्द सत्य के अंतस्थल से निकलते हैं।"

रवीन्द्रनाथ टैगोर

गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'गीतांजलि' में अभिव्यंजित इन पंक्तियों में मानव अधिकारों की छांव में सुरक्षित तथा संरक्षित समाज की अनुगूंज सुनाई पड़ती है जिसे मानवीय गरिमा का मूल मंत्र कहा जा सकता है। मानव अधिकारों का वैचारिक दर्शन मानव मात्र के कल्याण एवं मानवीय अस्मिता के साथ–साथ वैश्विक मूल्यों और आदर्शों के संरक्षण से जुड़ा हुआ है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा प्रकाशित **मानव अधिकार : नई दिशाएं** पिछले डेढ़ दशक से आम भारतीय जन–मानस में मानव अधिकारों की अलख जगाने में महत्त्वपूर्ण माध्यम के रूप में उभर कर सामने आया है। अपने इसी संकल्प को पुनः दोहराते हुए पत्रिका का रजत जयंती अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। यह अंक जहां एक ओर मानव अधिकार के केन्द्रीय विचार को समेटे एवं सुरक्षित रखे हुए है वहीं दूसरी ओर मानव अधिकारों के विविध आयामों पर अपनी दृष्टि को सकारात्मकता के साथ बुद्धिजीवियों के बीच परोसने में सफल भी हुई है। जहां एक ओर पत्रिका में संकलित कुछ आलेख मानव अधिकारों के मूल विचारों के साथ–साथ शिक्षा, समाज, मीडिया,

बाजार तथा विस्थापन जैसे ज्वलंत एवं समसामयिक मुद्दों पर केन्द्रित है, वहीं दूसरी ओर भारत की बहुलतावादी संस्कृति, परम्परा तथा सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों को केन्द्र में रखकर समाहित किए गए हैं जो मानव अधिकारों की सरोकारों की दृष्टि से काफी अहम कहे जा सकते हैं।

'थर्ड जेंडर' की अस्मिता और मानवाधिकार के सवाल, आदिवासी अधिकार की अग्निशिखा, किशोर को वयस्क मानकर न्याय करने की अवधारणा: एक आलोचना तथा बहुसंस्कृतिवाद और मानव अधिकार : एक अवलोकन जैसे आलेखों के माध्यम से मानव अधिकार के छिपे हुए मर्म को तलाशने एवं तराशने की कोशिश की गई है।

आयोग का पावन उद्‌देश्य तभी पूर्ण हो सकेगा जब मानव अधिकार का यह दर्शन विचार के साथ–साथ व्यवहार में, तथा चर्चा के साथ–साथ जीवन में अपनी पैठ बनाएगा। सुधी पाठकों की सधी प्रतिक्रिया के माध्यम सार्थक बहस का सूत्रपात्र होगा, इसी आशा के साथ यह अंक आपको समर्पित है।

अम्बुज शर्मा

(अम्बुज शर्मा)

Dr. Ranjit Singh, PhD (Human Rights)
Joint Secretary (P & A)

सम्पादकीय

आयोग की रजत जयंती के अवसर पर प्रकाशित 'मानव अधिकार : नई दिशाएं' के विशेष अंक में संकलित सामग्री पाठकों के सामने है। इस अंक में संकलित सामग्री जहां एक ओर मानव अधिकारों की चिंता तथा इसके संदर्भ में हुए चिंतन को समेटे हुए है, वहीं दूसरी ओर मानव अधिकारों के विभिन्न आयामों के आलोक में संकलित सामग्री हमारे समय के साक्षी की तरह है। मानव अधिकारों के प्रति आम जन की जागरूकता 21वीं शताब्दी की महती आवश्यकता है। इसके प्रकाशन की राह में अनेक चुनौतियाँ भी आईं पर इन सभी चुनौतियों और बाधाओं को पार करते हुए अनवरत रूप से यह प्रकाशित हो रहा है। यह विशेष अंक एक ओर जहां जागरूकता और चुनौती दोनों को एक साथ समझने और विश्लेषित करने का बौद्धिक उपक्रम है, वहीं दूसरी ओर चुनौतियों वाले मुद्दों की पहचान कर, समाधान की राह निकालने की दिशा में बढ़ा हुआ सार्थक कदम भी है। इसमें संकलित आलेख पाठकों में चेतना का सृजन करते हैं। यह स्वीकार करने में जरा भी संकोच नहीं होना चाहिए कि ऐसे चिंतन के जरिये मानव अधिकारों के पक्ष में संवेदनशीलता के साथ–साथ मानवीय गरिमा के प्रति आम जन की भावना और भी अधिक सुदृढ़ होगी।

मानव अधिकार का प्रश्न मानवीय अस्मिता तथा गरिमा से जुड़ा हुआ है। किसी भी लोकतंत्र में मानवीय गरिमा के बिना सुशासन एवं सामाजिक न्याय की कल्पना नहीं की जा सकती। हमारे देश के संदर्भ में भी यह काफी प्रासंगिक है। मानव अधिकार रूपी जड़ की बदौलत ही लोकतंत्र जैसा विशाल पेड़ खड़ा रह सकता है जिस पर विकास, सुशासन एवं सामाजिक न्याय रूपी फूल खिलते हैं। मानव अधिकारों तथा मानवीय गरिमा के ज्वलंत प्रश्नों को रेखांकित एवं विश्लेषित करने वाले इस संकलन में मानव अधिकारों के सभी पक्षों की गहराई से पड़ताल की गयी है।

भारत सरकार मानव अधिकारों के पक्ष में प्रतिबद्ध है। इसके लिए सरकार ने कई नीतियां एवं कार्यक्रम बनाए हैं, जिससे कि देश में मानव अधिकारों का उचित एवं प्रभावी संरक्षण हो सके। फिर भी, हाशिये के लोगों के मानव अधिकारों के हनन के मामले अनायास ही आज भी दिखते हैं। हमारे समाज में स्त्रियाँ, दलित, जनजातियों हाशिये के लोग के मानव अधिकारों के उल्लंघन की घटना आम बात है। जब तक इनके मानव अधिकारों को पूर्ण रूपेण लागू नहीं किया जाता तब तक हमारे सभ्य समाज पर सवाल खड़ा रहेगा। इसे दूसरे शब्दों में कहना होगा कि जब तक देश के किसी भी समुदाय के मानव अधिकारों के प्रति शेष समाज संवेदनशील नहीं बनेगा तब तक हमें इस दिशा में प्रयास करते रहने होंगे। स्त्री, दलित, जनजातियों के अलावा एक तबका और है जिसके प्रति समाज का रवैया उनके मानव अधिकारों का हनन करता प्रतीत होता है। यह तबका थर्ड जेंडर के नाम से जाना जाता है। आज भी समाज की मानसिकता इस तबके के प्रति अच्छी नहीं दिखती। इनके मानव अधिकारों की हिफाजत करना हम सबका परम दायित्व है। आज हम सबको एकजुट होकर हमारे देश में मानव अधिकारों की संस्कृति बनाए रखने के लिए प्रयास करने की आवश्यकता है। हमें यह कोशिश करनी चाहिए कि हम एक–दूसरे के अधिकारों का उल्लंघन न होने दें तथा मानव अधिकार उल्लंघन की घटनाएं घटित होने पर हम इसका विरोध करें। हमारी यही भावनाएं हमारे देश में न्याय, नीति एवं नियम को सही तरीके से लागू कर सकेंगी।

पिछले तीन दशकों में हमारे देश में कश्मीरी हिन्दुओं की हालत बदतर हुई है। उनके खिलाफ हिंसा का आलम ऐसा रहा है कि उन्हें अपनी जमीन से उजड़ना पड़ा है। कश्मीर से विस्थापित होकर ये लोग देश के विभिन्न इलाकों में दर–दर की ठोकर खाने को विवश हुए हैं। इनके नागरिक अधिकारों और मानव अधिकारों की चिंता पर आधारित आलेख भी इस अंक में शामिल हैं। इसके अलावा इस अंक में प्रकाशित सभी शोधपरक आलेख मानव अधिकारों पर जागरुकता फैलाने के साथ–साथ इनके उल्लंघन की रोकथाम हेतु महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी सुझाव भी दिए गए हैं। उम्मीद है कि पूर्व की भांति यह अंक भी पाठकों को प्रभावित करेगा।

(डॉ. रणजीत सिंह)

खण्ड I
संदेश

नेल्सन मंडेला

लोगों को उनके मानव अधिकारों से वंचित करना, मानवता को चुनौती देने जैसा ही है।

(To deny people their human rights is to challenge their very humanity)

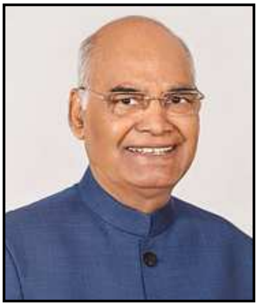

राष्ट्रपति
भारत गणतंत्र
PRESIDENT
REPUBLIC OF INDIA

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत, अपनी स्थापना की 25वीं वर्षगांठ मना रहा है।

आयोग अपने प्रतीक–वाक्य, **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** को चरितार्थ करने के लिए मानव अधिकारों के उल्लंघनों की रोकथाम की अपनी भूमिका के निर्वहन में प्रयासरत है मानवीय गरिमा के लिए मानवाधिकारों का संरक्षण अति आवश्यक है। देश में तीव्र गति से हो रहे विकास तथा वर्तमान सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में मानव अधिकारों का महत्व और भी बढ़ जाता है।

मैं, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को उसकी स्थापना की रजत जयन्ती के महत्वपूर्ण अवसर पर अपनी शुभकामनाएं देता हूं और आशा करता हूं कि आयोग, देश के जनमानस में मानव अधिकारों के प्रति सम्मान का भाव जगाने के अपने प्रयास जारी रखेगा।

(राम नाथ कोविन्द)

नई दिल्ली

16 अगस्त, 2018

मार्टिन लूथर किंग

कहीं भी अन्याय का होना, हर जगह न्याय के लिए खतरा है।

(Injustice anywhere is a threat to justice everywhere)

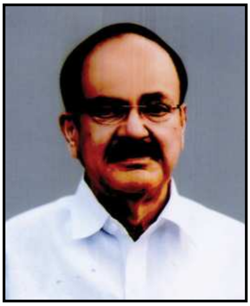

सत्यमेव जयते

भारत के उपराष्ट्रपति
VICE-PRESIDENT OF INDIA

संदेश

मुझे हर्ष है कि देश में मानव अधिकार का पोषक और संरक्षक राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अपना 25वां स्थापना दिवस मनाने जा रहा है। इस रजत जयंती वर्ष के महत्वपूर्ण अवसर पर मैं आयोग को अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ सम्प्रषित करता हूँ।

मानव अधिकार से तात्पर्य उन सभी अधिकारों से है जो व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता एवं प्रतिष्ठा से जुड़े हैं। आज वैश्विक समाज में मानवअधिकारों के प्रचार और प्रसार की बहुत आवश्यकता है। पूरा विश्व आधारिक मानवीय उन्नयन के लिए उद्यत है एवं इस लक्ष्य की पूर्णता के लिए मानवीय अधिकारों की प्राप्ति को प्राथमिकता देना अपरिहार्य हो जाता है। न केवल समग्र विकास अपितु मानवीय संस्कृति से और गहराई से परिचित होने के लिए अधिकारों का समान वितरण परम आवश्यक है। आज समाज के विकास के नवीन आयाम उभरते जा रहे हैं। हमारे अधिकारों में वृद्धि होती जा रही है।

प्रकृति के अतिरिक्त मनुष्यों द्वारा बनाये गए विधि सम्मत कानून का भी यह कर्त्तव्य है कि वह मानवाधिकारों की रक्षा करे। प्रायः मानवाधिकारों के प्रति उपेक्षा दिखाई देती है जो केवल अशिक्षा का ही परिणाम है। यदि शिक्षा के क्षेत्र पर उचित ध्यान दिया जाए तो न केवल अधिकारों के प्रति सम्यक जागरूकता होगी अपितु कर्तव्यों का भी यथोचित पालन सुनिश्चत किया जा सकेगा। विकसित देश की यही पहचान है कि वह देश अधिकारों के हनन से रहित है और कर्तव्य निर्वहण के लिए सदैव उद्यत है।

वस्तुतः भारतीय परिप्रेक्ष्य में हिन्दी वह माध्यम है जो समाज में मानवाधिकारों के स्वरूपोद्‌घाटन हेतु एक सफल साधक सिद्ध हो सकता है। मुझे विश्वास है कि "मानव अधिकार : नई दिशाएँ" नामक विशेषांक द्वारा आयोग वास्तव में मानव अधिकारों से संबंधित राष्ट्रीय महत्व के पक्षों को उजागर करने में सफल होगा और जन–जागृति हेतु अपेक्षित मार्ग प्रशस्त करेगा।

इस पत्रिका के विशेष अंक के प्रकाशनार्थ राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को पुनः मेरी भूरि भूरि शुभकामनाएँ।

(एम. वेंकैया नायडु)

नई दिल्ली

06 अगस्त, 2018

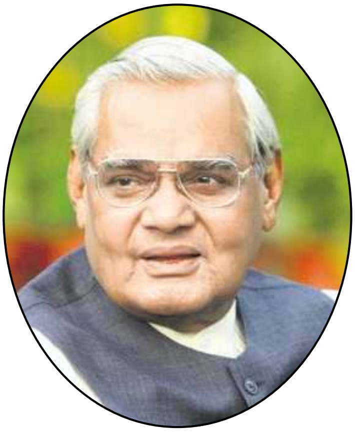

अटल बिहारी वाजपेयी

छोटे मन से कोई बड़ा नहीं होता,

टूटे मन से कोई खड़ा नहीं होता।

सत्यमेव जयते

प्रधान मंत्री
Prime Minister

संदेश

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की 12 अक्तूबर, 2018 को होने वाली रजत जयंती के बारे में जानकर प्रसन्नता हुई है।

समाज के विभिन्न वर्गों विशेषकर वंचित तबके के अधिकारों की रक्षा व उनके उत्थान के लिए राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग निरंतर कार्य कर रहा है। आयोग ने मानव अधिकार से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर अपनी पत्रिका के माध्यम से जाने माने लोगों के विचारों व सुझावों को एक महत्वपूर्ण मंच दिया है।

इस मंच के माध्यम से मैं यह बताना चाहता हूं कि सरकार देश के हर व्यक्ति के मानवाधिकार को अक्षुण्ण रखने के लिए प्रतिबद्ध है। 'सबका साथ सबका विकास' के मंत्र के साथ हम देशवासियों की बुनियादी सुविधाओं जैसे अपना घर, बिजली, पानी और स्वच्छता जैसे लक्ष्यों के प्राप्ति ही नहीं बल्कि सभी के गरिमापूर्ण जीवन के लिए भी प्रयासरत हैं।

हमारा विकास सहज रूप से महिलाओं के सशक्तिकरण से जुड़ा है और इसकी शुरुआत बेटियों के जन्म से ही आरंभ हो जाती है। भारत अब महिला विकास नहीं अपितु 'नारी नेतृत्व में विकास' की राह पर चल रहा है।

आयोग की रजत जयंती के मौके पर मैं भविष्य की सफलताओं के लिए शुभकामनाएं देता हूं।

(नरेन्द्र मोदी)

नई दिल्ली
29 सितंबर, 2018

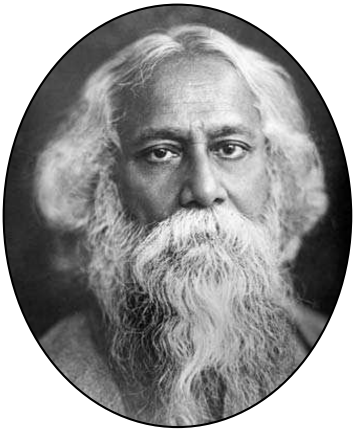

रवीन्द्र नाथ टैगोर

प्रसन्न रहना बहुत सरल है,

लेकिन सरल होना बहुत कठिन है।

राजनाथ सिंह
RAJNATH SINGH

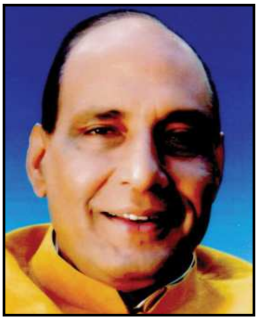

सत्यमेव जयते

गृह मंत्री
भारत
नई दिल्ली—110001
HOME MINISTER
INDIA
NEW DELHI-110001

संदेश

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अपने **25वें स्थापना दिवस** के अवसर पर पत्रिका **'मानव अधिकार : नई दिशाएँ'** का प्रकाशन कर रहा है।

भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के तहत की गई है। मेरा मानना है कि मानव अधिकारों की रक्षा उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी की प्रजातंत्र की रक्षा। एक ऐसा प्रजातंत्र जो प्रत्येक नागरिक के हित का ध्यान रखता हो, सबसे अधिक कमजोर व्यक्ति के लिए कल्याणकारी हो और देश हित के लिए भी कार्य करता हो।

किसी भी राष्ट्र की राष्ट्रभाषा उसकी सांस्कृतिक धरोहर की संवाहिका होती है। आयोग द्वारा पिछले कई वर्षों से अपने कार्य क्षेत्र में हिन्दी को बढ़ावा देने के उद्देश्य से मानव अधिकारों से सम्बन्धित सम–सामयिक विषयों पर सूचना, ज्ञान एवं अनुभव साझा करने के लिए 'मानव अधिकार : नई दिशाएँ' पत्रिका का प्रकाशन किया जाता रहा है।

मैं, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के **रजत जयन्ती** वर्ष के उपलक्ष्य में **'मानव अधिकार : नई दिशाएँ'** के सफल प्रकाशन हेतु अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

03.08.18

(राजनाथ सिंह)

Office : Room No. 104, Ministry of Home Affairs, North Block, New Delhi-110 001
Tel. : 23092462, 23094686, Fax : 23094221
E-mail : hm@nic.in

मदर टेरेसा

पेड़, फल और पौधे शांति में विकसित होते हैं, सितारे, सूर्य और चंद्रमा शांति से गतिमान रहते हैं, शांति हमें नई संभावनाएं देती है।

खण्ड II
मानव अधिकारों पर मेरे विचार

सभी व्यक्तियों को सजा से डर लगता है, सभी मौत से डरते हैं। बाकी लोगों को भी अपने जैसा ही समझिए, खुद किसी जीव को न मारें और दूसरों को भी ऐसा करने से मना करें।

—अज्ञात

दलाई लामा•

मैंने अपने जीवन का बड़ा हिस्सा भारत में शरणार्थी के रूप में गुज़ारा है। भारत मेरे लिए दूसरा घर ही है। बल्कि मैं यहां का सबसे लंबे समय तक रहने वाला मेहमान बन गया हूं और मेरे तथा साथी तिब्बतियों के प्रति यह नेकनीयती दिखलाने के लिए मैं भारत की जनता और सरकार का शुक्रगुजार हूं।

भारत में विश्व के सभी प्रमुख धर्मों के अनुयायी हैं और यहां नास्तिकों को भी उतना ही सम्मान दिया जाता है। सदियों से भारत का यह जो धर्मनिरपेक्ष चरित्र है, मैं उसका बहुत आदर करता हूं। तिब्बतियों के लिए तो उनके बौद्ध धर्म का स्रोत ही भारत रहा है। बुद्ध को बोधगया में ज्ञान में प्राप्ति हुई थी और नालंदा केंद्र के सभी प्रमुख गुरु भारतीय ही थे। अतीत में तिब्बत के छात्र भारत में ज्ञान प्राप्त करने आते थे और भारतीय गुरु तिब्बत जाकर शिक्षा देते थे। भारत और तिब्बत के ऐतिहासिक आध्यात्मिक संबंध रहे हैं और इसलिए हम तिब्बतियों के लिए भारत आर्यभूमि है।

भारत में अपने लंबे प्रवास के दौरान मैं भारत के कई हिस्सों में गया और जो अभूतपूर्व विकास हुआ है, उसका साक्षी बना। आर्थिक विकास के साथ–साथ भारतीय जनता के अधिकारों का भी विकास हुआ है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना इसी का एक उदाहरण है। आपका आयोग न केवल मानवाधिकारों की रक्षा करता है, बल्कि जहां इसका हनन होता है, वहां आप सरकार की जवाबदेही भी तय करते हैं।

लेकिन इतने विकास के बावजूद भारतीयों का बड़ा वर्ग कठिनाइयों का सामना कर रहा है। एक ओर कुछ लोग विलासिता का जीवन बिता रहे हैं, तो वहीं बहुत से लोग रोजमर्रा की जरूरतें पूरी करने के लिए जूझ रहे हैं। असमानता, कुप्रबंधन और अन्याय के बीच वे कठिन मेहनत से जीवन बिता रहे हैं। कानूनी संरक्षण के बावजूद सामाजिक प्रथा और जाति का विभाजन होने से मानव अधिकारों और लोकतांत्रिक आजादी का उपभोग असमान रूप में हो रहा है।

मैं एक बार ओडिशा गया था, जहां बहुत गरीबी है, खासकर आदिवासियों में, और इसके कारण संघर्ष, उग्रवाद जैसी स्थितियां बनीं। मैं एक बार यहां के एक सांसद से मिला और उनसे इस विषय पर चर्चा की। उन्होंने मुझे बहुत सी सरकारी योजनाओं और कानूनी व्यवस्थाओं के बारे में बताया, जो आदिवासियों के कल्याण के

•14वें दलाई लामा

उद्देश्य से बनाई गई हैं। उन्होंने मुझे बताया कि समस्या यह है कि इन सबके लिए आबंटित धन कई बार सही हाथों तक नहीं पहुंचता है। जब ये परियोजनाएं कुप्रबंधन और गैरजवाबदेही का शिकार होती हैं, तो समाज में इस तरह की समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

कई बार व्यवस्था मजबूत होने के बावजूद उसकी प्रभावोत्पादकता इस बात पर निर्भर करती है, कि उसे किस तरह से लागू किया गया है। अगर व्यवस्था का गलत इस्तेमाल हो तो यह लाभ देने की जगह हानिकारक साबित होता है। मैं जानता हूं हमारे नेता इस बात को जानते हैं और इन खामियों को दूर करने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन हम नए कानूनों और नियमों से चीजों को दुरुस्त नहीं कर सकते। हमें इन समस्याओं को जड़ से खत्म करना होगा। अगर लोग ईमानदारी और नैतिकता का पालन नहीं करेंगे तो कोई भी कानून या व्यवस्था काम नहीं करेगी। जब तक भौतिकता हावी रहेगी, अन्याय, असमानता, असहनशीलता, लालच जैसी बुराइयां बनी रहेंगी।

इसमें सुधार कैसे लाया जा सकता है? भारत में आधुनिक शिक्षा, नैतिक मूल्यों की बजाए भौतिक सुख–सुविधाओं पर अधिक ध्यान देती है। जबकि प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में मनो–मस्तिष्क को समझने पर अधिक जोर दिया जाता था। मेरी समझ से आज हम जो सामाजिक समस्याएं देख रहे हैं, उसका निदान प्राचीन शिक्षा में निहित है। जब हम भावनाओं को समझना और संभालना सीख जाते हैं तो मानसिक शांति और आंतरिक मजबूती हासिल करना आसान होता है। हमारी मानसिक शांति का प्रभाव अन्य लोगों पर भी पड़ता है और हम अपनी वैश्विक जिम्मेदारियों को अच्छे से निभा पाते हैं। मूलतः हम सब खुश रहना चाहते हैं और कष्टों से दूर रहना चाहते हैं। हम दूसरों से उदारता की अपेक्षा रखते हैं, लेकिन खुद इसका पालन करने में चूक जाते हैं। हमें यह याद रखना चाहिए कि हम सब एक दूसरे पर निर्भर हैं। हमारी खुशी और सफलता दुनिया के 7 बिलियन लोगों की खुशी के साथ जुड़ी है। हमें नैतिक मूल्यों को अपने भीतर विकसित करना चाहिए और वैसा ही व्यवहार करना चाहिए, जिसकी दूसरों से हम अपेक्षा करते हैं। उदारता भरा व्यवहार हमें दूसरों से संवाद के लिए प्रेरित करता है। जब हम आत्मकेन्द्रित होते हैं तो ईर्ष्या, संदेह, डर जैसी भावनाएं पनपती हैं।

जब हम इस ब्रहांड के प्रति अपनी जिम्मेदारी का बोध करते हैं तो सभी मानवों के प्रति हममें बंधुत्व का भाव जागृत होता है, फिर चाहे वे किसी भी धर्म को मानने वाले हों। दया, करूणा और क्षमा सभी धर्मों का सार है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हम जो भी कार्य करते हैं, वह भले के लिए ही करते हैं। हम सब मूलतः प्यार और करूणा के मानवीय मूल्यों से ही संचालित होते हैं।

****

कैलाश सत्यार्थी*

सदियों के युद्ध और संघर्षों के बाद दुनिया को मानवाधिकार के मूल्य का अहसास हुआ। महान विचारकों ने लगातार अपनी मेहनत से मजबूत दस्तावेज, कानून और संस्थाएं विकसित कीं, लेकिन बावजूद इसके आज हम मानव इतिहास में मानवाधिकार की सबसे ज्यादा वंचना देख रहे हैं। जाहिर सी बात है कि मानवाधिकार केवल कानूनों या संस्थाओं से हासिल नहीं हो सकता, इसके लिए स्वतंत्रता, समानता और न्याय को लोगों के जीवन में व्यवहार में भी उतारना होगा। अनुसूचित जाति या जनजाति की एक छह साल की लड़की, जो ईंट भट्टे में बंधुआ मजदूर है और हर तरह के उत्पीडऩ की शिकार है, उसके जीवन को हम अपने देश में मानवाधिकार के पैमाने की कसौटी पर परख सकते हैं। उस लड़की का जीवन भारत में विकास की हकीकत बयां करता है।

विकास और मानवाधिकार को एक–दूसरे से अलग–अलग कर नहीं देखा जा सकता। मानवाधिकारों के बिना विकास की बातें बेमानी हैं। इस वक्त हम देश में एकपक्षीय विकास को देख रहे हैं, जो निश्चित ही उन लोगों के पक्ष में है, जिनके पास धन और सत्ता की शक्ति है। जबकि हमारे विकास की रणनीति ऐसी होनी चाहिए कि जिसमें सबके लिए समान अवसर हो, सबको सम्मान मिले, सबकी आवाज सुनी जाए। मेरा मानना है कि उच्चश्रेणी की शिक्षा से यह संभव हो सकता है, जिसमें सभी तरह की गैर–बराबरी दूर हो। शिक्षा के अधिकार को शिक्षा से अधिकारों तक बढ़ाया जाए और इसकी शुरुआत बच्चों से ही हो।

व्यक्ति की स्वतंत्रता के बगैर अधिकारों का कोई महत्व नहीं है। इसमें सबसे जरूरी है भय से स्वतंत्रता। लोग क्यों उन संस्थाओं से डरते हैं, जो उनकी सेवा और सुरक्षा के लिए बनाए गए हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि हमारी व्यवस्था में खामियां हैं। लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्वतंत्रता और स्वायत्तता से समझौता किया जा रहा है और इससे लोगों का विश्वास डिग रहा है। जब लोगों को यह एहसास होता है कि उनके हितों के लिए बनाई गई संस्थाओं की स्वतंत्रता खतरे में है, तो उनमें भय का संचार होता है। इसलिए जरूरी है कि ऐसी लोकतांत्रिक संस्कृति का विकास हो, जिसमें बहुपक्षीय और अधिकारों का सशक्तिकरण हो। जब लोग इस तरह की जीवनशैली अपना लेते हैं, जिसमें अपने साथ–साथ दूसरों के अधिकारों की भी रक्षा हो, तो अधिकारों की

***संस्थापक, बचपन बचाओ आन्दोलन**

संस्कृति विकसित होगी। यह केवल आजाद लोकतंत्र में समेकित विकास से ही संभव है। जो देश स्वतंत्रता, समानता और न्याय को विकास के साथ लेकर आगे बढ़ता है, वहां बाल संरक्षण होगा और निश्चित ही उसका भविष्य उज्ज्वल होगा।

25 बरसों से वंचितों और शोषितों के अधिकारों की रक्षा करने का सफल दायित्व निभाने पर मैं राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का अभिनंदन करता हूं। बाल अधिकारों की रक्षा की लड़ाई में मैंने बारम्बार एन.एच.आर.सी. पर भरोसा किया है। सामाजिक न्याय की स्थापना में मानवाधिकारों की भूमिका को नए सिरे से पुनर्भाषित करने का यह सही अवसर एन.एच.आर.सी. के पास है। और आखिर में एक विकासशील देश के रूप में हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उस छः साल की बच्ची को उपेक्षित न छोड़ा जाए, उसे विकास की मुख्यधारा में सबसे आगे रखा जाए।

****

गिरीश्वर मिश्र*

मेरी दृष्टि में "मानवाधिकार" सभ्य समाज में सहज जीवन का स्वाभाविक आधार है। 'धर्म' की अवधारणा की तरह ही यह व्यापक है और बिना किसी भेद–भाव के सबके कल्याण को सुरक्षित रखने और उस पर किसी तरह की आँच न आने देने के लिए यह कटिबद्ध है। यह सामाजिक जीवन की ऐसी शैली में प्रकट या अभिव्यक्त होता है जिसमें सभी मनुष्यता के एक धरातल पर जीते हैं और हर व्यक्ति को किसी और व्यक्ति की तरह जीने के लिए मौके को रेखांकित करता है। समता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों या विचारों को देश ने सामाजिक जीवन के केंद्रीय आधार के रूप में अंगीकार किया है। इन्हीं मुख्य सूत्रों के आधार पर सामाजिक और न्याय व्यवस्था का निर्माण अभीष्ट है। हमारा संविधान इस दिशा में मुखर रूप से प्रविधान करता है। कठिनाई तब आती है जब हम यह पाते हैं कि अस्तित्व की समानता तो सबको चाहिए परंतु अस्तित्व की जिन परिस्थितियों में लोग जीवन आरंभ करते हैं वे एक सी नहीं होतीं। ऐसे में भिन्नता के बीच समानता के साथ प्रतिबद्धता सभ्य सामाजिक जीवन में आंतरिक रूप से उपस्थित या "टेकेन फ़ॉर ग्रांटेड" मानी गई है। यह सामाजिक जीवन की एक आदर्श स्थिति भी है जिसमें समता और समानता ताने–बाने जैसे होते हैं। इसके लिए नियम और क़ानून बनाए गए हैं ताकि सबको विकास का पर्याप्त अवसर मिल सके।

सामूहिक जीवन में बिना किसी प्रकार के भेद भाव के उन्नति के अवसर सभी को ही उपलब्ध होने चाहिए। इसी तरह स्वास्थ्य और शिक्षा का अवसर भी देश के सभी नागरिकों मिलना चाहिए। मनुष्य की गरिमा सबके लिए महत्वपूर्ण होती है और उसकी रक्षा हर हाल में की जानी चाहिए। साथ ही विशेष समूहों जैसे स्त्रियों, बच्चों, वृद्धों, अशक्त जनों और दिव्यांगों की सुरक्षा भी होनी चाहिए। ऐसे ही जो लोग युद्ध और दंगे–फ़साद आदि की जटिल और असाधारण अमानवीय परिस्थितियों में विस्थापित होते हैं और यातना पाते हैं उनके मानवाधिकार भी महत्वपूर्ण हैं। इन विविध प्रकार की अमानवीय परिस्थितियों को लेकर अंतरराष्ट्रीय सहमति भी बनी है और क़ानूनी व्यवस्थाएं भी स्वीकृत हैं। इनको स्वीकार करने वाले देशों को इनका पालन करना अपेक्षित है।

***कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)**

जब हम आज के भारतीय समाज पर विचार करते हैं तो स्थिति चिंतनीय और विचारणीय लगती है। यह दुःख का विषय है कि समाज में नाना प्रकार के अत्याचार, व्यभिचार और अनाचार से पीड़ित जनों की भी मानवाधिकार के हनन की दास्तान प्रतिदिन हमारे समक्ष आती है और इनकी संख्या में निरंतर इज़ाफ़ा हो रहा है। आज स्वार्थ में अंधे लोग औरों का शिकार करते रहते हैं। लोभ, मोह, काम (आसक्ति), लिप्सा और क्रोध जैसे भावात्मक विकार मानवाधिकार की स्थापना के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा बन रहे हैं। कभी त्यागपूर्वक भोग करना ('तेन त्यक्तेन भुजीथाः' – ईशावास्योपनिषद) और दान करना गृहस्थ जीवन का कर्तव्य स्वीकार किया गया था। ऋणों और यज्ञ की प्राचीन व्यवस्था सभी की संतुष्टि को ध्यान में रख कर की गई थी।

बदलती परिस्थितियों में हमारा सामाजिक आचरण बदल रहा है और मानवाधिकार का सवाल खड़ा हो रहा है क्योंकि जीने की मौलिक समानता ख़तरे में पड़ती जा रही है। जीने के लिए कुछ न्यूनतम भौतिक साधन और सुविधा तो हर किसी को चाहिए ही चाहिए। इस बात से शायद ही किसी को गुरेज़ हो कि जीवनयापन करने के लिए भर पेट खाने को रोटी, तन ढकने और पहनने को कपड़ा तथा धूप और वर्षा में सुरक्षित रहने को मकान की आधारभूत ज़रूरत हर किसी को होती है। पर सामाजिक सच्चाई यह है कि आज कोई खाए बिना मर रहा है तो कोई खा–खा के मर रहा है। समाज में सम्पन्न और विपन्न या ग़रीब और अमीर के बीच की खाई चौड़ी और गहरी हो रही है।

ग़ौर करने की बात यह है कि जरूरी संसाधनों का भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों और समुदायों में वितरण आज भी एक सा नहीं है। जहाँ कुछ लोगों ने संसाधनों पर ज़्यादा क़ब्ज़ा जमा रखा है तो कुछ बिलकुल साधनहीन हैं। इस तरह की साधनों की असमानता के चलते पाई जाने वाली सामाजिक विषमता की कई वजहें हैं। भौगोलिक स्थिति, पुश्तैनी सम्पत्ति का होना या न होना, शारीरिक और मानसिक क्षमता या अक्षमता तथा सामाजिक भेदभाव और कुरीतियों आदि के कारण संसाधनों तक सब की पहुँच बराबर नहीं है। चूँकि वर्तमान में साधनों की उपलब्धि की मात्र में भिन्नता है इसलिए आगे भी उसके बने रहने की संभावना रहती है बशर्ते उसे ठीक करने के लिए किसी तरह का कोई अतिरिक्त हस्तक्षेप न हो। भारतीय समाज में विभिन्न पिछड़े वर्गों, दलितों, जनजातियों और वंचित समूहों की जीवन दशा पर यदि ग़ौर करें तो यह बात आसानी से समझ में आ जाएगी कि उन्हें सदियों से हाशिए पर रखा जाता रहा है और उन्हें कठिन परिस्थितियों में जीवन–यापन करना पड़ता रहा है। उन्हें तरह–तरह से पीड़ा पहुँचाई जाती रही है। इससे बचाव और क्षतिपूर्ति के लिए आरक्षण का कवच और अन्य क़ानूनी प्रावधान किए गए हैं। राष्ट्रीय और राज्यस्तरीय मानव अधिकार आयोग

की स्थापना इस दिशा में बड़ा क़दम है। परंतु मानवाधिकार हनन की घटनाएँ जिस तरह बढ़ रही हैं चौकसी और दंडविधान ज़रूरी है। साथ ही, समाज में मानवाधिकारों की चेतना के विस्तार की भी आवश्यकता है। इसके लिए प्राथमिकता के साथ व्यापक प्रयास अपेक्षित है।

****

न्याय करना सभी नैतिक कर्त्तव्यों के पालन के समान है।

—अज्ञात

नन्द किशोर आचार्य*

मानव अधिकार, वस्तुतः, एक ऐसे भावी मानव समाज का स्वप्न है, जिसमें मनुष्य अपने मानवत्व की निरन्तर सिद्धि करता रह सके। मानव एक विवेकशील तथा सृजनात्मक प्राणी है, अतः उसके विवेक और सृजनात्मकता का विकास ही उसका वास्तविक विकास कहा जा सकता है, इसलिए एक ऐसे समाज का विकास ही इस उद्देश्य के अनुरूप कहा जा सकता है, जो इस विकास के अनुकूल तथा उसे प्रेरित एवं पुष्ट करने वाली परिस्थिति मुहैया करवा सके। इसे ही मानवत्व को पुष्ट करने वाली व्यवस्था कहा जा सकता है। इसके लिए प्रत्येक मनुष्य को कुछ ऐसे अधिकारों की आवश्यकता होनी स्वाभाविक है, जो उसकी संभावनाओं के प्रस्फुटन को सुनिश्चित करते हों। मानव अधिकारों की उपस्थिति का यही उद्देश्य है।

यह उल्लेखनीय है कि इसी कारण मानव अधिकारों की विश्व घोषणा को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा सर्वसम्मति से पारित किया गया था, यद्यपि तत्कालीन सोवियत ब्लॉक के देशों तथा सऊदी अरब और दक्षिण अफ्रीका ने मतदान में हिस्सा नहीं लिया था; लेकिन, उन्होंने भी उसके विरोध में मतदान नहीं किया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव अधिकारों को विश्वभर का नैतिक समर्थन प्राप्त है। इस विश्व घोषणा की प्रस्तावना के शुरू में ही 'विश्व में स्वतंत्रता, न्याय और शान्ति की नींव मानव परिवार के सभी सदस्यों की जन्मजात गरिमा और उनके अहस्तान्तरणीय तथा समान अधिकारों की स्वीकृति है। यह प्रस्तावना ही यह स्पष्ट कर देती है कि मानव अधिकारों का प्रयोजन मनुष्य मात्र की जन्मजात गरिमा, स्वतंत्रता और समता का संरक्षण करना है। मानवीय समता तथा मानवीय व्यक्तित्व की स्वतंत्रता के इस आग्रह को घोषणा पत्र का पहली और बाईसवीं धारा में पुनः स्पष्ट किया गया है। मानवाधिकारों में स्वीकृत आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक अधिकारों के साथ–साथ श्रमिकों, शरणार्थियों, अल्पसंख्यकों, स्त्रियों, बालकों आदि विभिन्न समूहों के अधिकारों को भी इसीलिए शामिल किया गया है ताकि किसी भी बहाने से किसी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता, गरिमा और सृजनात्मकता पर कोई आघात न हो सके। मानव अधिकार विमर्श में जब यह स्वीकार किया जाता है कि सभी मानव अधिकार समान महत्व रखते हैं तथा किसी भी एक अधिकार के लिए दूसरे अधिकार या किसी दूसरे के अधिकार का

***प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक एवं साहित्यकार**

उल्लंघन नहीं किया जा सकता है तो इसका तात्पर्य यही है कि मानव अधिकारों को लागू करने के नाम पर मानव अधिकारों का हनन नहीं किया जा सकता।

उदाहरण के लिए, हम विकास की प्रचलित अवधारणा और प्रक्रिया का उल्लेख कर सकते हैं। किसी भी राज्य का यह दावा वैद्य माना जा सकता है कि आर्थिक, सामाजिक मानव अधिकारों के लिए विकास एक अनिवार्यता है। लेकिन, यदि इस विकास की प्रक्रिया पर्यावरण–प्रदूषण, विस्थापन आदि समस्याओं को पैदा करने के साथ–साथ कुछ समूहों के सांस्कृतिक–धार्मिक आधारों पर भी आघात करती हो, उनकी भाषा और संस्कृति का चरण करती हो, जैसा आदिवासी समूहों के एक बड़े हिस्से के साथ होता रहा है, तो क्या उस प्रक्रिया को मानव अधिकार, विरोधी प्रक्रिया नहीं कहा जाना चाहिए – यद्यपि ऐसा आर्थिक मानव अधिकारों की सुनिश्चितता के नाम पर किया जा रहा होता है। यह उल्लेखनीय है कि पर्यावरण और विकास पर केन्द्रित संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में यह तथ्य स्वीकार किया गया था। वैश्विक पर्यावरण की चुनौतियों का सामना करने के लिए आदिवासी समूहों और उनके पारंपरिक ज्ञान की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। लेकिन जब विकास की प्रचलित प्रक्रिया ही उनके पर्यावरण और भाषा को नष्ट करने वाली हो तो वह पारंपरिक ज्ञान कहां बचा रहेगा। एक भाषा का लोप हो जाना एक भाषिक समूह और उस भाषा में निहित ज्ञान का भी लोप हो जाना है। गणेश देवी के शोध के अनुसार आजादी के बाद केवल भारत में ही दो सौ बीस भाषाओं का लोप हो चुका है। क्या यह विकास अपने में मानव अधिकार विरोधी विकास ही नहीं है?

एक और उदाहरण समूहों के अधिकारों का हो सकता है। सामान्यत:, यह आपत्ति की जाती है कि जब सभी मनुष्यों को दो समान अधिकार प्राप्त हैं तो विशिष्ट समूहों के अलग व्यवस्था की क्या जरूरत और औचित्य है। लेकिन, मानव अधिकारों के विकास की प्रक्रिया में अंतरराष्ट्रीय मानव–बिरादरी द्वारा यह महसूस किया गया कि समानता का यह अधिकार कुछ समूहों के लिए अनुपलब्ध ही रहता है, जब तक उन्हें अन्य समूहों के बराबर योग्यता और हैसियत उपलब्ध न करवा दी जाए। जान रॉल्स इसीलिए न्याय का तात्पर्य 'औचित्य–फेअरनेस' मानते हैं – 'जस्टिस इस फेअरनेस'। इसे स्पष्ट करते हुए रॉल्स 'अवानरों की उचित समानता' बताने के साथ यह भी आग्रह करते हैं कि सामाजिक–आर्थिक असमानताओं को भी तभी स्वीकार किया जा सकता है, अब उनसे समाज के वंचित सदस्यों को अधिकतम लाभ मिल सकता हो। अमर्त्य सेन 'अवसरों की समानता' के इस आग्रह का विस्तार करते हुए यह और जोड़ देते हैं कि उन अवसरों से लाभान्वित होने की योग्यता विकसित करना भी एक न्यायपूर्ण समाज का लक्ष्य होना चाहिए।

लेकिन, समूहों के अधिकारों को लेकर एक और समस्या भी पैदा होनी है।

सांस्कृतिक अधिकारों के विमर्श में सांस्कृतिक सापेक्षतावादियों के इस तक की पूरी तरह अनदेखी नहीं की जा सकती जिसकी संस्कृतियां समान रूप से मूल्यवान हैं, इसलिए, उनके वैशिष्ट्य की अवहेलना करते हुए कोई सार्वभौम सांस्कृतिक या नैतिक प्रतिमान सब पर समान रूप से लागू नहीं किए जा सकते। लेवी स्ट्रास की मान्यता है कि प्रत्येक संस्कृति की अपनी सभ्यता मूल्यवान है। लेकिन, साथ ही, इस स्वतंत्र मूल्यवत्ता को स्वीकार करते हुए भी संस्कृति को कोई जड़ वस्तु नहीं माना जा सकता। संस्कृति एक गत्यात्यक प्रक्रिया है और विभिन्न संस्कृतियों के बीच अन्तःक्रिया से इस गत्यात्मकता को बल मिलता है। वैशिष्ट्य और सार्वभौमिकता के बीच इस द्वन्द्व का समाधान यही हो सकता है कि जहां कुछ बुनियादी मानव मूल्यों या मानव अधिकारों का हनन होता हो, वहां सार्वभौम मूल्यों को वरीयता दी जाये।

संस्कृति और विकास पर विश्व आयोग के प्रतिवेदन में कहा गया है कि सांस्कृतिक स्वतंत्रता व्यक्ति स्वतंत्रता के विपरीत एक सामूहिक स्वतंत्रता है। यह व्यक्ति और समूह दोनों के लिए है। लेकिन, इस पर सवाल उठाया जा सकता है कि क्या किसी समूह के सांस्कृतिक मानव अधिकार के नाम पर समूह व्यक्ति की स्वतंत्रता को बाधित कर सकता है। इसका स्पष्ट उत्तर नकारात्मक है। प्रत्येक समूह अपनी सांस्कृतिक स्वतंत्रता का संरक्षण चाह सकता है, लेकिन उसे यह अधिकार नहीं हो सकता कि वह इस बहाने अपने किसी व्यक्ति सदस्य के सांस्कृतिक एवं अन्य अधि ाकारों का अतिक्रमण कर सकता है। व्यक्ति को समूह के ऐसे निर्णय मानने के लिए किसी के भी द्वारा बाध्य नहीं किया जा सकता। हिन्दू समाज में बाल–विवाह और सती जैसी प्रथाएं प्रचलित रही हैं। लेकिन वे व्यक्ति के स्वातंय और जीने के अधिकार का उल्लंघन करने वाली हैं, इसलिए उन्हें समूह के सांस्कृतिक अधिकार के रूप में स्वीकृत नहीं किया जा सकता। 'हॉनर किलिंग' जैसी समस्याएं व्यक्ति के अधिकार को समूह की संस्कृति के नाम पर हनन करने का ही नतीजा हैं। कई अल्पसंख्यक समुदाय भी अपनी संस्कृति या परंपराओं के नाम पर अपने उन सदस्यों के साथ अन्याय कर देते हैं जो उसके किन्हीं रिवाजों से सहमत नहीं हैं। मानव अधिकार वे अधिकार हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति को मनुष्य होने के नाते प्राप्त हैं और जिनसे उसे किसी भी स्थिति में वंचित नहीं किया जा सकता। यदि किसी विशेष समूह में कुछ ऐसे रिवाज हैं; जो व्यक्ति स्वतंत्रता तथा मानव अधिकारों पर आधारित करते हों, तो व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करना मानव अधिकारवादी समाज और राज्य का दायित्व हो जाता है।

मानव अधिकार एक ऐसी अवधारणा है जो जीवन की सभी क्रियाशीलताओं में मनुष्य की स्वतंत्रता, समानता, गरिमा और सर्जनात्मक सहभागिता को महत्व देनी है। यदि हमारी राजनीतिक–आर्थिक व्यवस्था इन मूल्यों को बढ़ावा देने वाली न हो तो उसे मानव अधिकार नहीं कहा जा सकता। आज जितनी समस्याएं भारत और विश्व को भी

घेरे हुए हैं; उनका केन्द्रीय कारण हमारे द्वारा मानव अधिकारों की अवज्ञा है। दरअसल, मानवाधिकार घोषणा एक अहिंसक या कहें तो स्वस्थ भविष्य के लिए एक पूर्वमान्य सिद्धान्त है। कुछ लोग लोकतांत्रिक स्वतंत्रता को महत्व देते हुए समता को केवल कानून के समक्ष समता तक सीमित कर देते हैं तो दूसरा वर्ग समता को महत्व देते हुए स्वतंत्रता का दमन करता नज़र आता है। दोनों ही ओर से स्वतंत्रता बनाम समता अथवा रोटी बनाम अभिव्यक्ति जैसे कृत्रिम विवाद चलाए जाते हैं। आजकल हमारे यहां राष्ट्र बनाम अभिव्यक्ति स्वातंत्र जैसे विवाद भी उठाये जा रहे हैं। एक अधिकार के मुकाबले दूसरे अधिकार को खड़ा कर दिया जाता है, जबकि मानवाधिकारवादियों को आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और नागरिक अधिकारों में कोई अन्तर्विरोध नहीं मिला है। इन अधिकारों के संबंध में जो संविदाएं हैं या विश्वास में जो मानव अधिकार आयोग हैं, या हेलसिंकी में जिस तरह के मानव अधिकार स्वीकृत हैं, वे मानव अधिकारों के बारे में उक्त प्रकार के कृत्रिम विवादों की निरर्थकता बताने के लिए स्पष्ट हैं। मानव अधिकारों की विश्व घोषणा की नैतिक शक्ति को लगभग सभी द्वारा स्वीकार किया गया है – चाहे व्यवहार में अभी तक उसे पूरी तरह लागू न किया जा सका हो। जस्टिस वी. एम. तारकुन्द का मानना है कि अब तक घोषणा पत्र को व्यावहारिक सत्ता प्राप्त हो चुकी हैं, जिससे कई लोग यह विश्वास करने लगे हैं कि वह लगभग अंतरराष्ट्रीय कानून का हिस्सा बन चुका है। दरअसल, मानव अधिकारों को प्राप्त शक्ति उस नैतिक शक्ति का परिणाम है, जो विश्व–जनमत के समर्थन से प्राप्त हुई है। इसलिए, प्रो० जॉन पी. हम्फे का यह कथन पूर्णतया संगत है कि 'हमारे समय के चिन्तन पर संयुक्त राष्ट्र के किसी अन्य कानून का इतना प्रभाव नहीं पड़ा। इसमें सर्वोत्तम आकांक्षाएं निहित एवं घोषित हैं। संभव है कि यह इतिहास में मुख्य रूप से महान नैतिक सिद्धांतों के वक्तव्य के रूप में जीवित रहे। किसी भी अन्य राजनीतिक दस्तावेज या कानूनी उपकरण की तुलना में इसकी प्रभाव अधिक गहरा एवं स्थायी हैं। जब एरिका–आइरीन जैसे मानव अधिकार विमर्शकों द्वारा यह कहा जाता है कि स्वयं संयुक्त राष्ट्र का भविष्य 'आंतरिक उपनिवेशीकरण' से मुक्ति पर निर्भर करता है तो उसका आशय यही है कि जब तक हम मानव अधिकारों की दृष्टि से मानवत्व के विकास का प्रयास नहीं करते, जिसमें मानव मुक्ति के सारे आयाम समाहित हैं, तब तक घोषणा पत्र की प्रस्तावना में संकेतित स्वतंत्रता, न्याय और शान्ति भी विश्व में संभव नहीं है। विश्व का यह भविष्य ही तो संयुक्त राष्ट्र का लक्ष्य है।

****

आर. के. पचनन्दा*

भारतीय साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकारों का वर्णन उपलब्ध है:–

"अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम
परोपकारः पुण्याय पापाय परणीडनम्।।"

अर्थात परोपकार को पुण्य एवं दूसरों को पीड़ा पहुंचाने को पाप कार्य माना गया है। यह मानव अधिकारों की प्रथम उपलब्ध परिभाषा है। **"वसुधैव कुटुम्बकम"** की अवधारणा भी मानवाधिकारों की सही व्याख्या करती है। प्राचीन भारतीय विधिक प्रणाली में कर्तव्यों को ही धर्म माना गया है।

पश्चिमी देशों में राजनैतिक अस्थिरता, सरकारों में शीघ्र परिवर्तन, विधि में मनमानेपन, निरंकुश्ता, राष्ट्र राज्यों के उदय व तानाशाही शासनों की स्थापना से यूरोप में मानव अधिकारों के लिए संघर्ष प्रारंभ हुआ जिसकी परिणीति नागरिक अधिकारों की घोषणा के रूप में हुई। सन् 1215 ई. में मैग्ना कार्टा, 1679 ई. में बंदी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम, 1689 ई. के बिल आफ राइट्स, 1776 ई. में संयुक्त राष्ट्र और 1789 ई. में फ्रांस की क्रान्ति के बाद प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्धों के फलस्वरूप 'संयुक्त राष्ट्र संघ' के गठन से विश्व समुदाय का ध्यान मानव अधिकारों की ओर गया, जिसमें आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व मानव कल्याण संबंधी अंतरराष्ट्रीय समस्याओं के हल के लिए मूल, वंश, लिंग, भाषा या धर्म के आधार पर विभेद किए बिना सभी के लिए मानव अधिकारों एवं मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की अभिवृद्धि करने व उसे प्रोत्साहित करने के लिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग उत्पन्न करना वर्णित है।

भारत देश की विशालता, विविधता, विकासशीलता, संप्रभुता, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्रात्मक गणराज्य के रूप में इसकी प्रतिष्ठा व ब्रिटेन के औपनिवेशिक राष्ट्र के रूप में इसके इतिहास के परिणामस्वरूप यहां मानव अधिकारों की परिस्थिति जटिल हो गई है।

***महानिदेशक, भारत तिब्बत सीमा पुलिस बल**

बदलते वैश्विक परिवेश में शोषण, प्रताड़ना, प्रभुत्व स्थापना, सामाजिक विशेषताएं, दुर्व्यवहार, अपराध, अपमान, जातिगत–भाषाई तनाव, आतंकवाद, नक्सलवाद, उग्रवाद, अलगाववाद आदि कुरीतियों का कोई स्थान नहीं होना चाहिए, किन्तु हम पाते हैं कि सफेदपोश, सक्षम एवं समर्थ ही मानव अधिकारों का सर्वाधिक हनन कर रहे हैं।

भारत का संविधान (अनुच्छेद 14, 15, 16, 17, 19, 20, 21, 23, 24, 39, 43 एवं 45), सशक्त न्यायपालिका, मानव अधिकार आयोग, अल्पसंख्यक/पिछड़ा वर्ग आयोग आदि संवैधानिक एवं शासकीय संस्थाएं मानव अधिकारों के आर्थिक व सामाजिक, सांस्कृतिक एवं व्यक्गित पक्ष की प्रतिष्ठा के लिए प्रयासरत है।

अर्द्धसैनिक बलों व पुलिस बलों में प्रारंभ से ही प्रशिक्षणों, व्याख्यानों, विचार गोष्ठियों, सम्मेलनों आदि के माध्यम से सदैव मानव अधिकारों का सम्मान करना सिखाया जाता है। भारत तिब्बत सीमा पुलिस बल में भारत–चीन सीमा पर सीमा प्रबंधन और स्थानीय जनता के साथ मिलकर सिविक एक्शन, सीमा क्षेत्र विकास कार्यक्रम, स्वास्थ्य/सफाई शिविरों, खेल, प्रशिक्षणों के माध्यम से मानव अधिकारों के परोक्ष/अपरोक्ष समर्थन व सुदृढ़ीकरण को बढ़ावा दिया जाता है। जम्मू–कश्मीर में आतंकवाद, उग्रवाद, छत्तीसगढ में वामपंथी उग्रवाद से निपटने में आई.टी.बी.पी. ने संतुलित व्यवहार व मानसिकता का परिचय देकर अपनी साख स्थापित की है।

वर्तमान में विकासशील देशों में मानव अधिकारों पर विकसित देशों द्वारा की जा रही विशेष निगरानी व टिप्पाणियों से एक अजीब सा माहौल उत्पन्न हो रहा है। परन्तु हम यह अपेक्षा करेंगे कि राष्ट्र सर्वोपरि होने में सुरक्षा बलों का मानवाधिकार सम्मान ही कारगर सिद्ध होगा।

समस्त अंतर्विरोधों के बावजूद आज भारत ने आवश्यक मानवीय मूल्यों नारी सम्मान, नैतिकता आदि की कसौटियों पर खरा उतरकर मानव अधिकारों के संरक्षण व संवर्धन के मूल उद्देश्यों की प्राप्ति की है। मनुष्य ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है और इसकी अस्मिता बरकरार रहनी ही चाहिए। जन–जागरूकता, जन समुदाय की भागीदारी, शासकीय कार्य योजना के सही क्रियान्वयन, नियमों के अनुपालन व राजनैतिक इच्छा शक्ति से आज भी हम मानव अधिकारों की नई परिभाषाएं गढ़ते हुए प्रत्येक व्यक्ति की आंखों से आंसू पोछने में सफलता हासिल कर लें तो एक उन्नत, विकसित और मानवीयता से ओतप्रोत खुशहाल भारत देश का सपना साकार हो सकेगा। सुरक्षा बलों के एक जिम्मेदार, सजग व सर्तक सदस्य के रूप में यह हमारी प्रतिबद्धता होनी चाहिए।

****

रजनीकांत मिश्रा*

मानवाधिकार का अर्थ है हरेक को स्वतंत्रता, समानता और सम्मान के साथ जीने का अधिकार। ये मूलभूत अधिकार हैं जो राष्ट्र, क्षेत्र, लिंग, नस्ल, धर्म, भाषा और वर्ण के भेदभाव से ऊपर उठकर सभी मनुष्यों को समान रूप से प्राप्त हैं। मानवाधिकारों में दासता और शोषण से आजादी, अभिव्यक्ति की आजादी, कार्य करने की आजादी जैसी बहुत सी बातें भी शामिल हैं। एक नागरिक और उस पर शासन करने वाली सरकार के बीच संबंधों के कारण ये मानवाधिकार और महत्वपूर्ण हो जाते हैं। राज्य का दायित्व है कि वह अपने नागरिकों की रक्षा करे और उनके अधिकारों का सरंक्षण करे। 10 दिसंबर 1948 को पेरिस में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा मानव अधिकारों के लिए वैश्विक घोषणा–पत्र यानी यूनिवर्सल डिक्लेरेशन आफ ह्यूमन राइट्स (यू.डी.एच.आर.) स्वीकृत किया गया था, वह मील का पत्थर है। इस घोषणापत्र के बाद से मानवाधिकारों के लिए व्यापक स्थान बनता जा रहा है और विश्व में सम्मान के साथ जीने का माहौल बनता जा रहा है। यूडीएचआर का आर्टिकल 1 कहता है कि – सभी मनुष्यों को गौरव और अधिकारों के मामले में जन्मजात स्वतंत्रता और समानता प्राप्त है। उन्हें बुद्धि और अंतरात्मा की देन प्राप्त है और परस्पर उन्हें भाईचारे के भाव से बर्ताव करना चाहिए।

मानव रूप में जन्म लेने के वरदान के कारण कुछ स्वतंत्रताएं और अधिकार भी हासिल हैं, जैसे– भेदभाव से आजादी, स्तरीय जीवन जीने की आजादी, अपनी क्षमताओं को पहचान कर उसे विकसित करने की आजादी, शोषण या अन्य तरह की हिंसा में व्यक्तिगत सुरक्षा की आजादी, अन्याय से आजादी, अभिव्यक्ति की आजादी और शोषण के बिना कार्य करने की आजादी। 1993 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन, उसके साथ ही राज्य मानव अधिकार आयोगों और मानव अधिकार अदालतों की स्थापना के साथ ही घरेलू स्तर पर मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए बेहतर परिस्थितियां और माहौल तैयार हुआ है।

भारत की सीमाओं की सुरक्षा में लगी सशस्त्र सीमा बल के रूप में हमें सामान्य नागरिकों के साथ–साथ सीमा पर बसे नागरिकों की रक्षा और उनके मानवाधिकारों का संरक्षण करने में सतत लगे रहना होता है। 1963 में सशस्त्र सीमा बल के गठन के बाद से इसके कार्य और भूमिका में कई बदलाव आए हैं। 2001 में एसएसबी को

***महानिदेशक, सशस्त्र सीमा बल**

भारत–नेपाल सीमा और 2004 में भारत–भूटान सीमा की सुरक्षा की जिम्मेदारी दी गई। यहां एसएसबी के जवानों को सीमा के नागरिकों के साथ–साथ सीमापार के नागरिकों का ख्याल रखते हुए अपना कर्त्तव्यपालन करना पड़ता है। मूलभूत मानवाधिकारों का सरंक्षण करना पड़ता है। इस कर्त्तव्यपालन में जरूरी है कि एस.एस.बी. का हर जवान मानवाधिकार की मूलभूत बातों से वाकिफ हो। मानवाधिकारों का ज्ञान एस.एस.बी. की कार्यशैली का अहम हिस्सा है। इसलिए चाहे एस.एस.बी. में कोई कांस्टेबल हो या अधिकारी, हरेक को प्रशिक्षण के दौरान मानव अधिकारों का ज्ञान दिया जाता है। एस.एस.बी. के आपरेशनल मैन्युअल में मानवाधिकारों के नजरिए से दिशानिर्देश तैयार किए गए हैं। सुरक्षाकर्मियों को मानव अधिकारों के बारे में अधिक संवेदनशील बनाने के लिए समूह चर्चा, वाद–विवाद, सेमिनार आदि का आयोजन भी समय–समय पर होता है। एस.एस.बी. के भीतर भी बेहतर कार्य संस्कृति विकसित करने के लिए हरेक के मानव अधिकारों का ख्याल सतत् प्रयास के जरिए रखा जाता है। अधिकारियों व जवानों के बीच बेहतर संवाद व तालमेल के लिए के वाय पी यानी नो योअर पर्सनल की व्यवस्था भी शुरु की गई है।

भारत–नेपाल और भारत–भूटान सीमा पर देश की सुरक्षा और आपराधिक तत्वों पर नजर रखने का गंभीर दायित्व एस.एस.बी. निभा रहा है, साथ ही इन दोनों देशों के साथ ऐतिहासिक मैत्री संबंधों को भी संभाले हुए है। और इसमें एस.एस.बी. में निचले स्तर से लेकर ऊपर तक यह ध्यान रखा जा रहा है कि मानव अधिकारों की रक्षा हो। एस.एस.बी. के किसी भी कर्मी द्वारा मानव अधिकार उल्लंघन को बिल्कुल बर्दाश्त न करने की नीति कायम है। पिछले 2 वर्षों में एस.एस.बी. ने सीमा पर मानव तस्करी में संलग्न 463 लोगों को पकड़ा है और 1573 पीड़ितों को बचाते हुए मानव अधिकार की मशाल जलाए रखी है।

****

जाएद राद अल हुसैन*

संयुक्त राष्ट्र संघ में मानवाधिकारों के लिए उच्चायुक्त पद के चार सालों में मुझे कई उज्ज्वल अनुभव प्राप्त हुए, साथ ही संघर्षों और दर्द की चौंकाने वाली दास्तानें भी देखने–सुनने मिलीं, कुछ यादगार सबक भी मिले, इन सबको समेटने में बरसों लगेंगे। 1948 में मानवाधिकारों का वैश्विक घोषणापत्र तैयार किया गया था और मैं घूम–फिर कर उसी पर पहुंच जाता हूं, जहां से ये कहानी शुरु हुई थी। वह दौर बेहद खून–खराबे और हिंसा का था। दो विश्वयुद्धों की विभीषिका, अणुबम का इस्तेमाल, नरसंहार और भयावह निराशाजनक त्रासदियों के बीच बहुत से नए राष्ट्रों का उदय हुआ। इस स्थिति में राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर शांति स्थापना की राहें तलाशना बेहद कठिन था। संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों और मानवाधिकारों के वैश्विक घोषणा–पत्र को व्यवहार में लाना अवश्यंभावी था। यह आध्यात्मिकता का नहीं बल्कि जीवन और मृत्यु का सवाल था।

शांति के बिना न्याय की कल्पना नहीं की जा सकती। समाज में सभी के लिए जीवन के उच्च मानकों और व्यापक प्रगति के बिना स्थायी विकास भी हासिल नहीं किया जा सकता। दो–दो युद्ध की त्रासदियों को सहने वाले लोगों ने इस बात को अच्छे से समझ लिया था। वैश्विक नेताओं ने कई तरह की संधियों और समझौतों से उच्च स्तर के कानून बनाए और इस बात को सुनिश्चित किया कि वे कायम भी रहें। आज उस व्यवस्था को तोडऩे की बहुत सी कुटिल चालें चली जा रही हैं, लेकिन फिर भी विकास का जो रास्ता उन्होंने हमें दिखाया है, वह काफी महत्वपूर्ण है। आज वह पीढ़ी तेजी से विदा हो रही है। और अब स्वतंत्रता, न्याय और समानता पर ज्यादा जोर देने की बजाए विश्व पीछे की ओर लौट रहा है। कुछेक नेताओं, लोगों के व्यक्तिगत स्वार्थ, ईर्ष्या, जलन और क्षुद्र हितों के कारण दुनिया नए खतरे की ओर बढ़ रही है और समस्याओं के साझे निदान की कोशिशें विफल की जा रही हैं।

हम फिर उसी दौर में जा पहुंचे हैं, जहां नागरिक अधिकारों का हनन हो रहा है और लोग अपनी जड़ों से विस्थापित किए जा रहे हैं। हम वहीं पहुंच गए हैं, जहां मासूम लोगों के साथ–साथ अस्पताल, स्कूलों जैसे स्थानों पर भी सैन्य हमले हो रहे हैं, रासायनिक हथियारों का उपयोग किया जा रहा है। नस्लभेद और स्थानीयता के

***संयुक्त राष्ट्र संघ में मानवाधिकारों के लिए उच्चायुक्त**

श्रेष्ठ भाव के आधार पर आम जनता के बीच घृणा का प्रसार हो रहा है और यह सब लोकतंत्र और कानून की स्थापना के नाम पर किया जा रहा है। हम उसी दौर की ओर लौट रहे हैं, जहां औरतों का शोषण हो रहा है, और उन्हें अपने ही शरीर पर अधिकार का हक नहीं दिया जा रहा। असहमति की गुंजाइश खत्म हो रही है और मानवाधिकार कार्यकर्ताओं को जेल भेजा जा रहा है। हिंसा के इस रास्ते के घातक परिणाम होते हैं। हम देख रहे हैं कि किस तरह राजनीति में क्रूरता दरारों से प्रवेश कर रही है। असहनशीलता एक ऐसी मशीन है, जिसके पहिए अगर एक बार शुरु हो जाएं तो उन पर नियंत्रण कठिन होता है और वह क्रूरता के लिए अधिक से अधिक जगह बनाने लगती है। एक समूह विशेष से शुरु हुई घृणा का दौर बढ़ता ही जाता है, जो पहले छिटपुट हिंसा, फिर गृहयुद्ध और फिर देशों को लड़ाई की चपेट में ले लेता है। और जैसे–जैसे यह तनाव बढ़ता है, उसे रोकने का कोई कारगर उपाय नहीं दिखता, क्योंकि यह मशीन भावनाओं पर चलती है, और उस पर तर्क काम नहीं करते। हम, जो लोग मानव अधिकारों के लिए काम करते हैं, इस बात के बार–बार साक्षी बनते हैं।

अब हम इतिहास के ऐसे मोड़ पर खड़े हैं, जहां मानव अधिकारों को दांव पर लगाया जा रहा है। महिलाओं के अधिकारों का हनन हो रहा है। नस्लीय हिंसा बढ़ रही है। नागरिक आंदोलनों के लिए स्थान सीमित होते जा रहा है। संक्षेप में कहें तो हम उस व्यवस्था को ही खत्म कर रहे हैं, जिससे हमारी सुरक्षा सुनिश्चित होती है। सीरिया को नष्ट कर खून की इबारत लिखी गई है। यहां हम देख सकते हैं कि किस तरह मानव अधिकारों को तहस–नहस कर दिया गया है। 2016 में म्यांमार में रोहिंग्याओं के साथ जो हिंसा और क्रूरता हुई, उससे एक बार फिर यही बात साबित हुई कि शांति और सुरक्षा के बिना आर्थिक विकास बेमानी है। हम एक बार फिर नरसंहार के साक्षी बन रहे हैं, लेकिन उसे रोकने के लिए बहुत कुछ सार्थक नहीं कर पा रहे हैं।

अगर एक वाक्य में कहूं तो मानव अधिकार के लिए उच्चायुक्त के रूप में मैंने क्या अनुभव या सीख हासिल की, वह यह कि केवल दूरदृष्टि, उदारता, आजादी, बराबरी और न्याय के लिए संघर्ष करके ही हम मानवता की रक्षा कर सकते हैं, चाहे परिस्थितियां कैसी भी हों।

****

निष्ठा सत्यम*

1995 में बीजिंग प्लेटफार्म फॉर एक्शन में अमेरिका की तत्कालीन विदेश मंत्री हिलेरी क्लिंटन ने कहा था कि महिलाओं के अधिकार ही मानव अधिकार हैं। तब महिला सशक्तीकरण के लिए 12 क्षेत्रों को चिन्हित किया गया था, जहां महिला–पुरुष समान अधिकारों के लिए कार्य करने की जरूरत थी। हिलेरी क्लिंटन ने कहा था अगर हम आजादी और लोकतांत्रिक अधिकारों का पूरी तरह आनंद लेना चाहते हैं तो महिलाओं को अपने देश में सामाजिक और राजनैतिक कार्यों में पूरी तरह से भागीदारी की छूट मिलनी चाहिए। बीजिंग में इस आयोजन में भारत ने भी हिस्सा लिया था। यहां तैयार घोषणापत्र में यह बात फिर पुख्ता हो गई कि मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए जरूरी है कि हर देश पहले महिलाओं के विरूद्ध होने वाले अन्याय और गैरबराबरी को खत्म करे। संयुक्त राष्ट्र की भावना भी यही है। 1979 में सी.ई.डी.ए.डब्ल्यू.ए. को अंगीकार करना, 2000 में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद द्वारा वीमेन, पीस एंड सिक्योरिटी का प्रस्ताव पारित करना और 2015 में तैयार सतत विकास लक्ष्य का उद्देश्य भी यही है। ये सभी महिलाओं के लिए बराबरी पर जोर देते हैं। भारत इन सबका सहभागी रहा है, उसके अपने संविधान में भी हर नागरिक के लिए समानता का अधिकार सुनिश्चित है। महिलाओं की सुरक्षा के लिए भारत में कुछ खास कानून भी बने हैं, जैसे घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005, महिलाओं के यौन उत्पीडऩ के खिलाफ कार्यस्थल पर सुरक्षा विधेयक, 2010। इनके अलावा बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ, प्रधानमंत्री महिला उज्ज्वला योजना. द महिला ई–हाट स्कीम, राजीव गांधी नेशनल क्रैच स्कीम फॉर द चिल्ड्रन आफ वर्किंग मदर्स जैसी कई योजनाएं भी बनी हैं। 1993 में संविधान के 73वें व 74वें संशोधन के बाद स्थानीय निकायों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। लगभग 10 लाख महिलाएं नेतृत्व वाले पदों पर आईं, जो विश्व स्तर पर स्थानीय निकायों में महिलाओं की भागीदारी में सबसे ज़्यादा है।

महिला अधिकारों में हमने तो काफी कुछ हासिल किया है, लेकिन विश्व के कई देशों में स्थिति शोचनीय है। आर्थिक, सामाजिक, लैंगिक हर स्तर पर कई तरह के भेदभाव की शिकार महिलाएं हैं। वर्ल्ड इकानामिक फोरम द्वारा जारी ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट 2017 में लैंगिक समानता पैमाने पर 144 देशों में भारत का स्थान 108 है,

***डिप्टी कंट्री रिप्रजेंटेटिव फॉर यू. एन. वीमेन**

जबकि इससे पिछले साल यह 87वें स्थान पर था। 2017 में इंटर पार्लियामेंट्री यूनियन और यू. एन. वीमेन ने वीमेन इन पॉलिटिक्स मैप जारी किया था, जिसमें 193 देशों में भारत का स्थान 148वां रहा। लोकसभा की 542 सीटों पर 64 महिला प्रतिनिधि यानी 11.8 प्रतिशत महिलाएं हैं, जबकि राज्यसभा के 245 सदस्यों में 27 महिलाएं हैं और 11 प्रतिशत प्रतिनिधित्व करती हैं। एन.सी.आर.बी. के मुताबिक 2007 से 2016 के बीच महिलाओं के विरूद्ध अपराधों में 83 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। एन.सी.पी.सी.आर. की रिपोर्ट के मुताबिक 15 से 18 वर्ष की आयु की 39.4 प्रतिशत किशोरियां किसी शैक्षणिक संस्था में नहीं जाती हैं, इनमें से 65 प्रतिशत लड़कियां घरेलू कार्यों या भीख मांगने जैसे कामों में संलग्न हैं। वर्ल्ड बैंक की 2012 जेंडर स्टैटिक्स रिपोर्ट में बताया गया है कि 14 प्रतिशत लड़कियां उच्चतर माध्यमिक शिक्षा ग्रहण कर पाती हैं और केवल 26 प्रतिशत महिलाओं के बैंक खाते हैं। ये आंकड़े महिला समानता के दावों की कड़वी हकीकत बतलाते हैं।

अगर 2030 तक लैंगिक समानता का लक्ष्य प्राप्त करना है, तो फिर उन कारणों को जड़ से मिटाना होगा, जो महिलाओं के साथ सामाजिक, आर्थिक हर स्तर पर गैरबराबरी बढ़ाते हैं। लैंगिक असमानता दूर करने के लिए नीति निर्माताओं को समझना होगा कि यह कोई सामान्य समस्या नहीं है, बल्कि इसमें बहुत सी अंतर्निहित बातें हैं। धर्म, भाषा, जाति, क्षेत्र, राष्ट्रीयता, उम्र, शैक्षणिक स्थिति इन सबका संबंध इस गैरबराबरी से है और इन सबको ध्यान में रखते हुए सोच–विचार कर नीतियां बनाने की आवश्यकता है। लैंगिक समानता लाने में जो सांगठनिक अड़चनें हैं, उन्हें भी दूर किया जाना चाहिए। महिलाओं की प्रगति में एक बड़ी बाधा उन पर कम निवेश करना भी है। 2016–17 के बजट में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय को 17,640 करोड़ आबंटित किए गए थे, जबकि 2017–18 में 22, 095 करोड़। महिला कल्याण के लिए हमें निवेश बढ़ाना होगा। इसके अलावा घरों से लेकर बिजनेस मीटिंग और राजनैतिक मोर्चे हर स्तर पर महिलाओं की आवाज को स्थान देना होगा। बाल विवाह, लैंगिंक हिंसा, अत्याचार आदि को रोकना होगा और इनसे पीड़ित महिलाओं को सशक्त बनाना होगा। जमीन, ऊर्जा, तकनीकी, वित्त ऐसे तमाम क्षेत्रों में महिलाओं को बराबरी से उनका हक देना होगा। कार्यस्थलों पर भी महिलाओं की सुविधाओं को देखते हुए नीतियां बननी चाहिए, ताकि वे भेदभाव का शिकार न हों।

हम इतिहास के निर्णायक मोड़ पर खड़े हैं, जहां हम महिला समानता की राह में आई चुनौतियों का सामना करते हुए महिलाओं के लिए बेहतर भविष्य बना सकते हैं। सबका साथ, सबका विकास का उद्देश्य तभी पूरा होगा, जब कोई पीछे नहीं छूटेगा।

****

खण्ड III

महिला सशक्तीकरण और मानव अधिकार पर केन्द्रित आलेख

हर एक अधिकार का मतलब एक जिम्मेदारी है; हर एक अवसर एक उपकार और हर एक परिग्रह एक कर्त्तव्य है।

—जॉन डी. रॉकफेलर

आदिवासी अधिकार की अग्निशिखा

कृपाशंकर चौबे*

बीज शब्द : आदिवासी, मानवाधिकार, बंधुआ मजदूर, आंदोलन

सारांश

भारत में आदिवासियों के अधिकार का प्रश्न प्रारंभ से ही संघर्ष एवं सरकारी महकमों में जद्दोजहद का विषय रहा है। देश के लगभग हर क्षेत्र से उनके अधिकारों के लिए प्रखर रूप से आवाज उठती रही है। विख्यात साहित्यकार महाश्वेता देवी उन चु. निंदा लेखकों में शामिल हैं जिन्होंने सिर्फ लेखनी के स्तर पर ही नहीं बल्कि सक्रिय सामाजिक हस्तक्षेप के माध्यम से आदिवासियों के अधिकारों की पैरवी की। बंगाल के आदिवासियों के जीवन–संघर्ष, बंधुआ मजदूरों की दारुण दशा, उनकी मुक्ति के लिए महाश्वेता देवी द्वारा किए गए आंदोलन एवं मुकदमे तथा उन्हें प्राप्त कई अति महत्वपूर्ण पुरस्कारों की धनराशि को आदिवासियों के बीच सहर्ष दान कर देने का जिक्र मिलता है। आदिवासियों के अधिकारों के प्रश्न को उन्होंने अपने साहित्य में भी शिद्दत से उठाया। 'जंगल के दावेदार', 'शालगिरह की पुकार पर', 'टेरोडेक्विल', 'चेट्टी मुंडा और उसका तीर', 'अग्निगर्भ', '1084वें की माँ' इत्यादि प्रसिद्ध उपन्यासों तथा कई कहानियों के माध्यम से वे सत्ता के विस्तार तथा उसे कायम रखने की पद्दति को समझाते हुए आदिवासियों के शोषण तथा उनके मानवाधिकारों के हनन की जीवंत तस्वीर पेश करती हैं।

विख्यात साहित्यकार महाश्वेता देवी लेखक के सक्रिय सामाजिक हस्तक्षेप में विश्वास करती थीं। इसीलिए आदिवासियों के बीच उन्होंने 1965 में काम शुरू किया था और मृत्यु पर्यंत उनके मानवाधिकारों की रक्षा के लिए संघर्षरत रहीं। उनकी लड़ाई मैक्लुक्सीगंज से आरंभ हुई थी। 1965 से 1975 तक हर वर्ष दो–तीन बार वे मैक्लुक्सीगंज जाती थीं। महाश्वेता आदिवासियों की पीड़ा देखतीं तो उनकी जंग में शामिल हो जातीं। वे वहां बंधुआ बनाए गए आधिवासियों को मुक्त करने के लिए प्रशासन का दरवाजा खटखटातीं। उन्होंने महसूस किया कि उसके लिए समिति बनाकर काम करना उचित होगा। तदनुसार उन्होंने रामेश्वरम और दूसरे साथियों के साथ मिलकर 1981 में पलामू में सेमरा बंधुआ मुक्ति समिति

*आचार्य, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

बनाई और बंधुआ मजदूरों का सम्मेलन आयोजित किया था। 01 मई, 1981 को असह्य गर्मी की परवाह न करके महाश्वेता अपने सहयोगियों के साथ कभी पैदल, तो कभी किसी सवारी से चैनपुर ब्लॉक के सेमरा गांव पहुंची थीं। सेमरा गांव काफी प्रसिद्ध है। पांडे लोग सेमरा में ही रहते हैं और उनके बंधुआ लोग रहते हैं– दूर के छोटे–मोटे टीलों पर बसी टोलियों में। इसी तरह की एक टोली में बंधुआ–समिति का जन्म हुआ था। करीब 400 बंधुआ लोग उस सम्मेलन में आए थे। समिति गठित करने का उद्देश्य था कि बंधुआ खुद लड़ सकें। यह बात सर्वविदित थी कि इस तरह की समिति का मतलब, ऊंची जाति के मालिकों के साथ संबंध खराब करना है। फिर भी बंधुआ लोग आगे आए। एक बंधुआ ने कहा–'अगर मर जाएं, तो क्या जाता है? हम तो कीड़े–मकोड़े की तरह मर ही रहे हैं। फिर भी संतोष रहेगा कि हमारे नाती–पोते बंधुआ होकर नहीं मरेंगे।' पलामू में बंधुआ मजदूरों को सेवकिया, कामिया, हरवाहा, चरवाहा कहा जाता है, जिन्हें सबसे ज्यादा मेहनत के काम करने पड़ते हैं। 'बंधुआ' शब्द का अर्थ है 'बॉंडेड' या 'बंधा हुआ'। समिति ने 1983 में फिर बंधुआ मुक्ति सम्मेलन किया। पहली मई को भोर से ही बंधुआ लोग आने लगे, चौपाल का आयोजन शिवाजी मैदान में स्थित टाउन हॉल में हुआ। हॉल महात्मा गांधी को समर्पित है। और शायद पहली बार गांधी जी की अंतिम कतार के लोगों ने उस हॉल में कदम रखने का सौभाग्य प्राप्त किया था। 10 बजते–बजते करीब 2000 बंधुआ वहां उपस्थित हो गए– स्त्री–पुरुष और बच्चे, सत्तू और नमक की पोटलियां बांधे। सम्मेलन शुरू हुआ। बंधुआ लोगों के प्रतिनिधि मंच पर बैठे। उनमें से ही कुछ ने सम्मेलन का संचालन किया। बंधुआ लोग एक के बाद एक मंच पर आए और मंच पर आकर उन्होंने अपने ऊपर हुए अकथ्य अत्याचार की कहानियां सुनाईं। विशेष रुचि से महिलाओं की बातें सुनी गईं। पाथाल गरवा की तेतरी भुइयां ने एक बार चमरू साहू से 10 रुपये उधार लिए थे जिसे चुकाने के लिए 10 बरस से वह साहू के घर खट रही थी और साहू के हिसाब से अभी उधार चुका नहीं था। सेवकिया की व्यवस्था में सूद धीरे–धीरे बढ़ता जाता है। आज के 10 रुपये कुछ ही सालों में हजार रुपये हो जाते हैं। चौपाल में भाग लेने के लिए मालिक ने तेतरी को पीटा। फिर भी वह आई। मंगरू ने चैनपुर थाने के कारसो गांव की कहानी सुनाई। वहां के मुखिया और सरपंच बंधुआओं के साथ खूब मनमानी कर रहे थे। वहां के 22 बंधुआ, मालिकों की धमकी के बावजूद चौपाल में आए। इसके बाद बुजुर्ग मोहम्मद कासिम मंच पर आए। वह सोले गांव के रहने वाले हैं। जीवन में कभी मुंह खोलने का मौका नहीं मिला था। बहुत कोशिश करके, रुक–रुक कर उन्होंने कुछ बातें बताईं। जग्गासिंह से उनके बाप ने 15 रुपये कर्ज लिया था। 85 वर्ष तक सिंह के घर खट कर वे परलोक सिधारे। अब मोहम्मद, उसके लड़के, तारामणि के घर 32 वर्षों से काम कर रहे हैं। अभी भी कर्ज चुका नहीं है। सुना है, तारामणि सिंह विद्वान आदमी हैं। लाइब्रेरी की पुस्तकों के बीच ही बैठे रहते हैं। उनका बेटा पीतांबर ही जमींदारी की देखभाल करता है। तारामणि

के पास 32 बंधुआ हैं। पलामू में एक विशेष प्रकार के बंधुआ हैं जिन्हें धरमारू कहते हैं। इन्हें मालिक कोई कर्ज नहीं देता, सिर्फ ताकत के बल पर जोर जबर्दस्ती, किसी औरत या मर्द को मार पीटकर बंधुआ बना लेता है। भंडार गांव (थाना–विश्रामपुर) के पांडे लोग बड़े शक्तिशाली हैं। एक तो ब्राह्मण, दूसरे गांव के सरपंच जैसे बदरी पांडे। इसी गांव के सचिता पांडे ने तेतरी भुइयां को बंधुआ बना रखा है। अमरेश पांडा का बंधुआ है विदेशी भुइयां। अमरेश ने विदेशी की जमीन पर भी अपना नाम चढ़वा रखा है। आप सोच सकते हैं कि क्या मालिक लोग बंधुआ उन्मूलन कानून, 1976 के बारे में कुछ नहीं जानते? पर वे बंधुआओं से कहते हैं–'पैसे वापिस दो और घर जाओ।' मगर कितने पैसे? ननकू भुइयां की कहानी यों थी– उसके पुरखों ने बदरी पांडे के पुरखों से 180 रुपये कर्ज लिया था, ननकू 30 वर्षों से बदरी के घर खटकर वह रुपए उतार रहा है। उसके बाप–दादा कितने वर्षों तक खटे थे, उसे पता नहीं। बदरी ने उससे कहा है– 400 रुपये दे दो तो तुम्हें छोड़ दूंगा। इस तरह की और भी कितनी ही कहानियां हैं। 1976 के कानून पास होने के बाद भी लोग बंधुआ हुए हैं। बंधुआ मजदूरों की व्यथा सुनने के बाद महाश्वेता देवी ने सम्मेलन को संबोधित करते हुए कहा–क्या वास्तव में भारत सरकार सेवकिया और कामिया लोगों को मुक्त करना चाहती है? यदि सचमुच ऐसा है, तो वह कैसे यह काम करना चाहती है? मालिक का मतलब है ऊंची जाति के धनी लोग। क्या सरकार सचमुच उनको हाथ लगाना चाहती है? रास्ते में ऐसा एक भी पोस्टर तो नहीं देखा मैंने। रेडियो पर बंधुआ मुक्ति के संबंध में कोई कार्यक्रम हुआ था– ऐसा तो सुना नहीं। पलामू में बंधुआ मजदूर व्यवस्था इतनी नग्न है कि जो बंधुआ नहीं है, ऐसे गरीब किसान भी बंधुआ मजदूरों से घृणा करते हैं। कारण? कारण यह कि सेवकिया को कम से कम दिन में एक बार मालिक के घर नाश्ता मिलता है।

बंधुआ मजदूरों को मुक्त करने के लिए महाश्वेता की अगुवाई में समिति ने मुकदमे दायर किए। उन मुकदमों की संख्या हजार से अधिक थी। अनवरत संघर्ष के बाद अनेकानेक बंधुआ मजदूर मुक्त कराए जा सके। अप्रैल 1984 में पलामू के पनेरी बांध गांव में बंधुआ मजदूरों की चौपाल में भी महाश्वेता देवी शरीक हुई थीं। उसके बाद महाश्वेता ने पुरुलिया के शबर आदिवासियों के बीच अपने को स्थिर कर लिया। स्वास्थ्य कारणों से। डाल्टनगंज के कर्तव्य अधिकार मंच के न्यौते पर उन्होंने 1999 में चार दिनों की पलामू यात्रा जरूर की थी। महाश्वेता ने जिस तरह पलामू में बंधुआ मुक्ति समिति बनाकर उसके बैनर तले लड़ाई लड़ी, वैसा ही उन्होंने बंगाल के मेदिनीपुर में लोधा शबर आदिवासियों और पुरुलिया में खेड़िया शबर आदिवासियों के लिए किया। दोनों जगह उन्होंने कल्याण समितियां बनाईं।

महाश्वेता दी ने मंत्रियों और अधिकारियों को मेदिनीपुर तथा पुरुलिया के आदिवासियों की समस्याओं के निराकरण के लिए मर्मभरा पत्र लिखकर गुहार भी

लगाई। 14–07–1982 को तत्कालीन मुख्यमंत्री ज्योति बसु को लिखे सात पृष्ठों के पत्र में महाश्वेता ने झारग्राम में छह निर्दोष लोधाओं की हत्या का पूरा विवरण देते हुए न्याय की अपील की। उसी चिट्ठी में महाश्वेता ने बताया था कि 13–07–1982 को उन्होंने स्वयं घटनास्थल का दौरा कर वस्तुस्थिति आकलन किया और उसी आधार पर यह चिट्ठी लिख रही हैं। 07–05–1983 को ज्योति बसु को लिखे तीन पृष्ठों के एक अन्य पत्र में लेखिका ने ग्राम, थाना, परिवार की तालिका प्रस्तुत करते हुए पुलिस द्वारा पुरुलिया के 37 भूमिहीन खेड़िया शबर आदिवासियों की गिरफ्तारी का विरोध किया और उनकी रिहाई कराने तथा उनके संदर्भ में पंचायत को सक्रिय करने का अनुरोध किया था। 23–06–1983 को तत्कालीन रेल मंत्री ए.बी.ए. गनी खां चौधरी को लिखे दो पृष्ठों के पत्र में महाश्वेता ने आदिवासियों के आरक्षित कोटे से वंचित रहने का सवाल उठाया और चार जिलों के उन आदिवासियों का विवरण दिया, जिन्हें कॉल लेटर नहीं आया। उसी पत्र में महतो लड़कों की तालिका भी दी गई थी। 24–06–1989 को पश्चिम बंगाल के मुख्य सचिव को लिखे दो पृष्ठों के पत्र में लेखिका ने निर्दोष लोधा आदिवासियों पर अत्याचार रोकने की अपील की। आदिवासियों के सवाल पर अधिकारियों, मंत्रियों को पत्र लिखने का क्रम महाश्वेता देवी ने मृत्यु पर्यंत जारी रखा।

आदिवासियों की कोई समस्या महाश्वेता की कई रातों की नींद उड़ा ले जाती थी। एक बार उनसे मिलने नामवर सिंह समेत हिंदी के कुछ लेखक उनके घर आए। उनसे वे बात कर रही थीं कि कुछ आदिवासी अपनी समस्या लेकर आए। महाश्वेता दी हिंदी लेखकों को छोड़कर आदिवासियों की समस्या सुनने चली गईं। वे आदिवासियों से मिलने इसलिए गईं क्योंकि उन्हें लगा कि लेखकों से मुलाकात से अधिक जरूरी घर आए आदिवासियों की समस्या सुनना है। वे किसी समस्या को कल पर नहीं छोड़ती थीं। तुरंत फोन करतीं या पत्र लिखतीं। बीसवीं शताब्दी की सांध्यबेला में महाश्वेता देवी ने अखिल भारतीय स्तर पर घुमंतू जनजातियों के लिए संस्था बनाई। हुआ यूं कि महाश्वेता देवी भाषा शोध और प्रकाशन केंद्र के न्यौते पर वेरियर एलिन स्मृति व्याख्यान देने 14 मार्च 1998 को बड़ौदा गई थीं। वहां व्याख्यान का विषय था 'भारत में अपराधी आदिवासी'। भारत के जिन आदिवासियों को 1871 में ब्रिटिश सरकार ने अपराधी आदिवासियों के रूप में अधिसूचित किया और जिन्हें 1952 में भारत सरकार ने गैर अधिसूचित किया उन पर महाश्वेता ही अधिकारपूर्वक कुछ कह सकती थीं। पश्चिम बंगाल के लोधा शबर, खेड़िया शबर कभी अपराधी आदिवासी के रूप में अधिसूचित हुए थे, उसी कारण आज वे न्यूनतम मानवाधिकारों से वंचित हैं। बड़ौदा में महाश्वेता ने कुछ सवाल उठाए। बड़ौदा सम्मेलन में यह समवेत मांग हुई कि भारत सरकार बताए कि 1952 में 1871 के अधिनियम को कागज पर खत्म करने का कारण क्या था? और उसी अधिनियम को व्यवहार में जिंदा रखने का कारण क्या है? भारत के विभिन्न हिस्सों

में फैले गैर अधिसूचित आदिवासियों के कल्याण के लिए बड़ौदा में महाश्वेता ने एक संस्था बनाई डिनोटिफाइड एंड नोमेडिक ट्राइब्स राइट एक्शन ग्रुप (डीएनटी रैग)। मुंबई के लक्ष्मण गायकवाड, बड़ौदा के जीएन देवी और तुलसी बोदा भी उसमें शामिल किए गए। डीएनटी रैग के बैनरतले महाश्वेता देवी, जीएन देवी और लक्ष्मण गायकवाड ने महाराष्ट्र और गुजरात का व्यापक दौरा किया। उसी समय पुरुलिया में पुलिस हिरासत में बुधन शबर की हत्या हुई थी। 17 फरवरी 1998 को बुधन की मौत हुई थी और 22 फरवरी 1998 को महाश्वेता देवी ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को एक पत्र लिखा। उस पत्र को अदालत ने याचिका मान लिया और बुधन की हत्या के लिए राज्य सरकार को फटकार लगाई और बुधन के परिजनों को मुआवजा देने का आदेश दिया। कब्र से बुधन की लाश निकालकर उसका फिर से पोस्टमार्टम किया गया। बुधन आदिवासी संग्राम का प्रतीक बन गया। बाद में डीएनटी रैग की पत्रिका का नाम 'बुधन' ही रखा गया।

'बुधन' की पुलिस हिरासत में हुई मौत पर महाश्वेता की याचिका पर सुनवाई करते हुए अदालत ने बुधन की विधवा को प. बंगाल सरकार से एक लाख का हर्जाना देने का आदेश भी दिया। बुधन के बाद भद्र शबर हत्याकांड हुआ। भद्र शबर को पुरुलिया में 22 अक्टूबर 1999 को मार डाला गया था। उसके साथ बोरो थाना क्षेत्र के तिलावनी गांव के दो अन्य शबर आदिवासियों–श्रावण व बबलू को घायल कर दिया गया था। जब इन तीनों को अपहृत कर ले जाया गया तो भद्र की पत्नी दौड़े–दौड़े बोरो थाना गई थी और उसने पुलिस से भद्र को बचाने की गुहार लगाई थी। पुलिस यदि तत्पर हुई होती तो भद्र की जान बचाई जा सकती थी। पर पुलिस हिली तक नहीं। भद्र की हत्या को लेकर महाश्वेता देवी की अगुवाईवाली पश्चिम बंग खेड़िया शबर कल्याण समिति ने 25 अक्टूबर 1999 को एफआईआर दर्ज कराई। इस बाबत 16 नवम्बर, 1999 को समिति ने कोलकाता हाईकोर्ट में एक जनहित याचिका भी दायर की। भद्र हत्याकांड की सुनवाई के दौरान कोलकाता हाईकोर्ट ने आदिवासियों के विकास कार्यों पर पुरुलिया के जिला न्यायाधीश से रपट मांगी। पुरुलिया के जिला व सत्र न्यायाधीश ए. के. दास की एक सौ दो पेज की रिपोर्ट ने जिला प्रशासन को बेपर्दा कर दिया। हाईकोर्ट ने पुरुलिया के एसपी को फटकार लगाई और वहां के डीएम से पूछा कि वहां आदिवासियों के विकास के क्या काम हुए हैं– उसका पूरा विवरण अदालत को दिया जाए। डीएम ने जो रिपोर्ट दी, वह गलत सिद्ध हुई। डीएम की रिपोर्ट की सत्यता पर समिति ने सवाल उठाया तो हाईकोर्ट ने पुरुलिया के जज ए. के. दास से न्यायिक जांच कराई। जिला जज ने जांच के बाद अपनी रिपोर्ट जमा की। जिला जज की रिपोर्ट पाने के बाद हाईकोर्ट ने गलतबयानी के लिए पुरुलिया के जिलाधिकारी और राज्य सरकार को 8 दिसंबर 2000 को कड़ी फटकार लगाई। हाईकोर्ट ने 8 दिसंबर

2000 को पश्चिम बंगाल के मुख्य सचिव को निर्देश दिया कि आदिवासियों के विकास की बाबत धोखाधड़ी करने वाले अधिकारियों के विरुद्ध वे कार्रवाई करें। हाईकोर्ट ने मुख्य सचिव को 8 मार्च, 2000 तक अपनी कार्रवाई से अदालत को अवगत कराने का भी निर्देश दिया। हाईकोर्ट ने मुख्य सचिव से यह भी पूछा कि आदिवासियों की जो कल्याण परियोजनाएं हैं, वे क्यों पूरी नहीं हुईं? पुरुलिया के डीएम ने अपनी रिपोर्ट में बताया था कि जिले के नौ ब्लाकों में शबर आदिवासी रहते हैं, जबकि हकीकत ये है कि दस ब्लाकों में शबर आदिवासी रहते हैं। डीएम ने शबर टोलों की संख्या 129 बताई जबकि 170 शबर टोले हैं। डीएम ने शबर परिवारों की संख्या 2138 बताई जो 2580 है। डीएम ने पुरुलिया के शबर आदिवासियों की जनसंख्या 9374 बताई जो 11270 है। डीएम ने बताया कि भूमिहीन शबर आदिवासियों में 984.32 एकड़ जमीन बांटी गई जबकि सिर्फ 322.88 एकड़ जमीन ही बांटी गई। और जो जमीन बांटी भी गई, उससे कोई भी खेती योग्य नहीं है, बंजर है। डीएम ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि बड़ाबाजार ब्लाक के समातितिया गांव में भूमि सुधार का बहुत काम हुआ जबकि हकीकत में यह गांव है ही नहीं। उन्होंने कहा कि काइतिया शबर टोले में सड़क बनाई गई, यह टोला है ही नहीं। उन्होंने कहा कि चुक्रीडीह में कुआं बना, यह जगह है ही नहीं। डीएम ने लिखा कि राघोगोर गांव में काफी काम हुआ, यह गांव वास्तव में है ही नहीं। डीएम ने कहा कि सतना गांव में टैंक बनाया गया, जबकि वहां कोई टैंक नहीं बना है। डीएम ने चिपिपालियां गांव में कई काम कराने का दावा किया जबकि इस गांव का अस्तित्व ही नहीं है। डीएम ने लिखा कि अदबोना गांव में भूमि सुधार पर तीस हजार रुपए खर्च हुए जबकि यथार्थ में पांच हजार ही खर्च हुए हैं। बड़ाबाजार पंचायत में दो लाख 79 हजार रुपए खर्च किए जाने का दावा किया गया जबकि वास्तव में 8 हजार छह सौ छत्तीस रुपए ही खर्च हुए। कहा गया कि 18 शबरों को एक लाख 20 हजार रुपए सबसिडी कर्ज दिए गए जबकि वास्तव में 55 हजार 500 रुपए ही दिए गए। इंदिरा आवास के लिए रोमीगढ़ में 1,10,400 रुपए देने का दावा किया गया जबकि 13,800 रुपए ही दिए गए। कड़बाइद में 9300 रुपये देने के दावे हुए जबकि दिए गए 4225 रुपए। डीएम ने कहा कि बनजोरा में कोई रजनी शबर को 3500 दिये गए जबकि इस नाम का कोई है ही नहीं। डीएम की रिपोर्ट जहां झूठी निकली, वहीं पुरुलिया के जिला जज ए. के. दास की रिपोर्ट में कई चौंकाने वाले तथ्य सामने आए। जज ने शबरों के 152 गांवों का सर्वे किया। नौ अक्टूबर 2000 को उन्होंने सर्वे शुरू किया और पांच नवंबर तक वे गांव–गांव घूमते रहे। 8 दिसंबर को उन्होंने रिपोर्ट जमा की। जज ने पहली बार दो नए शबर गांवों के अस्तित्व का पता लगाया। ये गांव है– आम झरना और बड़ीजोर। दोनों ऊंचे पहाड़ों के पर हैं। वहां एक–एक कर पारी–पारी से स्त्री–पुरुष ही जज से मिलने आ सके। क्योंकि सबसे पास पहनने को कपड़े नहीं थे। एक मिलकर जाता तो उसका कपड़ा पहनकर दूसरा आता। जिला प्रशासन ने

आदिवासी कल्याण में 1989–99 में हुए खर्च का ब्यौरा नहीं दिया है। 1999–2000 में 30 करोड़ रुपए आदिवासी कल्याण योजनाओं के लिए आए जिसमें 8 करोड़ खर्च हुए। 22 करोड़ का क्या हुआ?

महाश्वेता देवी ने मैगसेसे, ज्ञानपीठ आदि से मिली पुरस्कारों की राशि पुरुलिया के आदिवासियों को दान कर दी। मैगसेसे पुरस्कार की राशि से पुरुलिया के खेड़िया इलाके में कई विकास कार्य हुए। उन कार्यों की देख–रेख पश्चिम बंगाल खेड़िया शबर कल्याण समिति करती थी। मैगसेसे पाने पर महाश्वेता देवी ने घोषणा की थी: यह राशि पुरुलिया के आदिवासी अंचल के कल्याण में ही खर्च की जाएगी। बांग्ला भाषा के लगभग सारे लेखक 1997 में जब विभिन्न पत्र– पत्रिकाओं के पूजा विशेषांकों के लिए रचनाएं लिखने में व्यस्त थे, तो महाश्वेता देवी शबर आदिवासियों के लिए चावल, दाल और कपड़े जुटाने के लिए दिन–रात एक किए हुए थीं। लिखना प्रायः ठप था। चौबीसों घंटे उनके दिमाग में सिर्फ शबर मेला था। 1997 के सितंबर–अक्टूबर के दौरान महाश्वेता दी से जो भी मिलता, उससे कहतीं, "आठ–नौ नवंबर 1997 को पुरुलिया जिले के राजनवगढ़ में शबर मेला है। उस महान मेले में आने वाले शबर आदिवासियों के खाने–पीने की व्यवस्था करनी है। कपड़े भी चाहिए। आप यथा सामर्थ्य मदद कीजिए।" जब भी शबर मेला होता तो उसकी पूरी व्यवस्था संभालने का जिम्मा वे अपने ऊपर ले लेतीं। उसी के बहाने पुरुलिया के सभी 15 हजार खेड़िया शबर आदिवासी इकट्ठा होते। बच्चे, बूढ़े, जवान, पुरुष और स्त्री, सभी की आत्मीय भागीदारी मेले में होती। उनके भोजन वगैरह की मुफ्त व्यवस्था मेले की आयोजक पश्चिम बंग खेड़िया शबर कल्याण समिति करती थी। महाश्वेता देवी उस समिति की कार्यकारी अध्यक्ष थीं। पुरुलिया में तो मेले के संयोजकगण ट्रकों में सामग्री प्राप्त कर लेते थे, उन्हें क्या पता महाश्वेता उसके पीछे कितना खटती थीं। उसके लिए वे पत्र –पत्रिकाओं में अपील जारी करती थीं। सहयोग मांगने पर महाश्वेता को कभी निराश नहीं होना पड़ा। 1997 के शबर मेले के लिए सहयोग मांगने वे कोलकाता के जगबंधु स्कूल गईं। वहां छात्रों ने आपस में चंदा इकट्ठा कर उन्हें एक हजार एक रुपए दिए। छोटे बच्चों ने तो अवाक कर दिया। प्लास्टिक, पोलिथीन के कई–कई पैकेटों में थोड़ा–थोड़ा चावल–दाल इकट्ठा कर दो क्विंटल खाद्य सामग्री और कपड़े उन्होंने दिए। हुगली के उत्तरपाड़ा कालीबाटी मूक बधिर छात्रों ने भी एक सौ रुपए महाश्वेता को दिए। एपीजे स्कूल के छात्र तो परेड करते हुए महाश्वेता के घर आए और आपस में एकत्र किए साबुन, व्यवहार योग्य कपड़े, जूते और दवाइयां दीं। कोलकाता के कई अन्य स्कूल–कालेजों के छात्र भी आए और आपस में संग्रह की हुई सामग्री श्रद्धापूर्वक महाश्वेता को दान की। सभी के मन में एक अच्छे काम में सहयोग करने का आनंद था। एफ. एम. चैनल पर डॉक्टर धरनीधर घोष ने जब बताया कि खेड़िया शबर आदिवासियों के लिए महाश्वेता देवी ने व्यवहार

योग्य कपड़े दान करने की लोगों से अपील की है तो सुबह छह बजे से रात दस बजे तक महाश्वेता देवी के कोलकाता के बालीगंज स्टेशन रोड स्थित आवास पर कपड़े आने शुरू हुए तो आते ही रहे। विभिन्न पूजा मंडपों से भी सामग्री आई। जो भी लोग सामग्री लेकर आते, उन्हीं के सहयोग से महाश्वेता बोरे में सामग्री को अलग– अलग भरवाकर रखवातीं। चावल अलग बोरे में, दाल अलग बोरे में। बच्चों के कपड़े अलग बोरे में, महिलाओं के अलग और पुरुषों के कपड़े अलग बोरे में। बोरे भरकर वे सिलवातीं। फिर उस पर इस तरह लिखा जाता– बच्चों के कपड़े–शबर मेला 1997। शबर मेले के पांच रोज पहले पुरुलिया के कुछ शबर आए। ट्रक आया। महाश्वेता का घर जो गोदाम बन गया था, वह हल्का होने लगा। बोरे लादे गए ट्रकों पर। सारा सामान पुरुलिया चला गया। मेले में दो दिन रह गये तो महाश्वेता भी गईं। महाश्वेता देवी के भाई–बहन, पुत्र–पुत्रवधु, पौत्र भी वहां पहुंचे थे। मेले के लिए पुरुलिया के राजनवगढ़ में एक विशाल शामियाना बना था जिसमें मेला शुरू हुआ। बगल में शबर शिल्प मेला भी लगा था। उसमें खजूर के पत्ते, कांसी घास, पत्थर, लकड़ी से बनी दैनिक उपयोग और सजावट की चीजें सजी थीं जो शबर आदिवासियों के उन्नत हस्तशिल्प की साक्ष्य थीं। मेले के प्रवेशद्वार में शबरों की सांस्कृतिक टीमें नाचते–गाते प्रवेश कर रही थी। समापन के समय भी उन्होंने नाचते– गाते ही मेले से विदा ली। दस नवंबर को तड़के शबर आदिवासियों के सामूहिक नृत्य–गीत–संगीत से मेले का समापन हुआ। सभी उम्र के शबर आदिवासी एक संग नाच–गा रहे थे। उसके सारे वाद्य भी एक साथ बज रहे थे। उनमें प्रकृति की समूची आवाजें अपने मूल स्वरूप और आदिम राग के साथ मौजूद थीं। सहस्त्रों वर्षों से शबरों के गीत–नृत्य–संगीत की नैसर्गिक मुद्रा जस की तस है। हर काल–परिस्थिति में शबर आदिवासियों ने अपनी संस्कृति को अक्षुण्ण रखा है। पराधीनता में भी। स्वाधीनता में भी। शोषण–दोहन–उत्पीड़न में भी। दुःख और संताप में भी। मेले के समापन के वक्त शबरों के साथ महाश्वेता भी मुक्त होकर आनंदपूर्वक नृत्य कर रही थीं। उनका मुक्त नृत्य प्रमाण था कि शबर आदिवासियों के साथ उनका जुड़ाव कितना गहरा था। शबर आदिवासियों के बीच महाश्वेता उन्हीं जैसा रहती थीं। उनके साथ रहते हुए जो वे खाते–पीते, वही खाती–पीतीं। वहां महाश्वेता टूथपेस्ट से नहीं, चाक से मंजन करती थीं। नहाते वक्त सिर में साबुन या शैंपू नहीं, मिट्टी लगाती थीं। ताल में नहाती थीं और तौलिए का नहीं, गमछे का इस्तेमाल करती थीं जैसा कि शबर आदिवासी करते हैं।

आदिवासियों के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए महाश्वेता देवी ने सड़क पर उतरकर संघर्ष ही नहीं किया, अपने साहित्य में भी उन्होंने सदियों से मुख्यधारा से बाहर धकेली गई आदिवासी अस्मिता के प्रश्न को शिद्दत से उठाया। महाश्वेता देवी ने आदिवासियों को अपनी कई कथाकृतियों का नायक बनाया। महाश्वेता देवी के

उपन्यासों– 'जंगल के दावेदार', 'शालगिरह की पुकार पर', 'टेरोडेक्टिल', 'चोट्टि मुंडा और उसका तीर', 'अग्निगर्भ' और उनकी कहानियों–'बाढ़', 'बांयेन, 'शाम सवेरे की मां', 'शिकार', 'बीज', 'मूल अधिकार और भिखाली दुसाध', 'बेहुला' और 'द्रौपदी' में आदिवासी समाज की चिंता बांग्ला साहित्य में खुलकर प्रकट हुई। महाश्वेता की रचनाएं जब हिंदी व दूसरी भाषाओं में भी अनूदित हुईं तो लेखिका की आदिवासी चिंता एक अखिल भारतीय चिंता बन गई। इसीलिए जब भी आदिवासी समाज और भारतीय साहित्य का संदर्भ आता है तो सबसे पहले महाश्वेता देवी का नाम ही अपने आप सामने उभर आता है। महाश्वेता देवी का उपन्यास 'जंगल के दावेदार' बताता है कि बिरसा के महासंग्राम की वजह क्या थी? भारत के अधिकतर आदिवासी समुदाय मुख्यतः जंगल पर आश्रित रहे हैं। जंगल ही उनके जीवन और जीविका का उद्गम स्थल रहा है। लेकिन भारत में अंग्रेजी राज के दौरान सन् 1878 ई. में कुख्यात जंगल कानून लागू किया गया तो उसके परिणामस्वरूप आदिवासी जंगल में शिकार करने, पशु चराने, लकड़ी–पत्ते–मधु आदि संग्रह करने जैसे सभी अधिकारों से वंचित हो गए। यहां तक कि जंगल के भीतर और आसपास आदिवासियों के जितने भी गांव थे, सरकार ने उन्हें जबरन उजाड़ दिया। एक तरह से जंगल पर आश्रित एक विशाल जनसमुदाय को आजीविका का वैकल्पिक अवसर न देकर, उन्हें जंगल से भगाकर तिल–तिल मरने के लिए मौत के मुंह में धकेल दिया गया। तत्कालीन अंग्रेज हुकूमत ने वैसे भी वह कानून जंगल की वनस्पतियों और वन्य प्राणियों के संरक्षण के मकसद से लागू नहीं किया था, बल्कि वह भारत की विपुल वन संपदा को लूटने की महज सरकारी चाल थी। जंगलों से आदिवासियों को क्रूरतापूर्वक खदेड़ कर जंगलों को बड़े–बड़े यूरोपीय ठेकेदारों और देसी महाजनों के हाथों बेच दिया गया था और उसके बाद उन ठेकेदारों–बनियों–महाजनों के गिरोह जंगल की लूट में जुट गए। दूसरी ओर जंगल जिनकी आजीविका का एकमात्र साधन था, जो जंगल को मां मानते हैं, मां की ही तरह उसका सम्मान और पूजा करते रहे हैं, तरह–तरह के लोकाचार और अनुष्ठान के माध्यम से जो लोग हजारों वर्षों से जंगल को बचाए हुए खुद भी जंगल की विविध संपदा पर आश्रित होकर जी रहे थे, वे सारे के सारे आदिवासी अपना सब कुछ खो जाने के बाद धीरे–धीरे विक्षुब्ध होने लगे। एक के बाद एक आदिवासी विद्रोह पनपने लगा। ब्रिटिश सरकार के तरह–तरह के दमन–उत्पीड़न के बावजूद विद्रोह की आग फैलती ही गई। इस आग ने बिरसा मुंडा के 'उलगुलान' या महाविद्रोह के जरिए भीषण रूप धारण किया। सन् 1899–1900 ई. के दौरान सदी की शुरुआत में भारत के बिहार प्रांत के छोटानागपुर अंचल में यह ऐतिहासिक विद्रोह आरंभ हुआ। इसी महाविद्रोह पर महाश्वेता देवी ने उपन्यास लिखा–'अरण्येर अधिकार'। हिंदी में यह 'जंगल के दावेदार' शीर्षक से अनूदित होकर प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में महाश्वेता समाज में व्याप्त मानवीय शोषण और उसके विरुद्ध उबलते

विद्रोह को उम्दा तरीके से रेखांकित करती हैं। बिरसा मुंडा की असमय मौत से भले ही यह आंदोलन कुछ समय के लिए दब गया था लेकिन बाद में धीरे–धीरे अलग–अलग तरह से अलग–अलग रूप में सभी आदिवासी समुदायों के बीच फैल गया। उसका प्रभाव आज भी विद्यमान है। यानी अविकसित आदिवासी समुदाय के बीच से निकला असाधारण नायक बिरसा मुंडा भारत के समस्त उत्पीड़ित–वंचित आदिवासियों के भीतर एक प्रतिरोधी मानसिकता पैदा करने में समर्थ साबित हुआ था। उसकी मृत्यु या पराजय ही आखिरी बात नहीं। बल्कि उसके पराजय और बलिदान से ही आदिवासी समुदाय ने व्यापक रूप से संगठित होना सीखा, अपने अधिकारों के प्रति सजग होना सीखा, इंसान के रूप में खुद को प्रतिष्ठित करने में समर्थ हुए। यही थी बिरसा मुंडा के संग्राम की महान देन। इस देन को महाश्वेता देवी ने अपने उपन्यास 'जंगल के दावेदार' में बखूबी चित्रित किया है। महाश्वेता देवी के इस उपन्यास में बिरसा मुंडा के पूरे जीवन संग्राम की झलक हम पाते हैं। सन् 1875 में एक बेहद गरीब परिवार में बिरसा मुंडा का जन्म हुआ था। उसके परिवार में ही नहीं, बल्कि समूची मुंडा जाति में किसी को पढ़ने–लिखने का कुछ खास मौका नहीं था। इक्के–दुक्के मुंडा बच्चे क्रिश्चियन– मदद से मिशन स्कूल में पढ़ते थे और आगे चलकर अपना धर्म बदल कर ईसाई धर्म प्रचारक के रूप में जीवन बिताते थे। बचपन में बिरसा के मन में पढ़ाई करने की तीव्र इच्छा थी। लुकास नामक एक क्रिश्चियन मुंडा की मदद से जर्मन मिशन स्कूल बुरजू में दो साल पढ़ने के बाद बिरसा ने दो साल तक चाईबासा मिशन स्कूल में पढ़ाई की। बिरसा का शिक्षा काल महज इन चार वर्षों का ही था। चाईबासा मिशन स्कूल के प्रधान शिक्षक द्वारा मुंडा लोगों के लिए अपशब्द कहने पर उसने गुस्से में स्कूल छोड़ दिया और क्रिश्चियन धर्म को त्याग पुन अपना धर्म अपना लिया। उस समय आदिवासी घोर गरीबी के चलते लाचारी में अपना धर्म छोड़कर झुंड के झुंड ईसाई होने के लिए मजबूर होते थे। लेकिन बिरसा ने अपने समुदाय की रक्षा के लिए मिशन स्कूल के संभावनापूर्ण जीवन को आसानी से त्याग कर गरीबी और दुर्भाग्य से भरी जिंदगी को चुन लिया। उसकी किशोरावस्था में ही जंगल कानून लागू किया गया था। मुंडा लोग उस वक्त घोर गरीबी में डूबे हुए थे। दरिद्रता का दबाव इतना जबर्दस्त था कि आधे पेट या भूखे रहकर दिन काटते। वे पूरी तरह विध्वस्त होकर नाते–रिश्ते तोड़कर सिर्फ अपनी जान बचाने के लिए धनी जमीदारों या बनिया–महाजनों के दरवाजे पर गुहार लगाते– बाबू लोग, मुझे खरीद लीजिए। सिर्फ घास का दाना खाकर बिना मजूरी के सारी जिंदगी आपका काम करूंगा। धनी लोग मुंडाओं की दरिद्रता का फायदा उठाकर गैरकानूनी रूप से दास के रूप में जीवन–भर काम कराते रहते थे। इस भयानक गुलामी के बावजूद मुंडाओं को थोड़ा–सा भात या रोटी खाने को नहीं मिलती थी। खाने में उनको घास का दाना ही दिया जाता था। सच तो यह है कि दो चार मुंडा सरदारों को छोड़कर सारे मुंडा

आदिवासियों को घास का दाना खाकर ही जिंदगी गुजारनी पड़ी है। हर जमाने में इस दृश्य की पुनरावृत्ति होती आई है।

बिरसा का परिवार उस समय घोर संकट में था। पांच–पांच बच्चों को लेकर बिरसा के माता–पिता आधे पेट भूखे रहकर दिन काट रहे थे। ऐसी परिस्थिति में धीरज खोकर बिरसा एक शर्मनाक काम कर बैठा। चालकी नामक एक औरत की मृत्यु हो जाने पर उसे गांव के 'गोर स्थान' (कब्रिस्तान) में 'गोर' (दफना) दिया गया। चालकी के शव के साथ चांदी की एक अंगूठी और एक अठन्नी भी कब्र में रख दी गई थी। मुंडाओं में मान्यता है कि मृत्यु के बाद भगवान की देहरी पार कर उसके पास जाने के लिए कुछ नजराने की जरूरत पड़ती है। इसलिए मुंडा लोग अपनी हैसियत के मुताबिक अपने नाते–रिश्तेदारों के शव के साथ कुछ रुपये–पैसे और कीमती वस्त्र कब्र में रख देते हैं। बिरसा ने आधी रात में चालकी की कब्र खोद कर अंगूठी और अठन्नी निकाल ली और दूसरे दिन सुबह बाजार जाकर उससे चावल खरीद लाया। लेकिन दुर्भाग्यवश कब्र खोदकर पैसा निकालते वक्त गांव के आदमी ने उसे देख लिया था और उसने चारों तरफ यह बात फैला दी थी। बिरसा ने जैसे ही चावल लाकर मां के सामने रखा, वैसे ही मां ने लात मारकर चावल फेंक दिया। बिरसा दुख, अपमान और शर्म के मारे जंगल चला गया। चार दिन–चार रात भूखे–प्यासे, बेचैनी में जागते हुए भटकते–भटकते अचानक उसकी मानसिकता में पूरी तरह बदलाव आया। उसने महसूस किया कि मुंडा लोगों के आगे बढ़ने के मार्ग में धार्मिक सुधार पहला कदम हो सकता है। धार्मिक सुधार के जरिए ही वह मुंडाओं की जातीय विशिष्टता और स्वतंत्रता वापस ला सकता है। यदि उनकी अलग जातीय चेतना को जगाया जाय तो वे मनुष्य के रूप में आत्म सम्मान और गौरव हासिल कर पाएंगे। फिर उन्हें संगठित कर पाना सहज होगा। बिरसा ने उन्हें संगठित करने के लिए धार्मिक संस्कार के माध्यम से उनकी जातीय चेतना को जागृत करने का संकल्प किया ताकि मुंडा लोग खुद ही अपनी बदकिस्मती से लड़ सकें। इसी उद्देश्य से जंगल से वापस आकर बिरसा ने खुद को 'भगवान' या 'धरती आबा' घोषित कर दिया।

मुंडा लोग लंबे समय से एक योग्य नेता का अभाव महसूस कर रहे थे। उनको राह दिखानेवाला कोई नहीं था इसलिए अपार दुख का बोझ उठाये उनकी जिंदगी गुजर रही थी। वे कोई प्रतिवाद–प्रतिरोध नहीं कर पा रहे थे। इसलिए बिरसा ने जब खुद को 'भगवान' घोषित किया तो मुंडा लोगों ने उसे स्वत: भाव से स्वीकार कर लिया और उसे ही अपना नेता मान लिया। दूर–दूर से मुंडा लोग उसके पास आकर इकट्ठा होने लगे। इस घटना से सरकार को खतरे की गंध मिली और सन् 1897 ई. में मुंडाओं के विद्रोह के लिए भड़काने के जुर्म में बिरसा को गिरफ्तार कर दो वर्षों तक जेल में रख दिया। दो साल बाद जेल से वापस आते ही बिरसा फिर से मुंडाओं को संगठित

करने के काम में कूद पड़ा। इस बार लुका–छिपाकर नहीं, बल्कि सीधे–सीधे संग्राम का आह्वान किया। यह लड़ाई सिर्फ सरकार ही नहीं, सभी अत्याचारियों के खिलाफ थी। हिंदू महाजन–बनिया–जमीदार–ठेकेदार और सरकार सबको एक साथ शत्रु घोषित किया गया। लेकिन आमने–सामने युद्ध नहीं, मुंडा लोगों के पास सैन्य शक्ति जैसी कुछ भी नहीं है– इस बात को ध्यान में रखते हुए बिरसा ने गुरिल्ला युद्ध (छापामार लड़ाई) की घोषणा की। हर मुंडा का घर, पहाड़ की गुफा, जंगल आदि जगहों को किले के रूप में इस्तेमाल करने का उसने निर्देश दिया। उसका उद्देश्य था छापामार तरीके से लड़ाई करते हुए धीरे–धीरे सरकार को कमजोर करके एक समय स्वतंत्र मुंडा देश स्थापित करना। यह लंबी और पूरी लड़ाई शुरू होने से पहले बिरसा ने कई काम किए। मुंडाओं के दो पुराने धर्म स्थल चुटिया मंदिर और जगन्नाथपुर मंदिर पर हिंदुओं ने कब्जा करके अपने मंदिर बना लिये थे। सबसे पहले इन दोनों धर्म स्थलों पर मुंडाओं का अधिकार उसने कायम किया। इसके बाद मुंडाओं की पहली राजधानी नवरतनगढ़ से मिट्टी लाकर मुंडाओं में स्वतंत्रता की आकांक्षा को उसने जोरदार ढंग से जाग्रत कर दिया। इस तरह के धार्मिक और राजनीतिक काम के जरिए उसने मुंडाओं को संगठित और संघबद्ध करके लड़ाई के लिए तैयार किया। इसके बाद उसने घोषणा की कि 25 दिसंबर 1899 से शुरू होगा वर्षों से आकांक्षित मुंडाओं का 'उलगुलान' यानी महाविद्रोह। लड़ाई शुरू हो गई। बिरसा के नेतृत्व में मुंडाओं ने जंगलों, गुफाओं में छिपकर एक भयंकर युद्ध आरंभ किया। लेकिन ब्रिटिश सरकार की सांगठनिक दक्षता, आधुनिक अस्त्र–शस्त्र, युद्ध कौशल, सैन्य शक्ति और आर्थिक क्षमता के सामने मुंडाओं को पराजय स्वीकार करनी पड़ी। सन् 1900 के जनवरी महीने के बीचों बीच सैल्राकाब पहाड़ पर सच्चे वीरों की तरह लड़ते हुए बिरसा अनुयायियों की मुंडा वाहिनी परास्त हुई। इस वाहिनी के लगभग सात सौ बहादुर लड़ाकू मारे गए। बहुत से योद्धा घायल और कैद हुए। इसके बाइस दिन बाद बिरसा एक अन्य जंगल में कुछ विश्वासघातियों के चलते पकड़ा गया। 9 जून 1900 को विचाराधीन कैदी के रूप में संदिग्ध परिस्थितियों में बिरसा मुंडा की मृत्यु हुई।

किसी भी व्यक्ति के चार मौलिक अधिकार होते हैं– रोटी, कपड़ा, मकान और शिक्षा। इन मौलिक अधिकारों को हासिल करने की आकांक्षा जगाते हुए अपने समुदाय के पिछड़े एवं अचेतन लोगों को संगठित करके जंगल पर अधिकार पाने की लड़ाई से जोड़कर बिरसा ने एक वृहद आंदोलन की शुरुआत की थी। भारत के इतिहास की पटभूमि पर यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना है। बिरसा ने अपने समय से काफी आगे निकल कर एक ऐसे आंदोलन की शुरुआत की थी, जिसमें एक सौ 18 साल बाद आज भी समूची दुनिया के प्रायः सभी देशों के लोगों को किसी न किसी रूप में शरीक होना पड़ रहा है। बिरसा ने जल–जंगल–जमीन के अधिकार को लेकर उलगुलान किया था।

आज जल–जंगल–जमीन का सवाल भारत में सबसे सुलगता सवाल है। कहा जा रहा है कि अगला विश्वयुद्ध जल के लिए लड़ा जाएगा। इसे बिरसा ने 1899–1900 में ही समझ लिया था। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि बिरसा अपने समय से कितना आगे था।

महाश्वेता ने बिरसा के महासंग्राम के बाद तिलका माझी के संग्राम पर 'शालगिरह की पुकार पर' नामक उपन्यास लिखा। उसमें लेखिका की स्थापना है– हिंदुस्तान में गोराशाही लूट पर टिकी थी। व्यापार करने आई ईस्ट इंडिया कम्पनी ने लूट–व्यापार को स्थायी बनाने के लिए षडयंत्र और सैनिक हस्तक्षेप के जरिए 1757 में प्लासी–युद्ध में जीत के बाद सत्ता हाथ में ले ली। मगर रियाआ पर प्रभुत्व स्थापित करना आसान न था। गोरों के खिलाफ असंतोष फैलने लगा था। मुनाफे के लिए गोरे अकाल और भूख की तिजारत कर रहे थे। अपने शासन क्षेत्र का विस्तार कर रहे थे। बिहार–बंगाल के जंगल के दावेदार संथालों से अपना लोहा मनवाने और उनकी स्वतंत्र–प्रवृत्ति पर काबू पाने के लिए गोरों ने जंगल–उत्पादों, धान–चावल की खरीद शुरू की। गोरों ने बाजार को हथियार बनाया। संथाल भड़क उठे और विद्रोह की कमान संभाली संथाल परगना के आदि विद्रोही तिक्का माँझी ने। संथाल जीवन और गोरों के विरुद्ध उनके ऐतिहासिक संग्राम की गाथा 'शाल–गिरह की पुकार' में कही गई है। यह न केवल इतिहास है बल्कि हर भारतीय के लिए गौरव–स्मृति भी है।

महाश्वेता के भीतर की वेदना को 'टेरोडेक्टिल' उपन्यास की चंद पंक्तियों में देखा जा सकता है जब एक पात्र कहता है, 'आदिवासी कल्याण के मद में प्राप्त रुपयों से इन राजपथों, सड़कों का निर्माण हुआ है, ताकि मालिक, महाजन, दलाल और अय्याश लोग आदिवासियों द्वारा बनाई शराब और आदिवासी युवतियों के इच्छुक लफंगे, अहंकारी युवक सीधे आदिवासियों की बस्तियों तक पहुंच सकें।... ये आदिवासी जब इन रास्तों पर चलते हैं तो वे उनकी शिक्षा व्यवस्था, सिंचाई के पानी, पीने के पानी और स्वास्थ्य केंद्रों की समाधि के ऊपर पांव रखकर चलते हैं।....उनका प्राप्य क्या है? भारत की कुल आबादी के सात दशमलव सात छह प्रतिशत जो लोग हैं, उन पांच करोड़, छियानबे लाख, अठाइस हजार छह सौ अड़सठ लोगों का प्राप्य क्या है, यह अब भी उन्हें नहीं बताया गया है.....न दूरदर्शन बताता है न रेडियो न अखबार न एमएलए, एमपी के प्रत्याशी, न पंच न पंचायत, न राज्य सरकारें न आदिवासी सलाहकार...। न बतलाने की इस नीति का अनुसरण करने के लिए कितना विपुल श्रम और अर्थ व्यय होता है। कितने ही दिग्गज बुद्धिजीवी इसमें लगे हैं। कितने ही राजनैतिक दांव–पेंच इसे लेकर चले जाते हैं। उनका प्राप्य क्या था, इसे जाने बिना ही आदिवासी अपनी प्रेत छाया से ढंकी जिंदगियां लेकर इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर जाएंगे।' ये एक–एक

शब्द महाश्वेता के भीतर खौल रहे हैं। महाश्वेता की बेचैनी उनकी दूसरी कृतियों में भी देखी जा सकती है। 'टेरोडेक्टिल' पूंजीवादी प्रगति और आदिम संस्कृति के दो जीवन मूल्यों के संघात का चित्रण करता है तो 'चोट्टि मुंडा और उसका तीर' शोषण के खिलाफ चोट्टि मुंडा के वीरतापूर्वक संघर्ष की महागाथा है। 'चोट्टि मुंडा और उसका तीर' में महाश्वेता देवी पूछती हैं— आदिवासियों के हित में कानून बने पर लागू कितने हुए? क्या बंधुआ आदिवासी मुक्त हो गए? बेगी प्रथा समाप्त हुई? हवाई योजनाविदों का विश्वास है कि इन इलाकों में 'कुष्ठ ग्राम' है जहाँ सबके सब कुष्ठ रोगी हैं। पर ऐसा गाँव नहीं मिलता। कागजी विकास योजनाओं के पीछे दृष्टि है कि आदिवासी मनुष्य नहीं, तमाशे के खिलौने हैं। जब आदिवासी समाज में हिंसा का ज्वार उभरता है तब दिल्ली हतप्रभ रह जाती है। आदिवासियों के बारे में दिल्ली की समझ अंग्रेजों जैसी है। 'अक्लांत कौरव' में महाश्वेता देवी बताती हैं—जनपक्षीय राजनीति की चुनावों में भी विजय होती है। वे सत्ता में भी आते हैं। ऐसे में वंचितों—शोषितों की आकांक्षा जोर मारती है कि अब दिन फिरेंगे। लेकिन सत्तासीन वामपंथी कार्यकर्ताओं के लिए क्रांति, परिवर्तन का अर्थ बदल जाता है। जनकांक्षाएं धूल खाती हैं और जन—जन में असली परिवर्तनकामी कार्यकर्ताओं की पहचान की प्रक्रिया शुरू होती है। अक्लांत कौरव की कथा छोटी है। लेकिन अपने गर्भ में विस्फोटक तथ्य छिपाए है। वाम राजनीति के दक्षिणी छोर वाले द्वैपायन सरकार, पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा बटाईदारों के हित में चलाए गए 'आपरेशन बर्गा' के दरम्यान जागुला गाँव आते हैं। वे सब्जबाग दिखलाकर आदिवासियों की एकता तोड़ना चाहते हैं, वहीं ईमानदार इंद्र प्रमाणिक गाँव में काम करने आता है तो स्थानीय कार्यकर्ता उसे नक्सली सिद्ध करते हैं। फिर भी आदिवासी असली हितैषी को पहचान लेते हैं।

'अग्निगर्भ' में महाश्वेता देवी पूछती हैं—जब बटाईदारी—अधिया जैसी घृणित प्रथा में किसान पिस रहे हों, खेतिहर मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी न मिले, बीज—खाद—पानी—बिजली के लाले पड़ें तो उनका अस्तित्व दाँव पर होता है, ऐसे में वह सामंती हिंसा के विरुद्ध हिंसा को चुन ले तो क्या आश्चर्य? अग्निगर्भ का संथाल किसान बसाई टुडू किसान—संघर्ष में मरता है। लाश जलने के बावजूद उसके फिर सक्रिय होने की खबर आती है। बसाई फिर मारा जाता है। वह अग्निबीज है और अग्निगर्भ है सामंती कृषि—व्यवस्था। 'अग्निगर्भ' उपन्यास में महाश्वेता देवी मानती हैं कि इस धधकते वर्ग—संघर्ष को अनदेखा करना और इतिहास के इस संधिकाल में शोषितों का पक्ष न लेने वाले लेखकों को इतिहास माफ नहीं करेगा। असंवेदनशील व्यवस्था के विरुद्ध शुद्ध, सूर्य के समान क्रोध ही उनकी प्रेरणा है। 'अग्निगर्भ' में उन संघर्षशील लोगों की कथा है जिन्होंने सामाजिक न्याय के लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर दिए। 'कवि वैद्यघोटी गोइनेर जीवन व मृत्यु' में लेखिका ने एक निचली जाति के युवक के

मानवाधिकार हासिल करने के संघर्ष को वाणी दी है। वह प्रेम हासिल करना चाहता है। वह जीवन को लांघकर एक नई दुनिया रचना चाहता है किंतु तत्कालीन समाज उसे परास्त कर देता है। 'आंधारमानिक' में लेखिका ने बंगाल के सामाजिक जीवन में आए परिवर्तन का चित्र खींचा है। 'श्री श्री गणेश महिमा' में एक ओर गणेश की महिमा है तो वहीं बर्बर और हिंसक व्यवस्था के विरुद्ध तनकर खड़े हैं राका दुसाध, नक्सली जगलकरन, गांधीवादी अभय महतो और बस्तियों से जंगलों में भागकर आई भीड़। 'श्री श्री गणेश महिमा' आज भी भारत की हकीकत है। यह एक गांव की कहानी है जो अभी भी मध्ययुग के बीहड़ अंधेरों में जी रहा है। वहां सवर्णों का राज चलता है। राजपूत मालिक ही तय करते हैं कि निजली जाति के लोग कब गुलाम हों, कब बंधुआ मजदूर और कब सर्वहारा किसान। निचली जाति की औरतों की नियति है सवर्णों की रखैल बनना। ठाकुर मेदिनी सिंह की रखैल लछिमा मेदिनी सिंह के अनाथ बेटे को मां की तरह पाल–पोसकर बड़ा करती है लेकिन गणेश जब दलितों पर बेतरह अत्याचार करता है तो वही लछिमा गणेश को दलितों की उत्तेजित भीड़ के हवाले कर देती है। सवर्णों के निरंकुश शासन के विरुद्ध महाश्वेता उद्घोष करती हैं। 'दौलति' में तीन उपन्यास हैं और तीनों की प्रतिनिधि महिला पात्र हैं–दौलति, बासमती और गोहुअन। एक तरह की आर्थिक स्थितियों के बावजूद तीनों की सोच अलग–अलग है। आदिवासी स्त्री के मनोविज्ञान तथा उनके संग्राम का तलस्पर्शी विवेचन महाश्वेता ने इस कथा कृति में किया है। दरअसल आदिवासी स्त्री की उत्पीड़ित जिंदगी का आईना है यह कथाकृति। दक्षिण बिहार, बंगाल, उड़ीसा, गुजरात व महाराष्ट्र की जनजातियों के बीच वर्षों काम करने के अनुभव ने महाश्वेता को पैनी दृष्टि और ऐसी शक्ति दी जिससे वे भारतीय आदिवासी जीवन के पीड़ादायक मुद्दों का अनुभव कर सकीं और अपनी कृतियों में अभिव्यक्त कर सकीं। आदिवासियों–दलितों के जीवन और वृत्तांत के माध्यम से उन्होंने इतिहास, मिथक और वर्तमान राजनैतिक यथार्थ के ताने–बाने को संजोते हुए सामाजिक परिवेश की मानवीय पीड़ा को स्वर दिया।

अपनी अनेक कहानियों में भी महाश्वेता देवी जनजातियों और आदिवासियों के संग्राम को वाणी देने के लिए संघर्षशील नायकों का संधान करती हैं। इन संघर्षशील आदिवासी नायकों का संधान महाश्वेता की कहानी 'बाढ़' में बागदी के रूप में, 'बांयेन' में डोम, 'शाम सवेरे की मां' में पाखमारा, 'शिकार में ओरांव, 'बीज' में गंजू, 'मूल अधिकार और भिखाली दुसाध' में दुसाध, 'बेहुला' में माल और 'द्रौपदी' में संथाल के रूप में सहज ही हो जाता है। इनमें गंजू लोगों का काम है– मृत मवेशियों की खाल निकालना, भिखारी दुसाध की जीविका है– घूम घूमकर बकरी चराना, बांयेन बन जाने के पहले चंडी का वंशगत काम था– श्मशान में मुर्दे गाड़ना। डोम श्मशान के मालिक हैं। आदिवासियों का यह तो आनुवांशिक काम है, यही उन्हें पीढ़ी दर पीढ़ी आदिवासी

बनाए रखता है। कुछ लोग तीन–पांच कर जरूर ऊपर उठ जाते हैं। पर कुछ लोग ही। जैसे 'बांयेन' कहानी में मलिंदर गंगापुत्र श्मशान से ऊपर उठकर जिले के लाशघर में काम पा जाता है और सरकार बाबू के साथ मिलकर लावारिस लाशों के कंकाल के व्यापार में लगता है पर अपने संस्कारों से नहीं उबर पाता। 'बांयेन' कहानी में महाश्वेता देवी अत्यंत मार्मिकता के साथ यह रेखांकित करती हैं कि जो स्वयं मुख्य धारा से निर्वासित हैं, वे स्वयं अपने में से किसी व्यक्ति को समाज से निर्वासित करते हैं तो वह निर्वासित स्त्री मनुष्येत्तर श्रेणी में पहुंच जाती है। तुर्रा यह कि उसे भी वह अपनी नियति मानकर कबूल करती है। चंडी बांयेन बन जाती है तो मलिंदर अपने बेटे भगीरथ से कहता है, 'पहले वह आदमी थी, तेरी मां थी।' भगीरथ को किंतु पिता की बात गले नहीं उतरती, वह अपनी मां को मनुष्य ही मानता है, बांयेन नहीं। वह बांयेन स्त्री ही एक बड़ी रेल दुर्घटना रोकती है अपनी आहूति देकर, तो आदिवासी समाज ठगा रह जाता है और भगीरथ जब देश और शासन के सामने अपना परिचय चंडी बांयेन के पुत्र के रूप में देता है तो कहानी अपने अत्यंत मार्मिक क्षण में पहुंच जाती है।

'बांयेन' में मलिंदर अपनी जाति से जिस तरह ऊपर उठ जाता है, उसी तरह 'शाम सवेरे की मां' में जटी भी जाति से ऊपर उठती है। बांयेन में मलिंदर ने, 'शाम सबेरे की मां' में जटी ने पारिवारिक या आनुवांशिक जीविका के बजाय दूसरा काम चुना पर वे अपने संस्कारों से ऊपर नहीं उठ पाए। 'बेहुला' में भी संस्कार से आदिवासियों को मुक्त करने की आकांक्षा कथाकार में है। 'बेहुला' में संस्कारों की मुक्ति श्रीपद की मृत्यु में ही है। बाढ़ में एक पुराना रूपक आता है कि बहुत पहले एक बार बाढ़ के पानी में जात–पात का बंधन बह गया था और धनी लोगों ने आदिवासियों को भरपेट भोजन कराया था। इस व्यंजना की प्रतिष्ठा कदाचित विषमता के बीच समता की स्थापना करने के लिए की गई है। आखिर पेट की ज्वाला कैसे शांत हो? 'बीज' कहानी में दूलन गंजू को लगता है, 'जिंदा रहने की चतुराई के बारे में सोचते–सोचते उसे अपने बेटों और पोतों के साथ बात करने का वक्त न मिला।'

महाश्वेता की कहानियां बताती हैं कि संस्कार, असामर्थ्य और डर आदिवासियों के मन और चरित्र पर भी असर डालते हैं। आदिवासियों की जिंदा रहने की प्रणाली बदलती है तो 'शाम–सबेरे की मां' में जटी का रूपांतरण होता है– ठकुरानी के रूप में और बांयेन रेल दुर्घटना रोकने की भूमिका में अवत्तीर्ण होती है। यही क्रम आगे जाकर प्रतिरोध में जन्म लेता है। 'द्रौपदी' में वह प्रतिरोध संगठित आंदोलन की शक्ल लेता है। 'द्रौपदी' कहानी में जंगल और प्रशासन का संघर्ष है। द्रौपदी मेंझेन को पुलिस प्रशासन विश्वासघाती मजदूरों के साथ पकड़कर कैंप ले जाता है, द्रौपदी अपने दोनों घायल स्तनों से सेना नायक को धक्का देती है और पहली बार सेना नायक को

निःशस्त्र टारगेट के सामने डर लगता है। 'शिकार' कहानी में मेरी उरांव के पीछे पड़ा है तहसीलदार। रास्ते में एक बार उसने मेरी का हाथ पकड़ा और बोला, 'आज तुझे नहीं छोड़ूंगा।' मेरी ने यह कहकर पिंड छुड़ाया, 'आज नहीं, खड्ड के पास होली के दिन।' तहसीलदार मान गया और होली के दिन मेरी ने तहसीलदार को खड्ड में धकेल दिया। सबसे बड़े जानवर का शिकार करने के बाद अन्य चौपायों के बारे में जो डर मेरी उरांव के रक्त में समाया था, वह अब पूरी तरह गायब था।' इस तरह 'द्रौपदी', 'बीज' और 'शिकार' में आदिवासियों में प्रतिरोध की चेतना जागृत होती दिखाई पड़ती है। संगठित संघर्ष के लिए आदिवासी मैदान में उतर आए हैं। लड़ाई कई मोर्चों पर आदिवासियों को लड़नी पड़ रही है। जल, जंगल और जमीन से बेदखल होने के बाद लड़ाई कठिन हो गई है।

'इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती' शीर्षक कहानी में एक पूरे कठिन संग्राम को महाश्वेता ने वाणी दी है। इतवा मुंडा को उसके दादा सिधू, कान्हू से लेकर बिरसा के संग्राम का इतिहास बताते हैं और यह पीड़ा भी कि अपनी धरती से बार–बार उजड़ने को आदिवासी क्यों अभिशप्त हैं। दादा मंगल की प्रेरणा से इतवा भी एक लड़ाई शुरू करता है– अशिक्षा के खिलाफ। यह अशिक्षा ही थी जिसने आदिवासियों को उनके जंगल–जमीन के अधिकार से वंचित किया। इतवा मजूरी छोड़ पढ़ने लगता है और इस तरह अशिक्षा के विरुद्ध लड़ाई जीत जाता है। आदिवासी अपना जीवन संग्राम जीत जाएं– महाश्वेता की कहानियों का यही अभीष्ट है। 'ईंट के ऊपर ईंट' संग्रह की कहानियों में महाश्वेता देवी ने कोलकाता व उसके आस–पास ईंट के भट्ठों पर आदिवासी मजदूरों के तीव्र रक्त शोषण, दोहन और उत्पीड़न का मार्मिक वर्णन किया है। उनका कठिन संग्राम अविराम जारी है। उसे देखकर ही महाश्वेता कहती हैं– 'एक लंबे अरसे से मेरे भीतर जनजातीय समाज के लिए पीड़ा जो ज्वाला धधक रही है, वह मेरी चिता के साथ ही शांत होगी...।' सन् 1984 में प्रकाशित अपने 'श्रेष्ठ गल्प' की भूमिका में महाश्वेता देवी ने लिखा है–'साहित्य को केवल भाषा, शैली और शिल्प की कसौटी पर रखकर देखने के मानदण्ड गलत हैं। साहित्य का मूल्यांकन इतिहास के परिप्रेक्ष्य में होना चाहिए। किसी लेखक के लेखन को उसके समय और इतिहास के परिप्रेक्ष्य में रखकर न देखने से उसका वास्तविक मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। मैं पुराकथा, पौराणिक चरित्र और घटनाओं को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में फिर से यह बताने के लिए लिखती हूं कि वास्तव में लोक–कथाओं में अतीत और वर्तमान एक अविच्छिन्न धारा के रूप में प्रवाहित होते हैं। यह 'अविच्छिन्न धारा' भी वायवीय नहीं है, बल्कि जात–पांत, खेत और जंगल पर अधिकार और सबसे उपर सत्ताधारी वर्ग की सत्ता के विस्तार तथा उसके कायम रखने की पद्धति को केन्द्र में रखकर निम्न वर्ग के मनुष्य के शोषण का क्रमिक इतिहास है।'

सहायक संदर्भ ग्रंथ

1. महाश्वेता देवी रचना समग्र, खंड 17, देज पब्लिशिंग, कोलकाता, संस्करण–2005
2. महाश्वेता देवी रचना समग्र, खंड 18, देज पब्लिशिंग, कोलकाता, संस्करण–2006
3. जंगल के दावेदार, महाश्वेता देवी, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, प्रथम संस्करण–1998
4. शालगिरह की पुकार पर, महाश्वेता देवी, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, प्रथम संस्करण–1998
5. टेरोडैक्टिल, महाश्वेता देवी, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, प्रथम संस्करण–1998
6. चोट्टि मुंडा और उसका तीर, महाश्वेता देवी, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, प्रथम संस्करण–1998
7. अक्लांत कौरव, महाश्वेता देवी, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, प्रथम संस्करण–1998
8. ईंट के ऊपर ईंट, महाश्वेता देवी, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, प्रथम संस्करण–1998
9. अग्निगर्भ, महाश्वेता देवी, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, प्रथम संस्करण–1998
10. श्री श्री गणेश महिमा, महाश्वेता देवी, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, प्रथम संस्करण–1998
11. इतवा मुंडा ने लड़ाई जीती, महाश्वेता देवी, नेशनल बुक ट्रस्ट, प्रथम संस्करण–1993
12. महाश्वेता देवी की श्रेष्ठ कहानियां, नेशनल बुक ट्रस्ट, प्रथम संस्करण–1993
13. महाश्वेता देबीर श्रेष्ठ गल्प–प्रभा प्रकाशनी, कोलकाता, प्रथम संस्करण 1988
14. स्वनिर्वाचित श्रेष्ठ गल्प, महाश्वेता देवी, प्रभा प्रकाशनी, कोलकाता, प्रथम संस्करण–1990
15. स्वनिर्वाचित श्रेष्ठ गल्प, महाश्वेता देवी, मॉडल पब्लिशिंग, कोलकाता, प्रथम संस्करण–1990
16. तलाक अन्याय गल्प, महाश्वेता देवी, मित्र घोष कोलकाता, प्रथम संस्करण–1992
17. महाश्वेता देवी पंचासटी गल्प, प्रतिक्षण, कोलकाता, प्रथम संस्करण–1996
18. भारत वर्ष तथा अन्य कहानियां, महाश्वेता देवी, आधार प्रकाशन, प्रा. लि., पंचकूला, प्रथम संस्करण–2003
19. स्त्री पर्व (कहानी संग्रह), महाश्वेता देवी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004
20. आदिवासी कथा (कहानी संग्रह), वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण–2004
21. मैं जो देखती हूं–महाश्वेता देवी, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, संस्करण–2003
22. अन्य लेख, महाश्वेता देवी, आजकल, कोलकाता, संस्करण–2003

****

पूर्वोत्तर में महिला सशक्तीकरण का सच

विजयलक्ष्मी बरार*
अनुवादः अंजलि सकलानी#

बीज शब्द : समाजीकरण, पितृसत्ता, राष्ट्रवादी विमर्श, पूर्वोत्तर, स्त्री

सारांश

हमारी सामाजिक संरचना एवं सामाजिकरण की प्रक्रिया ने विश्व भर में पुरुष की श्रेष्ठता को स्थापित किया है। यहाँ तक कि राष्ट्रवादी विमर्शों में भी शक्ति के प्रतीक के रूप में पुरुष है और प्रस्तुतिकरण में 'हमारी भारत माता'। वस्तुतः परिवार के अंदर तथा समाज में स्त्री तथा माता के बीच आसान समानांतर रेखा खींचने की आवश्यकता है। आज पूर्वोत्तर की स्त्रियां में वह विभाजक रेखा स्पष्ट रूप से दृष्टीगोचर है। आज पूर्वोत्तर की स्त्रियां आदर्श महिला होने की संकीर्ण परिभाषा से बाहर निकल गई हैं। वहां की महिलाओं द्वारा समान स्थिति की मांग ने उन्हें स्वार्थी तथा राष्ट्र विरोधी के रूप में तब्दील कर दिया है। समता एवं न्याय के लिए हमें उन समस्त कानूनों एवं रीति–रिवाजों से लड़ने की आवश्यकता है जो स्त्रियों को सामाजिक तौर पर दोयम दर्जा प्रदान करते हैं, विशेष रूप से पूर्वोत्तर के इलाकों में रह रही महिलाओं की सामाजिक एवं पारिवारिक भूमिका अन्य राज्यों की अपेक्षा भिन्न है। अतः उनके मानवा. धिकारों का विमर्श भी नई दृष्टि की मांग करता है।

लगभग 27 वर्ष पूर्व जब मैंने नार्थ–ईस्ट और खासतौर पर मणिपुर को समझने के लिए एक समाजशास्त्री के रूप में अपनी यात्रा प्रारम्भ की तो महिलाएं मेरे लिए हमेशा कौतुहल का विषय रहीं। मेरे लिए यह विरोधाभास, पदानुक्रम एवं विडम्बनाओं की तस्वीर के साथ–साथ सशक्तीकरण एवं महान मातृत्व का द्वीप था। पहली चीज़ जो मैंने अपने दृष्टिकोण से देखी (जो समय के साथ–साथ मानुषि, जागोरी के साथ विकसित हुआ, साथ ही ब्रा बर्निंग अभियान से तथा कैरोसीन एवं ब्राइड बर्निंग के माध्यम से प्रेरणा मिली) वह विरोधाभास, जो मैतेयी महिलाओं की भीतरी एवं बाहरी दुनिया के बीच अभी भी मौजूद है। परिणामस्वरूप 1995 के आस–पास "मिथक को तोड़ना : मैतेयी महिलाओं की

*एसोसिएट प्रोफेसर, सेंटर फॉर मणिपुर स्टडीज़, मणिपुर विश्वविद्यालय
#वरिष्ठ हिन्दी अनुवादक, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

स्थिति" शीर्षक से लेख प्रकाशित हुआ। एक मैक्सिकन लेखक, पालोमो सैंचेज के अनुसार, "महिलाओं के रूप में हमारी सहभागिता तथा हमारे लोगों के संघर्ष में हमारे एकीकरण ने रिवाज एवं प्रथाओं के विषय में खुली चर्चा को संभव बनाया है। हमने रिवाज के लिए कथित आदर की आड़ में भेदभाव तथा दैनिक मानव अधिकारों का उल्लंघन झेला है। हममें से बहुत इस बात के लिए सचेत हैं कि हमें ऐसा कानून चाहिए जिसमें पुरुषों एवं महिलाओं का समान रूप से संरक्षण हो तथा हमें अपने पतियों द्वारा पिटना जारी नहीं रखना है" (पृष्ठ 99, कापेज एण्ड कारिनो, 2004)।

"अधिकांशतः, पुरुषों ने ही युद्ध किए हैं", – सिंथिया कॉकबर्न (2001:पृष्ठ 20)"। पुरुषों की मर्दाना पहचान हिंसा से भी बनी, उन्होंने अनेक कारणों से हिंसा में भाग लिया; धन के लिए, सम्मान के लिए, देश प्रेम अथवा भाईचारा के लिए, आत्म रक्षा में, मुक्ति अथवा दूसरों की मुक्ति के लिए। परन्तु, पितृसत्तात्मक लिंग व्यवस्था में पुरुषों को मर्दाना पहचान देने में अन्य सभी कारणों को पीछे छोड़ दिया।

नेलुका सिल्विया ने अपनी पुस्तक, दि जेन्डर्ड नेशन में कहा है कि "राष्ट्रीय" मेटा कथा में बताया गया है कि लिंग किस प्रकार राष्ट्र की प्रमुख कल्पना सूचित करता है तथा इलेक बाएमर ने इंगित किया कि, "शक्ति की प्रतीकात्मकता में राष्ट्रवाद एक नर नाटक के रूप में बताया जा सकता है (1992 : 233)"।

प्रस्तुतिकरण एवं व्यवहार के बीच विघटन यह है कि, जबकि "हमारी मातृभूमि" स्त्रीवाचक छवि (अधिक विशिष्टता देने के लिए भारत माता के रूप में भारत को प्रस्तुत करना) राष्ट्र की प्रतिमा विज्ञान को परिभाषित करता है, राष्ट्रवाद की प्रथा नर के लिए आरक्षित है (2004 : 21)। यह मातृभूमि कल्पना बलात्कार, उल्लंघनों की चपेट में आ गई है। यह बताया गया है कि इसे 'अपने आदमी' द्वारा दूसरे आदमी से संरक्षित किए जाने की आवश्यकता है। अतः आज पूर्वोत्तर की महिलाएं एक आदर्श कुकी महिला, आदर्श मैती महिला, आदर्श नागा महिला होने की निर्धारित परिभाषा से बाहर हो गई हैं। महिलाओं द्वारा समान स्थिति हेतु मांग ने उन्हें स्वार्थी तथा राष्ट्र विरोधी के रूप में बना दिया है क्योंकि यह समाज की विशेष संस्कृति की विशिष्ट छवि में फिट नहीं बैठती है। नागालैण्ड में जो हो रहा है वह एक हाल ही में राष्ट्रवादी प्रवचन है। मैं नागा मातृ संगठन एन.एम.ए. (छ.ड.।) का उदाहरण देना चाहूंगी, जिसने सांस्कृतिक मजबूरियों से बाहर निकलने के विषय में सोचना शुरू कर दिया है। उन्होंने 33 प्रतिशत आरक्षण की गारंटी द्वारा नगर निगम चुनावों हेतु अपने संवैधानिक अधिकार की मांग की है, जिसके लिए पुरुष उन्हें स्वीकृति नहीं दे रहे हैं। हाल ही में उन्होंने उच्चतम न्यायालय में मामला जीता है। एक नागा दैनिक 'ईस्टर्न मिरर' में हाल ही में उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त नागा पुरुष न्यायाधीश सेमा ने विशेष रूप से उल्लेख किया कि "महिलाओं के आरक्षण का विरोध बंद तथा पुरुष अंधराष्ट्रीयता बंद"। परन्तु शीर्ष न्यायालय के

निर्णय के बावजूद नागा होहो (सभी पुरुषों से बना सर्वोच्च नागा निकाय) अभी भी उनके अधिकारों से इंकार कर रहे हैं। नागा होहो भारत के संविधान के अनुच्छेद 371–ए के आधार पर अपने तर्क रख रहे हैं, जिसके अनुसार, नागाओं को सांस्कृतिक स्वायत्तता मिली हुई है। उनके रिवाज में महिलाओं को शासन में पारंपरिक रूप से कोई स्थान नहीं दिया गया है। परन्तु, इसे पारम्परिक संस्थानों में प्रतिबंधित किया गया है। एनएमए नगर निकायों में आरक्षण की मांग कर रहे हैं, जो कि पारंपरिक सस्थानों की किसी भी परिभाषा का भाग नहीं है। यह तर्क उचित नहीं है क्योंकि न्यायमूर्ति सेमा के अनुसार, प्रथागत कानून संविधानिक प्रावधानों से ऊपर नहीं हो सकते। नागा पुरुषों की ओर से टिप्पणियां हैं जिसमें उल्लेख है कि यदि महिलाएं सत्ता में आती हैं तो हममें हीन भावना आएगी। आज पितृसत्ता नियम के अंतर्गत है तथा देशी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का संरक्षण कर रही है। समय के साथ, संस्कृति एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्ति चयन एवं अस्वीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से, पितृसत्ता कैसे बढ़ रही है, यह भी एक ऐसा क्षेत्र है जिस पर शोध किया जाना चाहिए। मैं दृढ़ता से कह सकती हूं क्योंकि स्वदेशी अध्ययनकर्त्ताओं द्वारा शोध चल रहे हैं, जिनमें शक्ति, योद्धाओं एवं नेताओं के साथ–साथ लैंगिक निष्पक्षता सहित रिवाजों के साक्ष्य हैं। परन्तु इन्हें भुला दिया गया है तथा सभ्यता एवं केन्द्रीकरण के नियमों के बढ़ते स्तरों के कारण रणनीतिक रूप से मिटा दिया गया है।

हमारे यहां सामाजिक स्तर पर महिलाओं को बाधित करने वाले रिवाज हैं, दूसरी ओर हमारे यहां सती प्रथा थी, तो क्या हम महिलाओं को उनके पतियों की चिताओं पर जलाना जारी रख सकते हैं? क्यों ये प्रथाएं अनुल्लंघनीय हैं? बदलते समय के साथ प्रथाएं भी बदल सकती हैं। दूसरा इनका निर्णय कौन लेगा? इस चुनिंदा ज्ञान की मीमांसा किया जाना ही समस्यात्मक है। यह आश्चर्यजनक है कि नागा माताओं को डराया जा रहा है। उनमें यह भावना घर कर गई है कि संभवतः उनके साथ बलात्कार तथा यौन हमला हो सकता है, यदि वे आरक्षण की मांग करती रहीं तो, क्योंकि वे नागा रिवाजों के विरुद्ध है तथा इसी कारण वे राष्ट्र–विरोधी हैं। अतः उनका बलात्कार करना कोई अपराध नहीं होगा। मैती के बीच एक से अधिक पत्नियों की प्रथा है (हालांकि कानूनी तौर पर मान्य नहीं है), तो क्या यह सही है? कूकी महिलाओं को उनके पति की मृत्यु के बाद संपत्ति नहीं मिलती, यदि उनका पुत्र नहीं हो। क्या यह ठीक है? कोई भी रिवाज, जो एक लिंग की शक्ति की पुष्टि करता है तथा दूसरे की नहीं, की निंदा की जानी चाहिए। यह शोषक है। समता एवं न्याय प्राप्ति के लिए हमें उन सभी कानूनों एवं रिवाजों से लड़ने की आवश्यकता है, जो हमारी महिलाओं को कम समान बनाते हैं।

यदि मुझे इरोम शर्मिला के विषय में कहने की आज्ञा हो, जिन्होंने अभी हाल

ही में शादी की है जो एक आदर्श बन गई हैं, परन्तु अपनी पसंद के कारण राज्य में उन्हें कोई खास सम्मान प्राप्त नहीं है। मणिपुर में इरोम शर्मिला के प्रेम को लोगों ने अस्वीकृत कर दिया क्योंकि उसने अपने समुदाय के बाहर प्रेम किया तथा अपने 16 वर्ष पुराने व्रत को तोड़ कर ठीक नहीं किया। न्याय के लिए संघर्ष में आगे रहने के बावजूद उससे सांस्कृतिक नियमों को कायम रखने तथा उनके साथ चलने की अपेक्षा की जा रही थी। आंतरिक दुनिया में लैंगिक भूमिका अपेक्षित है, मणिपुर में उसे नुपा गी थबक (पुरुषों का कार्य) तथा नुपी गी थबक (महिलाओं का कार्य) कहा जाता है। हालांकि, युवा जोडों ने श्रम के ऐसे यौन विभाजन को बुरा मानना शुरू कर दिया है, प्रथाओं की मांग है कि पुरुषों एवं महिलाओं को अपने 'सौंपे' गए कार्य को महिलाओं को दिए गए कड़ी मेहनत के कार्य सहित किया जाना चाहिए। बाहरी दुनिया में ऑल वीमेन पोलो टीम है, ओलंपिक मेडलिस्ट मैरीकॉम तथा सरिता देवी हैं, थिएटर कलाकार सावित्री हेसनाम हैं, कवि, साहित्यिक व्यक्ति, डॉक्टर, पायलेट एवं महिला उद्योगपति हैं। मईरा पाइबी तथा एन.एम.ए. को पुरस्कृत किया गया। ये पूर्वोत्तर भारत के हॉलमार्क एवं गौरव हैं। परन्तु दूसरी ओर महिलाओं की अंदरूनी दुनिया लिंग भेद से भरी है। हालांकि, यहां कन्या भ्रूण हत्या नहीं है, पुत्री के पैदा होने पर हमेशा लोगों द्वारा 'अगली बार पुत्र होगा' का आशीर्वाद दिया जाता है। यहां दहेज भी नहीं है, परन्तु घर का एक हिस्सा वधु द्वारा लाए गए सामान को रखने के लिए खाली रखा जाता है। यहां कोई दुल्हन नहीं जलाई जाती, परन्तु यहां पुरुष को दूसरी, तीसरी पत्नी लाने की एक उदात्त वैधता दी गई है तथा विधवापन पर लाचार होने की प्रथा नहीं है, परन्तु जिस विधवा का पुत्र नहीं हो, उसे उसके पति की संपत्ति से वंचित रखा जाता है। त्रिपुरा घरेलू हिंसा की खतरनाक दर दर्शाता है। नागालैण्ड एवं मणिपुर में लिंग अनुपात निरंतर घट रहा है तथा 'सिंगल मदर' की श्रेणी भी है जिस पर समाजशास्त्रियों को अध्ययन करने की आवश्यकता है।

हमें यह समझना होगा कि महिला सशक्तीकरण तथा संस्कृति/रिवाज़/परम्पराएं क्रमानुपात में हों। क्योंकि यदि परंपराएं महिलाओं को अपनी बात रखने की स्वीकृति देती, तो हमें यहां बैठ कर इस परेशान करने वाले विषय पर चर्चा नहीं करनी पड़ती। मिशेल फ्लड के अनुसार (रेड्रेस : अगस्त 2007 : पृष्ठ 14), व्यवहार में लिंग भेद ने महिलाओं के प्रति हिंसा के रवैये का आकार ले लिया है।

समाप्त करने से पहले मैं आपका दूसरे पहलू की ओर ध्यान दिलाना चाहूंगी वह है वर्तमान में मणिपुर में ट्रांसजेंडर। यहां पर भी कुछ समूहों द्वारा महिला होना क्या है और पुरुष होना क्या है की राष्ट्रवादी विचारधारा को लादा जा रहा है। ट्रांसजेंडर को यह कहा अथवा धमकी दी जाती है कि "महिलाओं की छवि का अपमान न करें तथा पुरुषों के कपड़े पहने क्योंकि वे वास्तव में पुरुष हैं।" मैं अपनी एक मित्र सान्ता खुरेई, जिसे मणिपुर में "नुपी मनबी" कहा जाता है, की भावनाओं को सीधे उद्धृत कर

रही हूं:–

"हम नारीत्व को कैसे परिभाषित करें? क्या हमारा अस्तित्व वास्तव में काया, नैन–नक्श, पहनावे तथा सामाजिक भूमिका के आधार पर हो सकता है? मेरे हिसाब से नारीत्व एवं पुरुषत्व किसी व्यक्ति द्वारा उसे स्वयं को प्रस्तुत करने में आरामदायक महसूस करने की सामाजिक अभिव्यक्ति है। हालांकि, इस प्रकार की विविध मानवीय अभिव्यक्ति की खूबसूरती पुरुष एवं महिला, दोहरे लिंग में विश्वास के कारण धीरे–धीरे कम होती जा रही है। दैनिक जीवन में हम बाहरी दुनिया की समझ आने पर भी हम जो देख रहे हैं तथा अनुभव कर रहे हैं, उसके परे देखने में सक्षम नहीं हैं। यदि हम कुछ ऐसा पाते हैं जो हमारे विश्वास से कुछ कम अथवा अधिक हो तो यह अलगाव एवं बहिष्कार है। हम यह समझना नहीं चाहते अथवा विभिन्न तरीकों से प्राप्त चीजों में व्यस्त रहने के लिए तैयार नहीं हैं। इस प्रकार से समाज मेरे नारीत्व को समझने में विफल है क्योंकि वे इसे मानवता एवं सम्मान के नज़रिए से नहीं देखते। मेरे जननांग मेरे लिए जन्म चिह्न बन गए हैं, जो समाज को यह निर्धारित करने देते हैं कि मैं एक सनकी, पागल, असमान्य तथा हास्य का विषय हूं। आत्मनिर्धारण और संस्कृति को पुनर्जाग्रत करने का यह पूरा विचार मुझे डराता है और मेरे पास अपनी मर्जी से जीने का अधिकार नहीं है। मेरा आत्मनिर्धारण, दूसरों के आत्मनिर्धारण द्वारा छीन लिया गया है। मेरी अभिलाषा है कि लोग मुझे सर्वप्रथम एक मनुष्य के रूप में देखें बजाय इसके कि जो मेरी अन्य पहचान है। मैं ऐसे विश्व की आशा कर रही हूं जहां लोगों के बीच कोई भेदभाव न हो। मेरे प्यारे अकादमी सदस्यों, शोधकर्त्ताओं, विद्वानों एवं विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े लोगों, कृपया इस पर विचार करें तथा ट्रांसजेंडर लोगों को अपनी आत्मा के हिस्से के रूप में अपनाएं।"

अब मेरी यह ट्रांस–महिला मित्र स्वदेशी अध्ययन पर शोध कर रही है जहां मैती की परम्पराओं में एक अनुष्ठान में 'नर पुजारिन' को स्थान दिया गया है। इन्हें 'नुपा एमाइबी' कहा जाता है। माईबी के समान (पारंपरिक पुजारिन) उन्हें भी दिव्य बुलावा होता है, जो उन्हें दीक्षा के लिए उनके गुरू को तलाशने का दवाब डालता है। आज उनके लिए श्रद्धा, अपमान में बदल गई है। मैं उसी व्यक्ति द्वारा लिखी गई कविता की पंक्ति उद्धृत कर रही हूं:–

"लाबा"–"अमाइबी लाबा" के रूप में जन्म सामाजिक अपमान का प्रत्यय (लाबा का अर्थ पशु जगत में नर है, जो मनुष्यों के लिए इस्तेमाल नहीं किया जाता, मणिपुर में नर को नुपा कहते हैं, लाबा नहीं।"

एक अन्य महिला मित्र है, एक महिला जो इसी प्रकार के चिंतित करने वाले विषयों पर लिखती हैं। मैं उनकी एक बेहतरीन कविता की एक पंक्ति उद्धृत करना

चाहती हूं– "मेरी योनि, मेरी रणभूमि है।" आज वह गुमनाम हो गई है, वह किसी से बातचीत नहीं करना चाहती क्योंकि शब्दावली के रूपक रूपांतरण को नहीं समझने के कारण उसके समुदाय के पुरुषों द्वारा उसे फेसबुक एवं अन्य सोशल मीडिया पर गालियां एवं धमकियां मिल रहीं थीं।

अतः 'महिला सिंड्रोम के उच्च स्तर' में जीना अब दिन–ब–दिन खतरनाक होता जा रहा है। मणिपुर की महिलाएं सामाजिक स्थानों पर दिखाई देती हैं, जैसे उदाहरण के लिए यहां 'इमा–कैथल' नामक ऑल वीमेन मार्किट है जहां कोई पुरुष दुकान नहीं खरीद सकता, इसके अलावा यहां एक बड़ा महिला निकाय है जिसे 'मईरा पाइबी' कहते हैं तथा उनके लिए राजनीति में निर्धारित स्थान है, खासतौर पर दबाव समूह के रूप में। धार्मिक क्षेत्र में भी जैसा कि पहले भी बताया गया है यहां 'माइबी' नाम से पुकारी जाने वाली पुजारिनें हैं। मैं अधिकतर अपनी लेखनी के माध्यम से कहती हूं कि महिलाएं जिगसॉ पज़ल का हिस्सा हैं, जहां उनका वास्तव में स्थान है परन्तु जब तक उनके पास वह निर्धारित वक्र न हो, वे बड़ी तस्वीर में ठीक नहीं बैठती। उनको सांचे में ढालने की प्रक्रिया, जिसमें वे ठीक बैठें, उन्हें निर्धारित किए गए मानदण्डों से अलग होने की स्वीकृति नहीं देती, अन्यथा वे पूर्णतः ठीक नहीं बैठने वाली है।

सामाजिक संरचना एवं समाजीकरण ने विश्व भर में पुरुष श्रेष्ठता का प्रचार किया है। हिंसा उस आंतरिक विश्वास की बाहरी अभिव्यक्ति है जो महिला अथवा अन्य लिंग को उनकी अपनी इच्छा एवं पसंद के बजाय मात्र मनोरंजन की वस्तु मानती है। भ्रमित दिमाग में विभिन्न स्तर पर विचार रहते हैं तथा परम्पराओं, रिवाजों, शासन, कहावतों की शक्ल ले लेते हैं तथा इन सभी तत्त्वों से मिलकर ऐसी धारणा बनती है जिसमें महिला एवं अन्य लिंग को विशिष्ट भूमिका आवंटित करने के स्तरों पर बांटा जाना ठीक लगता है और इस निर्धारित भूमिका से किसी प्रकार के काल्पनिक 'विचलन' पर उग्र हिंसा तथा 'न्यायसंगत' कार्रवाई की जाती है।

****

मानवाधिकारों का सार्वभौमिक परिप्रेक्ष्य एवं स्त्री

सुप्रिया पाठक*

बीज शब्द : नारीवादी विचारधारा, विमर्श, मानवाधिकार आंदोलन, हिंसा

सारांश

एक विचारधारा के रूप में स्त्री मानवाधिकार का विमर्श एक सशक्त बौद्धिक नारीवादी हस्तक्षेप है। 19वीं शताब्दी से यूरोप में प्रारंभ स्त्री अधिकारों की मांग ने वर्तमान में वैश्विक स्वरूप ग्रहण कर लिया है। भारत उन कुछ देशों में से एक है जहाँ मानवाधिकार आंदोलन का इतिहास उतार–चढाव से युक्त रहा है। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान मुख्य लक्ष्य सिर्फ भारत की स्वतंत्रता नहीं थी,बल्कि भारतीय लोगों के मूलभूत अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का संरक्षन एवं संवर्द्धन भी था। अहम प्रश्न यह है कि क्या आजादी के इतने सालों बाद भी स्त्रियां अपने मूलभूत अधिकारों को प्राप्त कर पाई हैं? संयुक्त राष्ट्र संघ की पड़ताल के अनुसार, दुनिया की आधी आबादी आज उत्पादक बनने तथा अवसर की समानता हासिल करने से वंचित है। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा बदस्तूर जारी है। बावजूद इसके, महिला आंदोलन के प्रयासों तथा सरकारी प्रयासों के कारण अंशतः ही सही स्त्रियां जीवन के हर क्षेत्र में कामयाब हो रही हैं जो स्त्री सशक्तीकरण तथा उनके अधिकारों को प्राप्त करने की दृष्टि से एक शुभ संदेश है।

"महिलाओं के अधिकार ही मानवाधिकार हैं।"

एक विचारधारात्मक ढांचे के रूप में स्त्री अधिकार का विमर्श एक सशक्त बौद्धिक हस्तक्षेप है। वैश्विक परिदृश्य में स्त्री अधिकारों के सन्दर्भ में सर्वप्रथम 1792 में प्रमुख उदारवादी नारीवादी चिंतक मेरी वुल्सटनक्राफ्ट द्वारा लिखित पुस्तक 'विंडिकेशन ऑफ द राइट्स और वुमेन' में वर्णन मिलता है। इस पुस्तक का प्रकाशन उस दौर में हुआ जब उदारवादी चिंतक जॉन लॉक, हॉब्सन, बेंथम इत्यादि मनुष्य के प्रकृति प्रदत्त अधिकारों को सैद्धांतिक रूप से व्याख्यायित कर रहे थे। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार पंद्रहवीं सदी के प्रारंभ, 1405 ई. में ही क्रिश्टीन दे पिजाल ने 'द बुक ऑफ द सिटी ऑफ लेडीज' नामक फ्रेंच पुस्तक में स्त्री अधिकारों की चर्चा की जिसको केन्द्र में रखकर फ्रांस की नारीवादी स्त्रियां

***सहायक प्रोफेसर, स्त्री अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

स्त्री शोषण एवं पराधीनता को समझने का प्रयास कर रही थीं। राजनीतिक दृष्टि से नारीवादी सिद्धांत ने इस तर्क पर बल दिया कि सार्वजनिक जीवन सिर्फ पुरुषों के लिए ही क्यों और निजी जीवन जैसे बच्चों का पालन–पोषण, घरेलू रख–रखाव इत्यादि कार्य महिलाओं के लिए ही क्यों निर्धारित किए गए हैं? क्यों महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में भाग लेने से निष्कासित किया गया है? नारीवादी चिंतन ने उदारवादी राज्य के निजी एवं सार्वजनिक के विभाजन को ही प्रश्नांकित करते हुए इसके कारण पैदा मानवाधिकारों के प्रति लैंगिक पूर्वाग्रह को भी रेखांकित किया। मनुष्य का जीवन एवं उसकी चेतना का विकास समाज की अनगिनत संरचनाओं के इर्द–गिर्द होता है। इसलिए सामाजिक पदसोपानों (hierarchy) में व्यक्तिगत एवं सामुदायिक के रूप में स्त्री–पुरूष संबंधों में वे समस्त वर्चस्वशाली विचारधाराएं भी परिलक्षित होती है जो उनके संबंधों को विलोमार्थक (binary opposition) स्वरूप प्रदान करती हैं और स्त्री का अस्तित्व समाज में सिर्फ 'अन्य' के रूप में ही प्रस्तुत नहीं होता है, बल्कि उसे दोयम दर्जा भी दिया जाता है। इसी प्रवृत्ति से समाज में स्त्रियों की भूमिका, उनके योगदान, उनको प्रदत घरेलू दायित्वों को अत्यंत सीमित करके आंका जाता है। परिणामस्वरूप मानवाधिकारों के विमर्श में भी पुरूषवादी वर्चस्व कायम होता है। स्त्रियों को प्रकृति प्रदत्त अधिकारों का भी उपयोग कर पाना मुश्किल हो जाता है। इस भेदभाव के कारण स्त्री अपने इतिहास, अपने आत्मविश्वास को खोने के साथ–साथ अपने वैधानिक अधिकारों से भी वंचित होती चली जाती है एवं उसकी 'नागरिकता' सदैव प्रश्नोंकित रहती है। अपनी अनुवादित पुस्तक नागरिकता का स्त्री पक्ष में अनुपमा रॉय कहती हैं :

"किसी भी महिला... के लिए 'हमारे देश' का क्या मतलब है? इसके बारे में फ़ैसला करने के लिए वह यह विश्लेषण भी करेगी कि उसके लिए देशभक्ति का क्या अर्थ है. वह खुद को अपने सेक्स (लिंग) और अतीत में अपने वर्ग के बारे में बताएगी. वह खुद को यह सूचित करेगी कि वर्तमान में उसके अपने सेक्स और वर्ग के पास कितनी मात्रा में ज़मीन, सम्पदा और सम्पत्ति है. आखिर इंग्लैण्ड का कितना भाग उससे जुड़ा हुआ है...वह यह कहेगी कि 'हमारे देश ने इतिहास के एक बड़े हिस्से में मेरे साथ दास जैसा सलूक किया है, इसने मुझे शिक्षा या इस पर किसी तरह के अधिकार से वंचित किया है...दरअसल, एक औरत के रूप में मेरा अपना कोई देश नहीं है. एक औरत के रूप में मैं अपना कोई देश चाहती भी नहीं हूं. एक औरत के रूप में पूरा विश्व मेरा देश है'...वर्जिनिया वुल्फ ने यहां उस महिला की दुविधा प्रस्तुत की है, जिसे अभी तक पूर्ण नागरिकता का अधिकार नहीं मिला था."

भारत उन कुछ देशों में से एक है जहां मानवाधिकार आंदोलन का इतिहास उतार–चढ़ाव से युक्त रहा है। वैसे तो भारत में मानवाधिकार आंदोलन की जड़ें इसकी

प्राचीन ऐतिहासिक रचनाओं एवं सामाजिक लोक जीवन की गतिविधियों में ढूंढी जा सकती हैं तथापि इसकी आधुनिक एवं वास्तविक पृष्ठभूमि का निर्माण औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध संघर्ष के दौरान हुआ। वस्तुतः इस काल खंड में राष्ट्रवादियों द्वारा ब्रिटिश शासन की समालोचना के अन्तर्गत इस बात पर ज्यादा बल दिया गया कि अंग्रेजी शासन भारत में अपनी मौजूदगी को बनाए रखने के लिए भारतीय लोगों को उनकी आधारभूत स्वतंत्रताओं एवं अधिकारों से वंचित कर रहे हैं। भारत का राष्ट्रीय आंदोलन एवं भारत के राष्ट्रवादियों का मुख्य लक्ष्य सिर्फ भारत की स्वतंत्रता ही नहीं था, बल्कि भारतीय लोगों के मूलभूत अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का संरक्षण एवं संवर्धन भी था। अब प्रश्न यही उत्पन्न होता है कि क्या भारतीय संविधान में मूल अधिकारों के रूप में इन अधिकारों के प्रावधित करने के पश्चात भी भारतीय स्त्री को क्या समान अधिकार प्राप्त हुआ है? क्या उसको संविधान के प्राक्कथन में किया गया वादा न्याय– सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक, उन सच्चे व सत्य अर्थों में प्राप्त हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रकाशित 'दी ह्यूमन डेवेलपमेन्ट रिपोर्टः दी प्रोग्रेस ऑफ दी वर्ल्ड्स वीमेन रिपोर्ट' में भारतीय महिलाओं की स्थिति में सुधार बताया गया है। उसके पश्चात दी 'यू. एन. डी. पी. डाक्यूमेन्ट' के समान ही 'दी यू. एन. फण्ड फॉर डेवेलपमेन्ट ऑफ विमेन (यू. एन. आई. एफ. ई. एम.)' के स्कोरकार्ड में भारतीय प्रयासों की सराहना की गई है, जिसके अन्तर्गत भारतीय महिला के लिंग समानता के क्षेत्र में कार्य किया जाना बताया गया है लेकिन व्यावहारिक आकलन यही सिद्ध करता है कि अभी कुछ अधिक प्राप्त नहीं हुआ है और अधिक दूर जाने की आवश्यकता है।

अर्थात लैंगिक समानता के क्षेत्र में जो प्रगति हुई है, वह समतल नहीं है और बीजिंग सम्मेलन में जो वादे किए गये हैं, उनको वास्तविकता में बदलने के लिए बहुत लम्बी यात्रा तय करनी है। अर्थात महिलाओं को सबल बनाने के लिए निर्णय लेने के स्तर पर महिलाओं का प्रतिनिधित्व आवश्यक है व महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

सबसे बड़ी विडंबना उनकी यह है कि स्त्रियां हमेशा ही घर तथा बाहरी दुनिया में दोयम दर्जे के रूप में ही जीती रही हैं। जिन पर अपने समाज की परंपरा, संस्कृति के निर्वहन का अतिरिक्त दायित्व भी बना रहता है। हमारे समाज में जेंडर के आधार पर होने वाला यह भेदभाव इतना सांस्थानिक रूप ग्रहण कर चुका है कि बचपन से ही बच्चों को शिक्षा एवं सामाजिकरण की प्रक्रिया के दौरान उन्हें इस संस्था निकृत व्यवस्था के लिए अनुकूलित कर दिया जाता है। नारीवादी दृष्टिकोण का मुख्य सरोकार अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में मानवाधिकारों के संरक्षण तथा उनके संवर्द्धन पर कार्य करना है। साथ ही, उसको पुनर्परिभाषित करने पर भी बल देना है। हालांकि मानवाधिकारों के परिप्रेक्ष्य में नारीवाद की विभिन्न धाराओं के दृष्टिकोण अलग अलग हैं। मानवतावादी

नारीवादी चिंतन ने महिलाओं के विरुद्ध होने वाली हिंसा को उनके मानवाधिकार के हनन से जोड़ कर देखा है जबकि उदारवादी समूहों ने महिलाओं की स्वास्थ्यगत समस्या, कुरीतियों को केंद्र में रखा है। कुछ नारीवादी समूहों ने वैश्विक स्तर पर हो रही स्त्री तस्करी, जबरन वेश्यावृति तथा देह–व्यापार को स्त्री अधिकारों का उल्लंघन माना है। उनके अनुसार, लैंगिक असमानताएं तथा पूर्वाग्रह वैश्विक रूप से संस्कृतियों में व्याप्त हैं, और ये महिलाओं तथा बालिकाओं को अपने अधिकार पूर्णतः प्राप्त करने और वैश्विक प्रगति में सहभागी बनने में बाधक हैं।

"महिलाओं को भोजन, आवास, संपत्ति, पुनरुत्पादन, सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य की देखभाल तथा रोजगार के अवसर का अधिकार है। उन्हें राजनीतिक सहभागिता, धार्मिक स्वतन्त्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शोषण एवं गुलामी से मुक्ति की स्वतंत्रता, शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार एवं भारत राष्ट्र के नागरिक के रूप में वे समस्त अधिकार प्राप्त हैं जो इस राष्ट्र के पुरुषों को प्राप्त है। साथ ही, इस समाज में उन्हें सम्मानपूर्वक एवं गरिमामय तरीके से आजीविका का अधिकार भी प्राप्त है जो समस्त प्रकार की हिंसा से मुक्त हो। ये समस्त अधिकार किसी भी स्त्री के प्रदत्त अधिकार हैं, परंतु दुर्भाग्यवश ये उन्हें आज भी हासिल नहीं हैं।"

संयुक्त राष्ट्र संघ की पड़ताल के अनुसार, दुनिया की आधी आबादी आज उत्पादक बनने तथा अवसर हासिल करने से वंचित है। 2011 में दुनिया का औसत लैंगिक असमानता सूचकांक 0.492 था, जिससे लैंगिक विषमता के कारण संभावित मानव विकास में 49.2 प्रतिशत की कमी का संकेत मिलता है और महिलाओं के लिए यह अनिवार्य है कि वे प्रगतिशील संवृद्धि सुनिश्चित करने के लिए राजनैतिक प्रक्रिया में एक संपूर्ण तथा सक्रिय भूमिका निभाएं। हालांकि महिलाएं दुनिया की आबादी में आधे से ज्यादा हिस्सेदारी रखती हैं, किंतु दुनिया के राजनैतिक नेतृत्व में उनकी हिस्सेदारी केवल 20 प्रतिशत के लगभग है। संक्षेप में, नारीवादी मानवाधिकार कार्यकर्ता कानून के विशिष्टतम ढांचे में उपर्युक्त समस्त मामलों को शामिल करने की बात करते हैं तथा राष्ट्रीय स्तर से लेकर अंतरराष्ट्रीय स्तर तक मानावाधिकार कानून के ढांचे को जेंडर संवेदनशील बनाने पर जोर देते हैं।

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा

भारत में सदियों से महिलाएँ तिरस्कार, अपमान, उत्पीड़न एवं शोषण झेलती आई हैं। इसके बावजूद हिंसा के मुद्दे पर कोइ विशेष ध्यान नहीं दिया गया और न ही इस बात को जानने का प्रयास किया गया कि इस मुद्दे की उपेक्षा क्यों की जाती रही है? भारत में स्त्रियों का उत्पीड़न उनके जन्म के समय से ही शुरू हो जाता है।

लड़कियों की बजाय लड़कों को प्राथमिकता दी जाती है। रिपोर्ट्स बताती हैं कि 21 मिलियन 'अवांछित लड़कियाँ' हैं जिनके माता–पिता बच्चों को तब तक जन्म देना जारी रखते हैं जब तक कि पुत्र पैदा न हो जाए। रिपोर्ट में यह भी पाया गया है कि लिंग चयनात्मक गर्भपात, मृत्यु या बहिष्कार के कारण 63 मिलियन महिलाएँ भारत की आबादी से गायब हैं।

यूनिसेफ ने 1995 की 'भारतीय राज्यों की प्रगति' में अलर्ट करते हुए कहा था कि 4–5 करोड़ स्त्री आबादी विलुप्त होती जा रही हैं पर हम अलर्ट नहीं हुए अब झकझोर देने वाली सच्चाई हमारे सामने है। 2011 की जनगणना में हमें खतरनाक स्थिति दिखाई दे रही है। जिसके अनुसार भारत में लिंग अनुपात अब तक के सबसे निचले स्तर पर पहुंचकर 914 हो गया है। 27 राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में शिशु लिंग अनुपात में लगातार गिरावट देखी गई है। ये अपराध आम तौर पर नियंत्रण बनाने, भय बनाने के लिए, और परिवार के भीतर और समाज के भीतर सत्ता के सामाजिक पदानुक्रम को मजबूत करने के लिए प्रेरित होते हैं जो पुरुषों की विशेषाधिकार प्राप्त और अधिक शक्तिशाली सामाजिक स्थिति को मजबूत करता है। महिलाओं के खिलाफ हिंसा पर संयुक्त राष्ट्र के विशेष संवाददाता ने 2014 में इसके कारणों और परिणामों के संबंध में कहाः

"निजी क्षेत्र में महिलाओं के शारीरिक, यौन और मनोवैज्ञानिक दुर्व्यवहार को राज्य और समुदाय द्वारा व्यापक रूप से सहन किया जाता है। महिलाओं की व्यापक सामाजिक–आर्थिक निर्भरता उन्हें अपने पतियों और अन्य परिवार के सदस्यों के अधीन करती है।

बहरहाल, भारत में महिलाओं के अधिकार के लिए लम्बे समय से सामाजिक आंदोलन तो चले ही और बहुत हद तक कामयाब भी रहे। इसके साथ ही, उनके अधिकारों की लड़ाई को डॉ. बी. आर. अंबेडकर ने संविधान में हमेशा के लिए सुरक्षित कर दिया क्योंकि बिना कानूनी अधिकारों के कोई भी लड़ाई लड़ना और जीतना आसान नहीं होता। उनकी चिंता महिलाओं के लिए स्वाभाविक ही थी क्योंकि स्त्री और शूद्रों की परिस्थिति समाज में एक जैसी थी और यदि समाज में दोनों की परिस्थिति एक जैसी है तो उसका निदान भी एक जैसा ही होना चाहिए था। हम परिवार और जाति में जेंडर के सवालों से परिचित हैं कि स्त्रियाँ भले ही किसी भी जाति और वर्ग की हों पर उन्हें दोयम दर्जा ही मिलता है। उन्हें प्राथमिक दर्जा इसलिए नहीं मिलता कि वे सवर्ण या महिला हैं। भारत में पूरी जनसंख्या का आधा भाग महिला है। ऐसी स्थिति में सभी स्थानों पर महिलाओं और पुरुषों को बराबरी के आधार अवसर मिलना चाहिये। सभी आँकड़े पुष्ट करते हैं कि राजनीति, शिक्षा, रोजगार आदि के क्षेत्रों में महिलाओं

की स्थिति क्या है। हिंसा के ये रूप चरम हैं जिसके कारण यौन उत्पीड़न में भागीदारों द्वारा महिलाओं का जीवन भी समाप्त किया जाता है। यह शिक्षा और रोजगार, संपत्ति के स्वामित्व और विकल्पों के स्वामित्व को दर्शाता है जो पुरुषों के लिए स्वतंत्र रूप से उपलब्ध हैं। भारत में जातिगत हिंसा और खासकर दलित महिलाओं पर हिंसा के मामले आए दिन अखबारों, चैनलों और सोशल मीडिया पर देखने–सुनने को मिलते रहते हैं। समस्या यह है कि भारत में उत्पीड़न के खिलाफ कानून होने के बावजूद दलित महिलाओं का उत्पीड़न होता रहता है और पुलिस, प्रशासन, सत्ता की ओर से कोई ऐसी कार्रवाई नहीं की जाती, जिससे उत्पीड़न करने वालों को सबक मिल सके।

भारत में मानवाधिकारों की रक्षा के लिए संसद और कार्यपालिका को देश में कानून का निर्माण और कार्यान्वयन सौंपा गया है जबकि न्यायपालिका इसके निष्पादन को सुरक्षित करती है। अतः समाज के विकास एवं निर्माण के लिए स्त्री–पुरूष की सहभागिता अनिवार्य है। विकास के साथ–साथ नैसर्गिक सिद्धान्त का पालन एवं पर्यावरण संतुलन के लिए यह नितांत आवश्यक है। जिसके लिए लैंगिक समानता के साथ–साथ महिलाओं की जनसंख्या को पुरूषों के समान बनाये रखने के लिए महिलाओं के अस्तित्व से जुड़े अधिकारों को प्रोत्साहन और संरक्षण आवश्यक देना होगा। महिलाओं का जो भी सुधार और सशक्तिकरण हुआ है वह विशेष रूप से उनके अपने स्वयं के प्रयासों और संघर्ष के कारण हुआ है हालांकि उनके प्रयासों में उनकी सहायता करने के लिए सरकारी योजनाएं भी हैं। वर्ष 2001 में भारत सरकार ने महिला सशक्तिकरण के लिए एक राष्ट्रीय नीति का शुभारंभ किया। नीति के विशिष्ट उद्देश्य निम्नानुसार हैं:

- महिलाओं के पूर्ण विकास हेतु सकारात्मक आर्थिक और सामाजिक नीतियों के माध्यम से पर्यावरण का सृजन करने के लिए उन्हें अपनी पूरी क्षमता का पता लगाना।
- सभी राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और नागरिक क्षेत्रों में पुरुषों के समान आधार पर महिलाओं द्वारा सभी मानवाधिकार और मौलिक स्वतंत्रता के आनंद के लिए पर्यावरण का निर्माण करना।
- राष्ट्र के सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी और निर्णय लेने के लिए समान पहुंच प्रदान करना।
- स्वास्थ्य देखभाल, सभी स्तरों पर गुणवत्ता की शिक्षा, करियर और व्यावसायिक मार्गदर्शन, रोजगार, समान पारिश्रमिक, व्यावसायिक स्वास्थ्य और सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा और सार्वजनिक जीवन आदि के लिए महिलाओं को समान अवसर प्रदान करना।

- महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने के उद्देश्य से कानूनी प्रणाली को सुदृढ़ बनाना।
- सक्रिय भागीदारी और पुरुषों और महिलाओं दोनों की भागीदारी द्वारा सामाजिक व्यवहार और समुदाय प्रथाओं को बदलना।
- भेदभाव, महिलाओं और लड़कियों के खिलाफ हिंसा के सभी प्रकार का उन्मूलन।
- सिविल सोसाइटी विशेष रूप से महिला संगठनों के साथ साझेदारी का निर्माण और मजबूत करना।

महिला और बाल विकास मंत्रालय महिलाओं के कल्याण, विकास और सशक्तिकरण से संबंधित सभी मामलों के लिए नोडल एजेंसी है। इसने अपने लाभों के लिए योजनाएं और कार्यक्रम विकसित किए हैं। ये योजनाएं बहुत व्यापक क्षेत्र में फैली हुई हैं जैसे कि महिलाओं को आश्रय, सुरक्षा, कानूनी सहायता, न्याय सूचना, मातृ स्वास्थ्य, भोजन, पोषण इत्यादि तथा साथ ही साथ कौशल विकास, शिक्षा और आर्थिक विकास के माध्यम से उनकी आर्थिक आवश्यकता पूरी करना। स्वधार और शॉर्ट स्टे होम्स मुश्किल परिस्थितियों में महिलाओं को सुरक्षा और पुनर्वास प्रदान करते हैं।

शिक्षा से वंचित वर्गों में पूरे विश्व में सबसे बडा हिस्सा महिलाओं का है। पूरे विश्व में ही पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं में शिक्षा का स्तर आधे से भी कम है। भारत में स्वतंत्रता के समय यह स्थिति अत्यंत विकट थी। महिलाओं की साक्षरता केवल 8.9 प्रतिशत थी। 63 वर्षों के प्रयास से इसमें काफी सुधार हुआ किंतु महिलाओं एवं पुरूषों के साक्षरता प्रतिशत में अभी भी बहुत अधिक अंतर है। 2011 की जणगणना के अनुसार जहाँ पुरूषों में साक्षरता 82 प्रतिशत है वहीं महिलाओं की साक्षरता 63.5 प्रतिशत है। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, झारखंड आदि राज्यों में यह 55 प्रतिशत से भी कम है। महिला साक्षरता के हिसाब से बिहार सबसे पिछड़ा है जहाँ यह केवल 51 प्रतिशत है। इस परिस्थिति से यह स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता के 70 वर्षो बाद भी महिला शिक्षा के लिए विशेष प्रयास करना आवश्यक है। भारत में महिला साक्षरता नए ज़माने की अहम जरुरत है। महिलाओं के शिक्षित हुए बिना हम देश के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना भी नहीं कर सकते। परिवार, समाज और देश की उन्नति में महिलाओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। भारत के लोकतंत्र को सफल बनाने का एकमात्र रास्ता यही है कि महिलाओं तथा पुरुषों को शिक्षा हासिल करने के लिए बराबरी का हक़ दिया जाए। शिक्षित महिलाएं ही देश, समाज और परिवार में खुशहाली ला सकती हैं। यह कथन बिलकुल सत्य है कि एक आदमी सिर्फ एक व्यक्ति को ही शिक्षित कर सकता

पर एक महिला पूरे समाज को शिक्षित कर सकती है जिससे पूरे देश को शिक्षित किया जा सकता है। हालांकि महिला शिक्षा हेतु भारत सरकार की विभिन्न योजनाएं जैसे इंदिरा महिला योजना, सर्व शिक्षा अभियान, बालिका समृद्धि योजना, राष्ट्रीय महिला कोष, महिला समृद्धि योजना, रोज़गार तथा आमदनी हेतु प्रशिक्षण केंद्र, महिलाओं तथा लड़कियों की प्रगति के लिए विभिन्न कार्यक्रम आदि भी चलाए जा रहे हैं। आज के दौर में हमारे देश में संवैधानिक अधिकारों की दृष्टि से महिलायें किसी भी तरह कमतर नहीं हैं मगर वे आज उतनी सुरक्षित और सम्मानित नहीं दिखतीं, जितने अधिकार और अवसर उन्हें संविधान प्रदत हैं। आज हमें महिला सशक्तिकरण के दिखावे की बजाय उन्हें अपराधमुक्त जीवन के अवसर देने और संत्रास से उबारकर ऊपर लाने की चिंता करने की आवश्यकता है। यह चिंता इस नजरिये से भी जरूरी है कि आधी दुनिया को अशिक्षित, असम्मानित और उपेक्षित छोड़ कर उन्नति की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

भारत में महिलाओं का स्वास्थ्य भी सुरक्षित नहीं है। बगैर स्वास्थ्य सुरक्षा के महिला अधिकारिता की बात बेमानी है। वर्ल्ड बैंक की एक ताजा रिपोर्ट के मुताबिक यदि दक्षिण–पूर्व एशिया में महिलाओं का स्वास्थ्य कार्ड देखें तो भारतीय महिलाओं की स्थिति श्रीलंका, नेपाल तथा पाकिस्तान की महिलाओं से ज्यादा खराब है। भारत की स्थिति बांग्लादेश से जरा ही बेहतर है। वर्ल्ड बैंक की एक्सपर्ट मीरा चटर्जी की रिपोर्ट 'स्पायरिंग लाइव्स' में भारत, बांग्लादेश, नेपाल, पाकिस्तान तथा श्रीलंका में महिलाओं की स्वास्थ्य की स्थिति का लेखा–जोखा पेश किया गया है। इसके अनुसार भारत में आज भी प्रति एक लाख प्रसवों के दौरान 301 महिलाओं की मृत्यु हो जाती है। जबकि नेपाल में यह दर 281, पाकिस्तान में 276 तथा श्रीलंका में सिर्फ 58 है। अलबत्ता बांग्लादेश में यह दर थोड़ी ज्यादा 320 है। यानी हम बांग्लादेश से ही बेहतर हैं। इससे साबित होता है कि भारत के छोटे–छोटे पड़ोसी देशों ने अपने हेल्थ केयर सिस्टम में काफी सुधार कर लिया है जिसका फायदा महिलाओं को मिल रहा है। लेकिन भारत में यह स्थिति अभी तक गंभीर बनी हुई है। चटर्जी के अनुसार श्रीलंका ने अपने स्वास्थ्य ढांचे को महिलाओं के अनुकूल बनाया है। रिपोर्ट के अनुसार भारत में 15 साल की उम्र की 51.4 फीसदी महिलाएं खून की कमी से ग्रस्त हैं तथा इसी आयु वर्ग में 41फीसदी पोषण के अभाव में कम वजन की समस्या से जूझ रही हैं। 20 आयु वर्ग में करीब 45.6 फीसदी महिलाएं रक्त अल्पतता से ग्रस्त हैं तथा 30.6 फीसदी अंडरवेट हैं। इतना ही नहीं प्रजनन स्वास्थ्य में कमजोर होने की एक मुख्य वजह 50 फीसदी महिलाओं का विवाह 20 साल से कम उम्र में होना है। रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत महिलाओं के स्वास्थ्य पर फोकस करने के लिए अपने स्वास्थ्य सुरक्षा तंत्र को मजबूत बनाए। ग्रामीण

क्षेत्रों में प्रशिक्षित स्वास्थ्य कार्मिकों की तैनाती कर सभी प्रजनन सेवाएं एक स्थान पर दी जानी चाहिए।

संविधान के अनुच्छेद 14 में कानूनी समानता, अनुच्छेद 15 (3) में जाति, धर्म, लिंग एवं जन्म स्थान आदि के आधार पर भेदभाव न करना, अनुच्छेद 16 (1) में लोक सेवाओं में बिना भेदभाव के अवसर की समानता, अनुच्छेद 19 (1) में समान रूप से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, अनुच्छेद 21 में स्त्री एवं पुरुष दोनों को प्राण एवं दैहिक स्वाधीनता से वंचित न करना, अनुच्छेद 23–24 में शोषण के विरुद्ध अधिकार समान रूप से प्राप्त, अनुच्छेद 25–28 में धार्मिक स्वतंत्रता दोनों को समान रूप से प्रदत्त, अनुच्छेद 29–30 में शिक्षा एवं संस्कृति का अधिकार, अनुच्छेद 32 में संवैधानिक उपचारों का अधिकार, अनुच्छेद 39 (घ) में पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार, अनुच्छेद 40 में पंचायती राज्य संस्थाओं में 73वें और 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से आरक्षण की व्यवस्था, अनुच्छेद 41 में बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और अन्य अभाव की दशाओं में सहायता पाने का अधिकार, अनुच्छेद 42 में महिलाओं हेतु प्रसूति सहायता प्राप्ति की व्यवस्था, अनुच्छेद 47 में पोषाहार, जीवन स्तर एवं लोक स्वास्थ्य में सुधार करना सरकार का दायित्व है, अनुच्छेद 51 (क) (ड) में भारत के सभी लोग ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हों, अनुच्छेद 33 (क) में प्रस्तावित 84वें संविधान संशोधन के जरिए लोकसभा में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था, अनुच्छेद 332 (क) में प्रस्तावित 84वें संविधान संशोधन के जरिए राज्यों की विधानसभाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था है।

पिछले दशकों में स्त्रियों का उत्पीड़न रोकने और उन्हें उनके अधिकार से संबंधित बड़ी संख्या में कानून पारित हुए हैं। अगर इतने कानूनों का सचमुच पालन होता तो भारत में स्त्रियों के साथ भेदभाव और अत्याचार अब तक खत्म हो जाना था। लेकिन पुरुष प्रधान मानसिकता के चलते यह संभव नहीं हो सका है। आज हालात यह है कि किसी भी कानून का पूरी तरह से पालन होने के स्थान पर ढेर सारे कानूनों का थोड़ा–सा पालन हो रहा है, लेकिन भारत में महिलाओं की रक्षा हेतु कानूनों की कमी नहीं है। भारतीय संविधान के कई प्रावधान विशेषकर महिलाओं के लिए बनाए गए हैं। इस बात की जानकारी महिलाओं को अवश्य होनी चाहिए। उपरोक्त वर्णित समस्त स्थितियां भारत में स्त्रियों के घटते मानवाधिकारों की परिचायक हैं जिसके कारण तमाम दावों के बावजूद स्त्री सशक्तीकरण का दावा अपने लक्ष्य से कोसों दूर है।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि भारत में महिलाएं अपने स्वयं के प्रयासों के माध्यम से तथा संवैधानिक और अन्य कानूनी प्रावधानों और सरकार की विभिन्न

कल्याणकारी योजनाओं की सहायता से अपनी जगह ढूंढने की कोशिश कर रही हैं। यह कहना सही है कि देश के सरकारी क्षेत्र में सामाजिक–राजनीतिक गतिविधियों में, निजी क्षेत्र में उनकी भागीदारी और उच्चतम निर्णय लेने वाले निकायों में महिलाओं की उपस्थिति दिन–प्रतिदिन सुधर रही है। हम महिलाओं की समस्याओं के बारे में समाज के पुरुष सदस्यों को शिक्षित और संवेदित करना है और उनके बीच एकजुटता और समानता की भावना पैदा करने की आवश्यकता है ताकि वे अपने भेदभावपूर्ण व्यवहारों को कमजोर वर्ग की ओर रोक दें। ऐसा होने के लिए सरकार से अलग विभिन्न एनजीओ और देश के प्रबुद्ध नागरिकों द्वारा प्रयासों की आवश्यकता है। सबसे पहले हमारे घरों से सभी प्रयास शुरू होने चाहिए जहां हमें किसी भी भेदभाव के बिना शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण और निर्णय लेने के समान अवसर प्रदान करके हमारे परिवार की महिला सदस्यों को सशक्त करना चाहिए। भारत शक्तिशाली राष्ट्र तभी बन सकता है जब यह वास्तव में अपनी महिलाओं को शक्ति देता है।

****

'थर्ड जेंडर' की अस्मिता और मानवाधिकार के सवाल

आकांक्षा*

बीज शब्द : थर्ड जेंडर, मानवाधिकार, समानता, सामाजिक बहिष्कार, संवैधानिक अधिकार

सारांश

समाज में एक वर्ग ऐसा भी है जो न स्त्री है न पुरुष, लेकिन समाज के अभिन्न अंग के रूप में हमेशा उसकी पहचान बनी रही है। औपनिवेशिक शासनकाल से ही हिजडों के इस समूह को एक अलग जाति या एक आदिवासी समुदाय के रूप में अलग से चिह्नित किया जाने लगा और क्रिमिनल ट्राइब्स ऐक्ट, 1871 के तहत इन्हें सूचीबद्ध भी किया गया ताकि इन्हें आसानी से अपराधी की श्रेणी में रखा जा सके। दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने सालों बाद भी समाज में इन्हें सामान्य मनुष्य का दर्जा प्राप्त नहीं है। इनके लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार जैसी सुविधाएं आज भी बमुश्किल संभव हो पाई हैं। आजीविका के सीमित विकल्प इन्हें स्व. रोजगार करने हेतु बाध्य करते हैं। सामाजिक बहिष्कार इनके जीवन का एक और कटु यथार्थ है। हालांकि, राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा इस समुदाय को 'तृतीय लिंग' के रूप में संवैधानिक अधिकार प्रदान करने का निर्देश केंद्र एवं राज्य की सरकारों को दिया गया है जो निश्चित तौर पर इन समुदायों के मानवाधिकारों की रक्षा की दिशा में उठाया गया पहला सराहनीय कदम है।

समाज का एक वर्ग ऐसा है जो न स्त्री है और न ही पुरुष लेकिन हमेशा से समाज का अभिन्न हिस्सा रहा है, जिसे समाज सामान्यतः हिज़ड़ा, किन्नर, अग्रवानी, अरुवानी, जागय्या, छक्का आदि कहता है। हिंदीभाषी क्षेत्रों में इन्हें हिज़ड़ा कहा जाता है। यह शब्द अरबी मूल के 'hjr' शब्द से व्युत्पन्न है। जिसका अर्थ है 'अपनी जाति (ट्राइब) को छोड़ने वाला'। पहले इन्हें 'ख्वाजासरा' कहा जाता था और ये महलों के रनिवास में निवास किया करते थे। कहा जाता है कि भारतीय समाज और संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता 'समन्वयशीलता' है, पर यह कटु सत्य है कि यह बात सभी संदर्भों में समान रूप से लागू नहीं होती। बहुवर्गीय सामाजिक संरचना के आवरण के पीछे मूल संरचना में हमारा समाज दो वर्गों में बंटा हुआ है। स्त्री और पुरुष दो वर्ग ही मुख्यधारा में हैं। जन्म से ही इनका वर्ग निर्धारण हो जाता है। रामायण

*सामाजिक मुद्दों पर स्वतंत्र लेखन कार्य, नई दिल्ली

और महाभारत सहित तमाम प्राचीन ग्रंथों और पौराणिक कथाओं में इसके प्रमाण मौजूद हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी इनका उल्लेख मिलता है। लोक मिथकों में उल्लेख है कि 'जब राम पैदा हुए थे तब भी हिजड़ों ने बधाई बजाई थी और जब कृष्ण पैदा हुए थे तब भी बजाई थी। द्वारिका में कोई भी खुशी मनाई जाती थी, तो उसमें इनकी उपस्थिति रहती थी।

वैदिक संस्कृति में भी स्वभाव और प्रकृति के अनुसार व्यक्ति को पहचाने जाने का तीन तरह का वर्गीकरण मिलता है। कामसूत्र में भी पुंसप्रकृति, स्त्री प्रकृति और तृतीय प्रकृति का जिक्र मिलता है। बहुत सारे अन्य लिखित संदर्भों से भी यह प्रमाणित होता है कि पूर्व आधुनिक भारत में भी इस तीसरी कोटि 'थर्ड जेंडर' से लोग भलीभांति परिचित थे और उन्हें बचपन में ही चिह्नित कर लिया जाता था। प्राचीन भारतीय विधि, चिकित्सा, भाषा और अन्य क्षेत्रों में भी 'थर्ड जेंडर' का जिक्र भिन्न–भिन्न नाम से मिलता है। मनुस्मृति में इस तीसरी कोटि के लोगों के पैदा होने के जैविक कारणों को वर्णित किया गया है।

भारत में अप्रैल, 2014 में, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हिज़ड़ा, ट्रांसजेण्डर, इंटरसेक्स आदि को 'थर्ड जेण्डर' के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। नेपाल, पाकिस्तान, भारत, बांग्लादेश ने इनके अस्तित्व को विधिक रूप में स्वीकारा है। दक्षिण एशिया में भी इन्हें 'थर्ड जेण्डर' के रूप में मान्यता प्राप्त है।

ऐतिहासिक परिदृश्य

इतिहास को जानने के स्रोतों से यह पता चलता है कि मुग़लकाल में शाही न्यायालयों में इन्हें बहुत महत्त्वपूर्ण पदों पर रखा जाता था और ये प्रशासन में काफी जिम्मेदार भूमिकाएं जैसे राजनीतिक सलाहकार, प्रशासक आदि निभाते थे। 'हिजड़ों'/किन्नरों को काफी विश्वासपात्र, स्वामिभक्त और चतुर समझा जाता था और इन्हें हर तरह के लोगों के बीच आने–जाने की आज़ादी थी और ये मुग़ल साम्राज्य को बनाए रखने के राजनीतिक कामों में खूब दखल रखते थे और लगातार उसके लिए काम किया करते थे। इन्हें इस्लाम के धार्मिक पवित्र संस्थानों में भी काफी उच्च पद प्राप्त था। मक्का–मदीना जैसे पवित्र धार्मिक स्थानों की सुरक्षा और अन्य प्रशासनिक व्यवस्थाओं की जिम्मेदारी भी इन्हें ही दी जाती थी। राज्य सत्ता के निर्णयों में भी इनका काफी हस्तक्षेप हुआ करता था और राजा और रानी के करीबी होने के नाते इन्हें बहुत सारा धन भी प्राप्त हुआ करता था। इससे स्पष्ट होता है कि इस काल में इनकी स्थिति बेहतर थी।

ब्रिटिशकाल के शुरुआती दिनों में इन्हें भारतीय रियासतों द्वारा लाभ और सुरक्षा प्राप्त हुआ करता था। कई उदाहरण इस तरह के भी मिलते हैं कि जब अंग्रेजों का

प्रभुत्व बढ़ने लगा तो देशी रियासतों पर कब्जा करने के दौरान जब राज–पाट से हाथ धो बैठने की स्थिति में लोग हिजड़ों के समुदाय में जाकर अपनी रक्षा किया करते थे। उपनिवेश काल में इनकी स्थितियों में काफी बदलाव आया। जहां इन्हें मुग़ल काल में काफी सम्मान प्राप्त था इसके उलट ब्रिटिश काल में इनका अपराधीकरण किया जाने लगा। ऐसा इसलिए किया जाने लगा ताकि इनके नागरिक अधिकार समाप्त हो जाएँ और इस समुदाय को दोयम दर्जे में रखा जा सके। औपनिवेशिक शासन में 'हिजड़ों' को एक अलग जाति या एक आदिवासी समुदाय के रूप में अलग चिह्नित किया गया और क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट 1871 के तहत इनको सूचीबद्ध किया जाने लगा ताकि इनको आसानी से इन्हें अपराधी घोषित किया जा सके।

इस एक्ट में इनको सम्मिलित करके जो क्रिमिनल ट्राइब्स अपहरण करते थे, बच्चे पकड़ते थे उसमें सार्वजनिक स्थल पर स्त्री वेश में नाचने वाले इस समुदाय को ही अपराधी घोषित किया जाने लगा। इस तरह के अपराधों के लिए दो वर्ष की सजा या जुर्माना या दोनों का प्रावधान था। इतिहास में इनको समाज के अन्य तबकों से इस तरह अलग किए जाने की परिपाटी ने इनके लिए काफी कष्टदायक और असामान्य स्थितियां पैदा कीं जो वर्तमान में लगभग उसी रूप में चला आ रहा है।

आजादी के बाद के कालखंड में इस एक्ट को बरकरार रखा गया और इसकी वैधता जारी रही और अन्य स्थानीय कानूनों के साथ जुड़े होने कारण इस तरह की क्रिमिनल ट्राइब्स और मुख्य रूप से हिजड़ों के प्रति पूर्वाग्रह पूर्ण रवैया ही जारी रहा। कर्नाटक पुलिस एक्ट में 2012 में एक बदलाव हुआ और उसकी धारा 36 से क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट को जोड़ते हुए यह प्रावधान किया गया है कि बच्चों के अपहरण और अन्य अप्राकृतिक अपराध करने वाले हिजड़ों को रजिस्टर्ड किया जाये, उनके आवासों को चिह्नित किया जाये और उन पर नजर रखी जाये।

इन संदर्भों से यह ज्ञात होता है कि इनके वजूद का जिक्र हर कालखंड में मिलता है लेकिन अधिक हैरान करने वाली बात यह है कि आजादी के बाद के भारत में इस वर्ग के हमेशा से समाज में विद्यमान होने के बावजूद भी इनके अधिकारों की बात प्रमुखता से कभी नहीं की गई और न ही उठाई गई। इनके लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार जैसी सुविधाओं की बात करना बेमानी सा हो गया। सुविधाओं और अधिकारों के लिहाज से इस बहुवर्गीय सामाजिक ढांचे में ये कहीं भी फिट नहीं बैठते हैं। इनका कोई गोत्र नहीं होता, कोई जाति नहीं होती, कोई धर्म नहीं होता, यहां तक कि इनके पास सामाजिक मान्यता प्राप्त पहचान का कोई भी चिह्न नहीं होता है। हमारी सामाजिक व्यवस्था, जिसमें 'शिक्षा सबका अधिकार' नारा दिया जाता है, वहां भी इनके लिए शिक्षा की कोई विशेष व्यवस्था नहीं है। अगर ये समाज के 'विशेष श्रेणी' के हैं, तो जिस तरह

विकलांगों के लिए विद्यालय, विश्वविद्यालय हैं, इनके लिए भी होने चाहिए और अगर इन्हें 'विशेष श्रेणी' नहीं माना जा रहा है, तो सामान्य नागरिक की तरह इन्हें भी शिक्षा नीति में स्थान मिलना चाहिए। किसी भी प्रकार के रोजगार में अब तक इनके लिए कोई ठोस नीति नहीं दिखाई देती है।

एक सामाजिक संस्था के रूप में हिजड़ों/थर्ड जेंडर का जन्म

कई बार एक परंपरा के माध्यम से स्त्री/पुरुष को हिजड़ा/किन्नर बनाया जाता है। हिजड़े बनाने की प्रक्रिया में परूष को अंडकोष निकलवाने की प्रक्रिया से गुजरना होता है और स्त्रियों के जननांगों के कुछ या सभी हिस्सों को निकाल दिया जाता है। हिजड़ा समुदाय के सांस्कृतिक आदर्श और उनके 'वास्तविक व्यवहार' में परस्पर विरोधी अन्तर मौजूद हैं; भारत के हिजड़ा समुदाय के अंतर्गत बहुत से हिजड़े ऐसे होते हैं जो बधियाकरण के पारंपरिक अनुष्ठान से नहीं गुजरते उन्हें 'अकवा हिजड़ा ' कहा जाता है – अर्थात वह अन्तःलिंगी, जो पुरुष जननांग रखता है वह भी हिजड़ा समुदाय में स्थान प्राप्त करता है। एक ऐसे हिजड़े के अनुसार, जिसने बधिया तो नहीं कराया लेकिन स्तन प्रत्यारोपण जरुर कराया था। उसका कहना था –

"हम हिजड़े आज अपने स्वास्थ्य के प्रति सचेत हैं और इस बात को जानते हैं कि अपने शरीर के सबसे संवेदनशील अंगों को निकलवाने के उस पीड़ादायी ऑपरेशन (बधियाकरण) के क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं। मैं अभी भी हिजड़ा हूँ पर मैं पूरे जीवन के लिए स्थायी तौर पर अपने शरीर को कोई नुकसान नहीं पहुँचाना चाहती"।

वह हिजड़े जो बधियाकरण की प्रक्रिया से गुजरते हैं उन्हें 'निर्वाणा हिजड़ा' कहा जाता है। इस अनुष्ठान के तहत अंडकोष तथा लिंग दोनों को निकाल दिया जाता है। जो हिजड़े बधियाकरण की प्रक्रिया से गुजर चुके होते हैं वह हिजड़ा समाज के अंदर सम्मान की नज़रों से देखे जाते हैं क्योंकि बधिया होने का मतलब है उन्होंने सांसारिक सुखों का त्याग कर दिया। अपने लिंग को कुर्बान कर देना उन्हें सामान्य लोगों से ऊपर उठाकर वह शक्ति या पदवी प्रदान कर देता है जिससे वह किसी को शाप या आशीर्वाद दे सकें। शरीर में किया जा रहा यह फेरबदल, लिंग परिवर्तन (reassignment surgery) ऑपरेशन में आने वाले अत्यधिक खर्च के कारण सामान्यतः बिना किसी अधिकृत चिकित्सीय सहयोग के किया जाता है। हिजड़ा समुदाय के भीतर इस तरह के अनुष्ठानों को करवाने वाले स्थानीय चिकित्सकों के ठिकानों के बारे में अत्यधिक गोपनीयता बरती जाती है। कुछ हिजडों ने इस तरह के अनुष्ठानों में अपनी पूर्ण आस्था प्रकट की। इस परंपरा के तहत बने एक हिजड़े के अनुसार– "यह अपने आप में आत्मविश्वास और भरोसे का मामला है। हम अपने जीवन को कैसे किसी अकुशल और गैरपेशेवर हाथों में दे सकते हैं जिसके पास कोई अनुभव नहीं है। यह हमारे लिए

जीवन और मृत्यु का मामला है। निःसंदेह हम समुदाय के विश्वसनीय चिकित्सक के हाथों पर भरोसा करेंगें जो इस काम को पीढ़ियों से हमारे लिए करते आ रहे हैं।"

कुछ हिजड़े जिन्होंने अपना ऑपरेशन अपने व्यक्तिगत और स्थानीय जान–पहचान वाले चिकित्सकों से कराया उनका कहना था कि 'उन्हें भयानक दर्द से गुजरना पड़ा। यही कारण है कि हमें भगवान की तरह माना जाता है क्योंकि, हम ऐसी पीड़ा से होकर गुजरते हैं जिसे झेलने के बारे में सामान्य आदमी या औरत सोच भी नहीं सकते। हम ईश्वर के सर्वाधिक नजदीक हैं जैसा कि लोककथाओं में कहा भी गया है। महान भारतीय महाकाव्य महाभारत में हमें 'अर्ध नारीश्वर' कहा गया है।

बधियाकरण के बाद कई अन्य अनुष्ठान किए जाते हैं, लगभग तीन महीने तक उस घराने के हिजड़े/किन्नर उसे आशीर्वाद देने आते हैं तथा उसके जल्दी व पूर्ण स्वस्थ होने की कामना करते हैं। जल्दी स्वस्थ होने के लिए हिजड़ा समुदाय बहुत सारे नुस्खों का इस्तेमाल करता है जैसे– सम्भोग तथा गर्म और मसालेदार खाने से दूर रहना, खुद से तैयार किए गए मरहम, लेप और तेल आदि की मालिश। हिजड़ा/किन्नर समुदाय में प्रवेश के लिए, गुरु द्वारा चेले को गोद लेने की जरुरत होती है जिससे वह चेले को घराने की संस्कृतियों और परंपराओं से परिचित कराये। गुरु को प्राप्त करने के लिए सबसे पहले एक हिजड़े/किन्नर को यह पहचान करनी पड़ती है कि वह किसका चेला बनना पसंद करेगा, जिसकी शर्तों में, उसे तीन महीने से लेकर तीन साल तक 'घरेलू सहायक' के रूप में सेवा करनी पड़ती है जिसके एवज में गुरु चेले को सामाजिक सुरक्षा के साथ–साथ भोजन, कपडा और मकान की सुविधा प्रदान करता है। कुछ हिजड़ों का मानना है कि, 'इसके अतिरिक्त हम अपने गुरु से क्या इच्छा रख सकते हैं ? हमारा गुरु हमारा रक्षक और मुक्तिदाता है। वे हमें इस क्रूर और निष्ठुर दुनिया से बचाते हैं ! हमारे पास ऐसा कोई नहीं है जिस पर हम भरोसा कर सकें, अपने परिवार वालों तक पर भी नहीं जिन्होंने हमें पैदा किया, उन्होंने हमारा त्याग कर दिया। ऐसा नहीं है, हमारा जीवन पूरी तरह साफ है। ऐसी परिस्थितिओं में हमें अपने गलत कामों के कारण जो हमने किए हैं उसके एवज में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, हम इसके योग्य है। ये सब जीवन का एक हिस्सा है, इससे बाहर निकलने का और कोई रास्ता नहीं है।'

हिजड़ों के घराने में शामिल होने पर उन्हें महिलाओं के जैसे नए नाम दिए जाते हैं तथा उन्हें डेरे के समूह में शामिल होने का अधिकार मिल जाता हैं। एक नयी पहचान के साथ कि उक्त मनुष्य अब हिजड़ा के श्रेणी में आ गया है। हिजड़ों/किन्नरों की दुनिया में अभ्यस्त हो जाने के बाद चेला घराने में अपना योगदान करते हुए अपनी कमाई से अपना हिस्सा गुरु को देना आरम्भ करता है। श्रेणीबद्ध (उच्च व

निम्न) होने के बावजूद भी गुरु–चेला संबंध सहजीवी होता है जो समुदाय के भीतर सामाजिक संगठन की आधारशिला है और सामाजिक नियंत्रण की मुख्य संस्था के रूप में कार्य करती है। एक बार चेला बन जाने के बाद समुदाय की परम्पराओं की किसी भी प्रकार की अवज्ञा किए जाने पर चेले को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है और उसे हिजड़ा समुदाय से जाति बहिष्कृत समझा जाता है। गुरु और चेले के संबंधों में कई प्रकार की विविधताएँ हैं। जैसे, एक के अनुसार,' डेरा मेरा परिवार है और मेरा गुरु केवल मेरा संरक्षक नहीं है वह मेरी माँ, भाई, पति और मेरा सब कुछ है।' लेकिन दूसरे के अनुसार– 'कभी तो गुरु–चेला संबंध माँ–बच्चे की तरह मधुर हुआ करता था लेकिन, तुम जानती हो आजकल यह कैसा है। ज्यादातर इस बात से सहमत हैं कि हमारा संबंध सास–बहू के संबंध की तरह है कभी खट्टा तो कभी मीठा दोनों है।'

घरानों के वर्गीकरण की आतंरिक व्यवस्था :

हिजड़ा समुदाय के भीतर जो सामाजिक श्रेणियां प्रचलित हैं वह हिजड़ा समुदाय के भीतर वर्गीकरण की आन्तरिक व्यवस्था ' क्रमबद्ध श्रेणी' पर आधारित है घराना कहलाता है। मुख्य तौर पर दिल्ली में घरानों की जो व्यवस्था मौजूद है वह आरम्भ से ही इस बात में विश्वास रखती है कि उनका उद्भव मुख्य रूप से दो घरानों से हुआ है एक है 'बादशाहवाला ' और दूसरा है 'वज़ीरवाला'। ये घराने आगे चलकर चार उप–घरानों में विभाजित हो गए। सबसे प्रमुख घराने 'बादशाहवाला' का स्थान उन हिजड़ों के लिए सुरक्षित था जो हिंदी या उर्दू भाषा में संबोधन के माध्यम से बादशाह से संबंध रखते थे। इससे जो घराने पैदा हुए वह इस प्रकार हैं –

- सुजानी घराना : 'सुजानी' शब्द के मायने उस व्यक्ति से संबंधित है जो चीजों का बेहतर मूल्यांकन करती है।
- राय घराना : 'राय' औपनिवेशिक ब्रिटिश राज में हुकूमत की वफादारी के लिए दी जाने वाली पदवी थी। इसके साथ–साथ भारतीय सामंती एवं जाति समाज व्यवस्था में राय एक उच्च जमींदार जाति है।

हिंदी या उर्दू भाषा के माध्यम से राजा के मंत्री या वज़ीर से संबंध रखने वाले 'वज़ीरवाला' के अंतर्गत आते हैं। इससे जिन घरानों का उद्भव हुआ वे हैं –

- **कल्याणी घराना** : हिंदी भाषा में कल्याणी का अर्थ होता है जो सभी के कल्याण के लिए बनी है।
- **मंडी घराना** : हिंदी और उर्दू दोनों ही भाषाओँ में मंडी का अर्थ है 'बाजार'।

हालाँकि हिजड़ा घराने के नामों के मायने और घरानों की सामाजिक स्थिति

में कोई व्यावहारिक समानता नहीं है, यह मात्र एक खास तरह की शक्तियों का विभाजन है जो शायद हिजड़ा घरानों के बीच मौजूद हो। इस प्रकार की संरचनाएं हो सकता है हिजड़ा/किन्नरों समुदाय के भीतर कई स्तर पर मौजूद सामाजिक श्रेणियों को नियंत्रित करने का एक माध्यम हो जो हिजड़ा समुदाय को लम्बे समय से एक सांस्कृतिक परियोजना के बतौर शासित करती रही है।

आजीविका के साधन

आजीविका के सीमित विकल्प हिजड़ों के स्वरोजगार हेतु बाध्य होने का प्रमुख कारण है, वह केवल गरीब हैं और उनकी कोई शैक्षणिक पृष्ठभूमि नहीं है जिसका कारण उनका सामाजिक बहिष्कार है। उनका मुख्य पेशा टोली–बधाई गाना और आशीर्वाद देना है, जो सभी हिजड़ों के लिए कमाई का एकमात्र जरिया है क्योंकि इन्हें निःसंतान दंपत्तियों के लिए शुभ माना जाता है।

भारत में परम्परागत रूप से शुभ अवसरों पर की जाने वाली ' पुण्य वर्षा' का इस्तेमाल हिजड़े/किन्नर अपने धंधे के लिए करते हैं तथा उपहार और रुपये–पैसे आदि कमाते हैं। ऐसे अवसरों पर ये समुदाय नाच–गाना करते हुए ढोल बजाते हैं। ढोल बेलनाकार लकड़ी का बना ड्रम होता है जिसे वे सामान्य तरीके से अलग बजाते हैं। हिजड़ा समुदाय के भीतर शुक्रवार का दिन शुभ माना जाता है और यह दिन आशीर्वाद के धंधे से अवकाश का दिन होता है। यह दिन इस्लाम के भीतर भी सामूहिक प्रार्थना का दिन होता है जिसे जुमा कहा जाता है। इसके साथ–साथ यह दिन साथी हिजड़ा सदस्यों के साथ मेलजोल बढ़ाने और घराने की बैठकों का होता है जो कई स्थानों पर किया जाता है। एक उपासक हिजड़ा हर शुक्रवार के दिन भारत की सबसे बड़ी मस्जिदों में से एक जामा मस्जिद में प्रार्थना करता है, जिससे यह तथ्य सामने आते है – हिजड़े/किन्नर अपने पारंपरिक पुरुष पहनावे कुर्ता–पायजामा को धारण करते हैं तथा जमात की आखिरी लाइन में बैठकर इसलिए नमाज़ (पश्चाताप की नमाज़) अदा करते हैं जैसाकि उनका मानना है कि अल्लाह की दी हुई छत्तीस नसों को कटवाकर (बधिया) उन्होंने पाप–कर्म किया है। इसलिए उनकी परछाई दूसरे नमाजियों पर नहीं पड़नी चाहिए।

जीवन–यापन के लिए देह व्यापार को धनार्जन के अगले बेहतर विकल्प के बतौर देखा जाता है। यह घरों से लेकर सड़कों तक विभिन्न सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि से आने वाले पुरुष उपभोक्ताओं के आधार पर फैला हुआ है। सड़कों पर से किए जाने वाले देह व्यापार के अपने खतरे हैं। एक किन्नर, जो उसके साथ बीती थी उसे बताते हुए रो पड़ी। एक बार जब वह घर को लौट रही थी तब उसके घर के ही

पास ड्यूटी पर एक पुलिस अधिकारी ने खींचकर उसका बलात्कार किया। वह असहाय थी और इस परिस्थिति में कुछ नहीं कर सकती थी अगर वह पुलिस के खिलाफ शिकायत दर्ज कराने जाती तो इसकी पूरी संभावना थी कि उसे कार्य–स्थल (धंधे) पर जाने से रोक दिया जाता, साथ ही इस बात से भयभीत थी कि पुलिस वाले आगे उसे कोई नुकसान ना पहुँचा दें जिसे करने में वह सक्षम थे।

जीविका के लिए भीख माँगना आखिरी विकल्प है जिसे हिजड़ा समुदाय के भीतर हेय समझा जाता है। भीख माँगने के लिए ट्रैफिक सिग्नल हिजड़ों के लिए सबसे आसान जगह है, जिसे शहर के ट्रैफिक जाम से काफी सहायता मिलती है जिसका अर्थ यह है कि जब ट्रैफिक, सिग्नल पर धीमी गति से आगे बढ़ता है तो इनके पास यात्रियों से पैसे माँगने का पर्याप्त समय होता है। कमाई गई धनराशि को ट्रैफिक सिग्नल के साझीदारों के बीच शक्ति–संबंधों के हिसाब से साँझा किया जाता है। यदि कमाई अपर्याप्त है और वह केवल किराया और भोजन की जरूरतों को पूरा करती है तो उसे गुरु को दे दिया जाता है।

सम्मानित घोषित करने की आतंरिक व्यवस्था

हैदराबाद के हिजड़ा/किन्नर समुदाय पर काम करते हुए रेड्डी ने 'इज्ज़त' के महत्व को रेखांकित किया है। दिल्ली के हिजड़ा घरानों के बीच इज्ज़त की निर्मिती समूह के मानदंडों और रिवाजों के आधार पर की जाती है, इसकी पहचान दो प्रकार के हिजडों में होती है। एक है 'पन्नवाला हिजड़ा' और दूसरा है 'खैरगल्ला हिजड़ा'। पन्नवाला हिजड़ों की इज्जत ज्यादा है क्योंकि उनके गुरु के पास निर्धारित किया एक निश्चित क्षेत्रीय इलाका होता है जिसमें उनके चेलों को उन स्थानों पर नियमित समय पर घूमने, बधाई गाने, भीख माँगने का अधिकार होता है। इन इलाकों की निशानदेही और विभाजन 'नायकों' (घराने का मुखिया) के बीच होता है तथा इसका पुनर्मूल्यांकन वरिष्ठ गुरुओं की माहवार होने वाली बैठकों में बातचीत से किया जाता है।

ऐतिहासिक रूप से इस तरह क्षेत्रों और सीमाओं के विभाजन का उद्‌भव हम लॉरेंस के नृजातीय अध्ययन में आरंभिक रूप से पाते हैं। लॉरेंस ने बम्बई के हिजडों पर किए गए अपने काम में इस बात की तरफ संकेत किया हैं कि, उन्हें अपने इलाकों में नियमित रूप से फेरी लगाना तथा गाँव वालों से हक वसूलने के चलन को परंपरागत रूप से मान्यता प्राप्त थी।

समुदाय के बीच सामूहिक विवेक से यह बात स्वीकार कर ली गई है कि पैसा एकत्रित करना हिजड़ों का जायज अधिकार है और इसी आधार पर हिजड़ा समुदाय को बढ़ाते हुए खुद से ही सीमाओं का विभाजन करते रहना चाहिए। जो व्यक्ति हिजड़ा

समुदाय के अगुवाओं (नायक और वरिष्ठ गुरु) द्वारा लिए गए निर्णयों को नहीं मानता है और उसका उल्लंघन करता है उसे जाति बहिष्कृत हिजड़ा या 'खैरगल्ला' घोषित कर दिया जाता है। खैरगल्ला हिजड़ा शब्द का प्रयोग उन हिजड़ों के लिए किया जाता है जो निर्धारित इलाकों का अतिक्रमण करते हुए नियमित फेरे पर जाने वाले हिजड़ों के अधिकृत क्षेत्रों में प्रवेश करते हैं।

एक वरिष्ठ हिजड़ा गुरु ने कहा कि निम्न परिस्थितियों में एक हिजड़े को अतिक्रमणकारी (खैरगल्ला) माना जा सकता है –

- जो समुदाय से बहिष्कृत कर दिए गए हैं और उन इलाकों में प्रवेश करते हैं जो अब उसके नहीं हैं।
- वे हिजड़े जो देह व्यापर में शामिल हैं लेकिन अपनी कमाई को बढ़ाने के लिए वो उन इलाकों में वसूली करते हैं जहाँ उन्हें वसूली के जरिये धन अर्जित करने का कोई अधिकृत आदेश नहीं है।
- बढती हुई उम्र और इज्ज़त के साथ जो वरिष्ठता प्राप्त करने की हमारी प्रथा है उसके बिना ही अपने आप को गुरु घोषित करते हुए उन इलाकों पर अपना दावा ज़माने लगते हों जिसका मालिकाना हक किसी और को दिया गया हो।
- वे लोग जो जीवन–यापन के लिए भीख मांगते हैं लेकिन आर्थिक संकट के कारण अपने आस–पास के उन इलाकों में जो टोली–बधाई के लिए दूसरे हिजडों को दिए गए हैं उन इलाकों का अतिक्रमण करते हैं।

नियमों के इस उल्लंघन की सूचना वरिष्ठ गुरुओं और नायकों को दी जाती है और उन्हें दण्डित किया जाता है। इसकी गंभीरता का फैसला घरानों की उन बैठकों में किया जाता है जिसमें अतिक्रमण का मुद्दा विमर्श के लिए रखा जाता है जिसे हिजड़ा पंचायत कहा जाता है। सबसे सामान्य सजा निर्धारित समय के अंदर भारी फाइन भरवाने की है। यदि वह इसमें असफल रहता है तो उसे घराने से बहिष्कृत कर दिया जाता है। हालाँकि एक हिजड़ा जो हमारे अध्ययन में शामिल था उसे बहुत ही अलग कारण से घराने से बहिष्कृत किया गया था।

हालांकि राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (National Legal Services Authority-NALSA) बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा इस समुदाय को 'तृतीय लिंग' (थर्ड जेंडर) के रूप में पहचान देने के साथ ही उन्हें सभी विधिक और संवैधानिक अधिकार प्रदान करने का निर्देश केंद्र और राज्य सरकार को देने के बाद इनकी पहचान निश्चित करने की दिशा में पहला कदम उठाया गया है। 15 अप्रैल,

2014 को न्यायमूर्ति के.एस राधाकृष्णन और न्यायमूर्ति ए.के सीकरी की खंडपीठ द्वारा यह निर्णय दिया गया। इनके केस को मानव अधिकार का केस माना गया। यद्यपि इनकी संख्या कम है पर ये भी मानव हैं। इनके भी सभी अधिकार होने चाहिए। राजेश तलवार, एडवोकेट, की पुस्तक 'दि थर्ड सेक्स एण्ड ह्यूमन राइट्स' में इनकी समस्याओं की विस्तृत चर्चा है। यह फैसला निश्चित ही इस वर्ग के हित में है, क्योंकि यह उनकी पहचान सुनिश्चित करता है। हां, देश में एक वर्ग ऐसा भी है, जो अभी 'थर्ड जेण्डर' की इस पहचान को स्वीकार नहीं करना चाहता।

इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने 'थर्ड जेंडर' के लिए जनगणना, नागरिकता कार्ड प्रदान करना, पासपोर्ट सुविधा, सामाजिक–आर्थिक विकास में उनकी भूमिका सुनिश्चित करने और उनके संवैधानिक अधिकारों की रक्षा के लिए अनेक कल्याणकारी योजनाएं और नीतियाँ शुरू की हैं। मनरेगा के तहत इन्हें रोजगार के अवसर प्रदान किए जाने की भी व्यवस्था की गई है। राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन और चिकित्सा सुविधाओं की भी सुनिश्चितता की गई है। इस समुदाय के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए भी कई बदलाव करते हुए बड़े कदम भी लिए गए हैं ताकि एक सामान्य नागरिक के तौर पर इनकी सभी प्रकार से रक्षा हो सके। जीवनयापन के लिए इन्हें भी रोजगार चाहिए। वर्ष 2006 से पटना में राजस्व वसूली के लिए इन्हें अधिकारी के साथ लगाया जा रहा है और कमीशन दिया जाता है।

सरकारी प्रयास इस वर्ग के लिए तो किए जा रहे हैं लेकिन इससे अलग भी कई सवाल हैं जो इस समुदाय के लोगों को बतौर नागरिक और समाज का अंग माने जाने के लिए जरूरी दीख पड़ते हैं। समाज और घर परिवार भले जनन अंगों से विकारग्रस्त व्यक्ति को हिजड़ा या किन्नर कह कर 'थर्ड जेंडर' वर्ग में नामांकित करते हैं, पर वास्तविकता इससे कहीं इतर है। प्रत्येक किन्नर भीतर से आत्मिक, मानसिक और अनुभूति के स्तर पर या तो स्त्री होता है या पुरुष। समस्या इस बात की है कि वह अपनी जननेंद्रियों से हीन होने के कारण समाज और परिवार द्वारा तिरस्कृत होता रहता है। सामाजिक स्तर पर व्यावहारिक रूप से इस ऐतिहासिक और साहसिक फैसले को क्रियान्वित होने में समय लग सकता है। क्योंकि हमारे समाज का बड़ा हिस्सा पूर्वाग्रहों से ग्रस्त है। यहां हरेक सक्षम वर्ग द्वारा इन्हें हमेशा बड़ी हिकारत से देखा गया है। यही कारण है कि समाज में इस वर्ग के संघर्ष का कोई अंत नहीं रहा है।

इनके साथ सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि समाज के साथ ही इनके स्वयं के परिवार वालों द्वारा भी इन्हें त्याग दिया जाता है। जन्म से लेकर पूरा जीवन ये समाज में रहते हुए भी समाज से इतर बहिष्कृत होकर जीवनयापन करते हैं। मूलभूत सुविधाओं और आवश्यक आवश्यकताओं के लिए भी इन्हें भीषण संघर्ष करना पड़ता

है। ये नाच–गा कर, बधाई बजा कर अपना पालन–पोषण करते हैं, शुभ अवसरों पर इनके द्वारा नेग लेने की परंपरा वर्षों से चली आ रही है। यह अपनी दुआओं से समाज की झोली तो भर देते हैं, पर इसके बदले इन्हें कभी दुआएं नहीं मिलती। ये जन्म से ही समाज द्वारा तिरस्कृत होने को अभिशप्त हैं। यह पाया गया है कि समाज की अथाह घृणा को सहने के बाद भी यह वर्ग सामान्य वर्ग से कहीं अधिक संवेदनशील होता है। इसी कारण लोग पलट–पलट कर इनके पास जाते हैं और अपनी मुरादें पूरी होने का आशीर्वाद मांगते हैं। क्योंकि समाज में यह मान्यता सदियों से चली आ रही है कि किन्नरों की दुआ का असर जरूर होता है और इससे धन, संतान, स्वास्थ्य आदि की मनोवांछित इच्छाएं फलीभूत होती हैं। इसके बाद भी सभ्य समाज इनके प्रति पूर्वाग्रहग्रस्त बना रहता है।

यह भी देखा गया है कि सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि के चर्चित/ विवादित मुद्दे या आंदोलन साहित्य में आकर विमर्श का रूप ले लिया करते हैं। पर इस वर्ग के साथ यह बहुत बड़ी विडंबना रही है कि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक मुद्दों के साथ ही कला और साहित्य में भी इस वर्ग की घोर उपेक्षा की गई है। जहां इनका उल्लेख हुआ भी है, वहां बहुत हल्के व्यंग्य आदि के साथ हुआ है। आज जिस विमर्शीय समय में हम रह रहे हैं वहां कुछ भी स्थिर नहीं है, न वाद न विवाद और न ही संवाद। एक ऐसे समय में, जब हाशिए के विषय मुख्यधारा में आ चुके हैं और खुल कर उनके अधिकारों पर बात हो रही है, उनकी पड़ताल की जा रही है और विविध दृष्टियों से उन पर विमर्श भी किया जा रहा है, तब भी 'थर्ड जेण्डर' पर उतनी बात नहीं हो रही है, जितनी अब तक हो जानी चाहिए थी। साहित्य में भी उंगलियों पर गिनने लायक प्रयास ही हुए हैं।

फिर भी यह संतोषजनक है कि यह विषय वर्तमान साहित्य में अपनी पैठ बना चुका है। यह अल्पसंख्यक अस्मिताओं पर विमर्श का दौर है। दशकों पहले से दलित विमर्श, स्त्री विमर्श और आदिवासी विमर्श से आच्छादित साहित्य का फलक आज तीसरी सत्ता पर कलम उठाने के लिए बाध्य हो गया है। बाध्यता इस बात की कही जा सकती है कि साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, वह सामाजिकता से इतर हो ही नहीं सकता। उसकी सदा से सामाजिक संबद्धताएं और सरोकार रहे हैं। साहित्य का उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन करना भले न हो, फिर भी वह संकीर्ण मानसिकता को बदलने में सहायक की भूमिका निभाता ही है। समय–समय पर होने वाले आंदोलनों को साहित्य ने मजबूत जमीन प्रदान की है। प्रेमचंद ने साहित्य को यूँ ही जलती हुई मशाल नहीं कहा है। 'मशाल' शब्द जितना 'रोशनी' से संबंधित है, उससे कहीं ज्यादा 'आग' के अर्थ का द्योतक है। वही आग और रोशनी आज किन्नर विमर्श के रूप में सामने है।

यह साहित्य की संबद्धता ही है, जो इधर कुछेक वर्षों में इस विषय पर गंभीर चर्चाएं हुई हैं। वर्तमान समय में कई भाषाओं की विविध विधाओं में इस विषय पर लेखन हो रहा है। हिजड़ों को केंद्र में रख कर कई उल्लेखनीय कहानियां और उपन्यास लिखे गए हैं। साहित्य के अतीत में देखें पाते हैं कि पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की कुछ कहानियों में 'लौंडेबाजों' का ज़िक्र आता है, वे यही 'थर्ड जेंडर' हैं। नीरजा माधव ने अपने उपन्यास 'यमदीप' में भी इस वर्ग की कथा–व्यथा कही है। प्रदीप सौरभ भी अपने उपन्यास 'तीसरी ताली' के बहाने तथाकथित सभ्य समाज के साथ–साथ लेस्बियंस आदि की भी चर्चा करते हैं और समाज से जुड़े कुछ ऐसे प्रसंग उठाते हैं, जिन पर तथाकथित सभ्य समाज बात करने से भी कतराता है। इसी तरह का एक उपन्यास महेंद्र भीष्म का भी है जिसमें एक राजवंश में पैदा हुई 'थर्ड जेंडर' लड़की सोना के संघर्ष का वर्णन किया गया है।

कुल मिलाकर हम देखते हैं कि सर्वोच्च न्यायालय ने 'थर्ड जेंडर' को कानूनी मान्यता या वैधता भले ही दे दी हो लेकिन उनके बारे में लोगों के विचार और उनको देखे जाने का नजरिया अभी भी नहीं बदला है। हाल के कुछ उदाहरण मिलते हैं कि इस समुदाय में शिक्षा को लेकर जागरूकता आई है। बहुत सारे ऐसे लोग सरकारी और गैर–सरकारी नौकरियों में रखे जाने लगे हैं। अभी हाल ही में सोशल मीडिया पर एक खबर थी कि देश में पहला किन्नर ए.एस.आई. बहाल हुआ है। खबर कितनी प्रमाणिक है नहीं कहा जा सकता है। हालांकि, इनके पारंपरिक पेशे में किसी तरह की रोक लगने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है लेकिन ऐसे समुदाय के बीच जाकर इनको प्रेरित किए जाने का कार्य कई संगठन कर रहे हैं ताकि इनके मन, मस्तिष्क, क्षमता और इनकी ऊर्जा का सदुपयोग देश के विकास में किया जा सके। साथ ही इसी प्रक्रिया से ही उनके भीतर एक नया आत्मविश्वास पैदा होगा कि वे भी देश के विकास में अन्य नागरिकों की तरह अपनी भूमिका निभा सकते हैं। यह आश्चर्य ही है कि इसी देश की जमीन पर पैदा होने वाले नागरिकों को अपनी नागरिकता और अपनी पहचान बताने के लिए न्यायालयों को हस्तक्षेप करना पड़ता है। न्यायालय केवल फैसले और आदेश दे सकती है लेकिन ऐसे फैसलों से समाज और उसकी मानसिकता को नहीं बदला जा सकता है। हाँ ऐसे फैसलों से लोग सोचने और विचार करने के लिए मजबूर भले हो सकते हैं। इसलिए 'थर्ड जेंडर' समुदाय के बारे में सोचने और उन्हें देखे जाने के नजरियों में बदलाव की जरूरत है। सरकार को इस दिशा में केवल उनकी वैधानिकता ही नहीं उस समुदाय के जुड़े हर पहलू और एक सामान्य नागरिक पर लागू होने वाले सभी कानूनों में इस समुदाय को अलग पहचान के साथ सम्मिलित करना चाहिए ताकि इस समुदाय को यह महसूस हो कि यह देश और समाज उनके बारे में भी सोचता है और वे जैविक रूप से भले ही अलग हों लेकिन यह समाज और देश उतना ही उनका

भी है जितना सामान्य नागरिकों का है। जैविकीय आधार पर अलग होने का दंश उन्हें सामाजिक उपेक्षा के रूप में न झेलना पड़े इसके लिए अभी कई प्रयासों की जरूरत है। अभी बहुत सारे ऐसे कानून और अधिकार प्राप्त करने के नियमों में इस समुदाय के लिए अलग से कोई व्यवस्था नहीं की गई है इसमें तेजी से प्रयास लाने की आवश्यकता और साथ ही इनके साथ व्यवहार के स्तर पर समाज को बदलाव लाने की जरूरत है।

****

खण्ड IV

मानव अधिकार और शिक्षा पर केन्द्रित आलेख

शिक्षा और हाशिए का समाज

भवानी शंकर*

बीज शब्द : शिक्षा का अधिकार, हाशियाकरण, शिक्षा नीति, अभिवंचित समूह

सारांश

वर्तमान समय में शिक्षा के सामाजिक लक्ष्य एवं औपनिवेशिक काल से अब तक हुए ऐतिहासिक बदलावों के संदर्भ में उसका विश्लेषण आवश्यक है। लॉर्ड मैकाले द्वारा 1835 में प्रारंभ की गई अंग्रेजी शिक्षा नीति ने शुरु से समाज को दो वर्गों में स्पष्ट रूप से विभाजित किया। भारत में 'शिक्षा के अधिकार' को लेकर लंबे संघर्ष का इतिहास है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात संविधान निर्माताओं तथा नीति निर्धारकों ने 'सबके लिए शिक्षा' के महत्व को बार–बार रेखांकित किया। बावजूद इसके, अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ी जाति, अल्पसंख्यक तथा महिलाओं का एक बड़ा वर्ग शिक्षा प्राप्ति के लक्ष्य से अब तक दूर है। 'शिक्षा के अधिकार' कानून के लिए हाशिए के लोगों के संघर्ष एवं अभिवंचित समुदायों के समक्ष पैदा हो रही चुनौतियों का भी तथ्यपरक विश्लेषण अत्यंत प्रासंगिक है। साथ ही, वर्तमान शैक्षणिक परिदृश्य में आवश्यक बदलावों की मांग समय सापेक्ष है।

मानव समाज के विकास का रास्ता शिक्षा से शुरू होता है। अगर समाज का हर एक व्यक्ति शिक्षित होगा तो वह अपने अतीत से सीखकर वर्तमान को बेहतर बनाते हुए भविष्य को संवार सकता है। इसीलिए शिक्षा को व्यक्तित्व निर्माण तथा सामाजिक व आर्थिक प्रगति का पैमाना भी माना जाता है। गौर करें तो भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली अधिकांशतः औपनिवेशिक मॉडल पर ही आधारित है। जिस गति से भारत के सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक परिदृश्य में बदलाव आया है उसे देखते हुए यह आवश्यक है कि हम देश की शिक्षा प्रणाली की पृष्ठभूमि, उद्देश्य और चुनौतियों पर गंभीरता से मंथन करें। वर्ष 1835 में जब शिक्षा प्रणाली की नींव रखी गयी थी तब लार्ड मैकाले ने कहा था कि अंग्रेजी शिक्षा का उद्देश्य भारत में सरकारी कार्य के लिए भारत के विशिष्ट लोगों को तैयार करना है। इस शिक्षा प्रणाली ने उच्च वर्गों को भारत के शेष

*सहायक प्रोफेसर, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय, भोपाल

समाज में अलग रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ब्रिटिश समाज में बीसवीं सदी तक यह मानना था कि श्रमिक वर्ग के बच्चों को शिक्षित करने का तात्पर्य है उन्हें जीवन में अपने कार्य के लिए अयोग्य बना देना। ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली ने निर्धन परिवारों के बच्चों के लिए भी इसी नीति का अनुपालन किया। लगभग दो सौ वर्षों की भारतीय शिक्षा प्रणाली के विश्लेषण से यही निष्कर्ष निकालता है कि यह शिक्षा मुख्यतः नगर तथा उच्च वर्ग केंद्रित थी। इसकी खामियों को पहली दफा गाँधी जी ने 1917 में गुजरात एजुकेशन सोसायटी के सम्मेलन में उजागर किया था तथा शिक्षा में मातृभाषा के स्थान और हिंदी के पक्ष को राष्ट्रीय स्तर पर सामने रखा था।

स्वतंत्रता के बाद संविधान निर्माताओं ने राष्ट्र के पुननिर्माण तथा सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया। आज़ादी के बाद भारत में कई स्तरों पर शिक्षा के प्रचार–प्रसार के अनेक उपाय किए जाते रहे। स्वतंत्र भारत में शिक्षा की स्थिति के आकलन हेतु राधाकृष्णन और कोठारी आयोग व समितियों का गठन हुआ और उनके द्वारा दिए गए कुछ महत्वपूर्ण सुझावों व सिफारिशों को लागू भी किया गया। उनके फलस्वरूप यहाँ की शिक्षा में गुणात्मक बदलाव भी आया लेकिन यह बदलाव काफी नहीं है और टिकाऊ भी नहीं।

भारत में वर्षों से एक बड़ा वर्ग (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े अल्पसंख्यक आदि) शिक्षा से हमेशा महरूम रहा। वह हमारे समाज में प्रत्येक स्तर पर शोषण का शिकार होता रहा। हमारे देश की सामाजिक बनावट में हमेशा इस समाज को सामंती शक्तियों का शिकार होना पड़ा। भारत की संपूर्ण आबादी में एक तिहाई से भी ज्यादा की हिस्सेदारी वाला यह समाज लाचारी में जीता रहा और शिक्षा जैसी बुनियादी सुविधाओं से कोसों दूर रहा। इतिहास पर नज़र डालें तो भारत में शिक्षा केवल एक वर्ग (संपन्न) तक ही सीमित रही। परिणामतः हमारे समाज का एक बड़ा तबका विकास से कट गया।

हमने एक ऐसी दुनिया रची जिसमें एक बड़े और महत्वपूर्ण तबके को जगह ही नहीं मिली। यह तबका हमेशा हाशिए पर ही रहा। शिक्षा न होने की वजह से यह समाज पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही चीज़ को ढोता रहा। जो काम माता–पिता करते थे वही व्यवसाय बच्चे को भी विरासत में मिल जाता था। जो सामजिक ढाँचा था उसमें इस वर्ग को हमेशा पीड़ा और उपहास ही झेलना पड़ा। नतीजा यह हुआ कि बड़ी संख्या में होने पर भी यह वर्ग हमेशा उपेक्षित रहा और मुट्ठी भर लोग इन पर अधिकार जमाते रहे। शुरू से इस वर्ग को शिक्षा से वंचित किया गया। हालाँकि अंग्रेजों के ज़माने में इनको कुछ अधिकार मिले और मुक्त शिक्षा व्यवस्था लागू की गयी, जिससे इनकी शिक्षा में भी सुधार हुआ।

भारत में अगर इन तबकों (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जाति, पिछड़े अल्पसंख्यक आदि) की पूरी जनसँख्या में प्रतिनिधित्व की बात करें तो देश भर में दलितों की कुल आबादी लगभग 25 करोड़ 9 लाख 61 हजार 940 है। 2011 की जनगणना के अनुसार देश की कुल आबादी में 24.4 फीसदी हिस्सेदारी केवल दलितों की है। इनमें अनुसूचित जाति की संख्या 16 करोड़ 66 लाख 35 हज़ार 700 है जो कुल आबादी का लगभग 16.2 फीसदी है। वहीं अनुसूचित जनजाति का प्रतिनिधित्व 8.2 फीसदी है। इतनी बड़ी आबादी वाला यह समाज हमेशा उपेक्षा और शोषण का शिकार बना रहा, इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण उनकी अशिक्षा ही है। जो वर्ग सुविधा संपन्न और प्रभावशाली था उसने इस वर्ग को दबाकर रखा। उसे हर उस चीज़ से दूर रखा जिससे इस समझ का विकास हो सकता था।

आज़ादी के बाद इस बात को स्वीकार किया गया और इस दिशा में नीति भी बनी कि हाशिए के समाज को विशेष अधिकार दिए जाएँ जिससे इनको शिक्षा का अवसर मिले और इनकी स्थिति में सुधार हो सके। आज़ाद भारत में शिक्षा के महत्व को समझते हुए भारतीय संविधान में हाशिए के समाज (अनुसूचित जातियों/जनजातियों व अल्पसंख्यकों आदि) के लिए शिक्षण संस्थाओं आदि में आरक्षण की व्यवस्था की गयी। पिछड़ी जातियों को भी इन सुविधाओं के अंतर्गत लाने का प्रयास किया गया। इस व्यवस्था से स्थिति में सुधार भी आया लेकिन यह सवाल भी उठने लगा की क्या आरक्षण देने मात्र से ही इस समाज का विकास हो जाएगा? या सरकार को यह जिम्मेदारी लेनी पड़ेगी कि इन्हें कैसे कौशलपूर्ण शिक्षा दी जाए जिससे सही अर्थों में इनका विकास हो सके। आज भी हमारी साक्षरता दर तथा शिक्षा संस्थाओं की संख्या में वृद्धि हुई है परंतु अब भी 40 फीसदी से अधिक की आबादी साक्षरता से कोसों दूर है।

क़ानूनी प्रावधानों की बात करें तो भारतीय संविधान की धाराओं 15(4), 45 और 46 में विशेष रूप से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जाति के बच्चों के लिए शिक्षा उपलब्ध कराने की बात कही गयी है। धारा 15(4) में सामाजिक तौर पर पिछड़े वर्गों और अनुसूचित जाति, अनुसूचित जाति के पक्ष में कई प्रावधान किए गए हैं (राफोग्रु, 2010)। धारा 45 में कहा गया है कि सरकार 14 वर्ष तक के सभी बचों को फ्री और अनिवार्य शिक्षा मुहैया करवाए। इसके अलावा भी बहुत से संवैधानिक प्रावधान किए गए जिससे इन वर्ग के बच्चों को शिक्षा में आगे बढाया जा सके। साथ ही साथ कमजोर और पिछड़े वर्गों के बच्चों के लिए कई तरह की छात्रवृत्तियों को भी दिया जा रहा है जिससे उनको पढने में मदद मिल सके। मसलन निजी स्कूलों में पढ़ रहे अनुसूचित जाति, जनजाति के बच्चों के लिए छात्रवृत्ति, मेरिट छात्रवृत्ति, लड़कियों के लिए अलग से छात्रवृत्ति, शिक्षा ऋण आदि अनेक ऐसी सुविधाएँ सरकार द्वारा दी जा रही हैं जिनसे हाशिए के समाज को लाभ मिल सके, वे पढ़–लिखकर आगे बढ़ सके। इन सुविधाओं

से स्कूलों में बच्चों के नामांकन में भी वृद्धि दर्ज की गयी है लेकिन यह अपर्याप्त है।

अनिवार्य शिक्षा (आरटीई) अधिनियम और हाशिए के लोग

भारत सरकार ने निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा (आर.टी.ई.) अधिनियम 2009 को देश में लागू किया। इसके तहत 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की गयी। शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009 के प्रावधानों को समझने के लिए देश की प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था को समझना होगा। सन 2010–11 में किए गए एक सर्वे के अनुसार देश में लगभग 19 फीसदी सरकारी स्कूल हैं लेकिन सरकारी स्कूलों में ज्यादा खर्च, सुविधाओं तथा अध्यापकों के उच्च वेतन के बावजूद निजी स्कूलों की तुलना में शिक्षा स्तर अच्छा नहीं है। सरकारी स्कूलों के ज्यादातर बच्चों को कक्षा के अतिरिक्त निजी पढ़ाई करनी पड़ती है। यहाँ तक की गाँवों में सरकारी स्कूल के बावजूद अभिभावक अपने बच्चों को निजी स्कूलों में भेजना पसंद करते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण सरकारी स्कूलों में पढाई और सुविधाओं का न होना है। यहाँ एक बात और जरुरी है कि सुप्रीम कोर्ट के निर्देशों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा अधिकार क़ानून में प्रावधान किया गया है कि देश में सभी को समान शिक्षा मिले यानी कॉमन स्कूल सिस्टम (सीएसएस) की बात कही गयी। इसलिए क़ानून में यह प्रावधान किया गया कि निजी स्कूलों में 25 फीसदी सीटें कमज़ोर वर्ग के बच्चों के लिए आरक्षित रहेंगी। इसके लिए सरकार उन्हें प्रति बच्चा 19 हजार रुपये तक की वार्षिक सहयोग भी देगी। लेकिन आज निजी स्कूल इन कानूनों से अपने को मुक्त मानते हैं।

भारत ने शिक्षा के अधिकार को लेकर एक लम्बा सफ़र तय किया है, इसीलिए लोगों की बुनियादी शिक्षा में बदलाव को लेकर बड़ी उम्मीदें भी थीं, लेकिन इस अधिनियम के लागू होने के इतने वर्षों के बाद भी अपेक्षित परिवर्तन नहीं हुए हैं। यह लक्ष्य रखा गया था कि 2015 तक देश के 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को बुनियादी शिक्षा से जोड़ दिया जाएगा और इस दिशा में आ रही सभी दिक्कतों को दूर कर लिया जाएगा। लेकिन यह समय सीमा बीत जाने के बाद भी अभी तक ऐसा नहीं हो सका है। आज भी हम लक्ष्य से बहुत दूर हैं। अभी भी देश के लगभग 90 फीसदी स्कूल शिक्षा अधिकार कानून के मानकों को पूरा नहीं करते हैं। केवल 45 फीसदी स्कूल ही प्रति 30 बच्चों पर एक शिक्षक के अनुपात का पालन करते हैं। पूरे देश में अभी भी लगभग 7 करोड़ से भी ज्यादा बच्चे प्राथमिक शिक्षा से महरूम हैं। डाइस रिपोर्ट 2013–14 के अनुसार शिक्षा के अधिकार कानून के उपबंधों को पूरा करने के लिए अभी भी 12 से 14 लाख शिक्षकों की जरूरत है।

शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के बाद भी बच्चों को कई किलोमीटर की दूरी तय करके स्कूल जाना पड़ता है। ऐसे इलाकों में आज भी सरकारी स्कूलों की

कमी है नतीजतन बच्चों को निजी स्कूलों में ही जाना पड़ता है। निजी स्कूलों की हालत यह है कि गुणवत्ता के नाम पर अभिभावकों से मोटी फीस वसूली जाती है जो आम आदमी के लिए भर पाना मुश्किल है। ऐसे और भी बहुत से कारण हैं जो वंचित समूहों के बच्चों को शिक्षा से दूर करते नज़र आते हैं। वर्तमान में शिक्षा पर भारी राशि खर्च करने के बाद भी शिक्षा प्रक्रिया गुणात्मक शिक्षा के लक्ष्य से कोसों दूर है। इन कानूनों से छात्रों के नामांकन में जरुर इज़ाफा हुआ है लेकिन बच्चों के शिक्षण के अध्ययन स्तर में वृद्धि तुलनात्मक रूप से बहुत कम है। यहाँ पर यह सवाल उठता है कि इतने कानूनों के बाद भी उच्च शिक्षा में वंचित समाज के लोगों की भागीदारी क्यों नहीं बढ़ पा ही है? आकंड़ों पर गौर करें तो भारत में उच्च शिक्षा में सकल नामांकन अनुपात यानी ग्रॉस इनरोलमेंट रेशियो (जीईआर) में विगत वर्षों में वृद्धि हुई है। वर्ष 2011–12 में यह अनुपात 20.8 फीसदी था जो 2015–16 में बढ़कर 24.5 फीसदी हो गया। यही अनुसूचित जाति के जीईआर पर बात करें तो 2011–12 में 14.9 और 2015–16 में 19.9 फीसदी रहा। वहीं अनुसूचित जनजाति की दर क्रमशः 11 और 14.2 फीसदी रही (Education at a Glance 2010)। यानी आबादी के हिसाब से नामांकन आज भी बहुत कम है।

वंचित वर्ग के बच्चों की शिक्षा में मुख्य बाधाएँ

शिक्षा का प्रसार एक राजनैतिक/आर्थिक प्रक्रिया है। औपनिवेशिक काल में शिक्षा का विकास इस बात का पर्याप्त सबूत देता है। आज़ादी के बाद काफी दशकों तक दूर–दराज़ के गाँव और जनजातीय बस्तियों सहित बहुत से इलाकों में शैक्षिक सुविधाएँ उपलब्ध नहीं करायी गयी थीं। सरकार ने इसका कारण संसाधनों की कमी बताया था। हालाँकि राजनैतिक कारण भी समान रूप से दोषी थे जिसके परिणामस्वरुप सार्वजनिक सुलभता के लिए ज़रूरी पैमाने पर विस्तार और वास्तविक प्रावधानों के बीच बड़ी खाई बन गयी। भारतीय शिक्षा व्यवस्था में जाति, वर्ग और लिंग आधारित सामाजिक संरचना भी इस स्थिति के लिए जिम्मेदार है। धीरे–धीरे स्थिति में सुधार तो हुआ लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। इसके पीछे मुख्य कारण यह रहा कि उनकी संख्या के अनुसार सुविधाएँ नहीं मुहैया की गईं।

- आज भी दलित और सामाजिक तौर पर पिछड़े वर्गों के इलाकों में पर्याप्त संख्या में स्कूल नहीं हैं।
- स्कूली स्तर पर अभी भी सामाजिक भेद–भाव कायम है जिससे उनकी शिक्षा और मनोस्थिति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है।
- स्कूलों में निम्नस्तर के संसाधन हैं। अपर्याप्त शिक्षक और शिक्षण सामग्री की उपलब्धता नहीं है।

ऐसे कई कारण आज भी मौजूद हैं जिनकी वजह से हाशिये के लोग तमाम प्रावधानों के बावजूद गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से महरूम हैं। भारतीय सामाजिक संरचना में जाति एक बहुत प्रभावी कारक है। आज भी स्कूलों में दलित वर्ग के बच्चों के साथ भेद–भाव कायम है। हमने क़ानूनी तौर पर तो ऐसी कुरीतियों पर प्रतिबन्ध लगाया है लेकिन दुर्भाग्यवश सामाजिक तौर पर कमोबेश वे आज भी कायम है।

दूसरी समस्या भाषाई भेद–भाव की है। भारत में भाषाई विविधता बड़े पैमाने पर है। अलग–अलग समाज की अपनी भाषाएँ हैं। जनजातीय इलाकों में तो भाषा की वजह से बहुत बच्चे शिक्षा से दूर हैं। उनकी अपनी भाषा में शिक्षा नहीं मिलने की वजह से स्कूलों से उनका मोहभंग हो रहा है। प्राथमिक स्तर पर भाषाई अल्पसंख्यकों को उनकी अपनी भाषा के माध्यम से शिक्षित करने के महत्व को नई नीति दस्तावेजों और संवैधानिक प्रावधान (350ए) के होने के बाद भी व्यावहारिक रुप से कोई भी शिक्षा आदिवासियों की अपनी भाषा में नहीं है। यहाँ तक कि इसमें मिलियन से ज्यादा लोगों द्वारा बोली जाने वाली संथाली, भीली, गोंडी शामिल है (नम्बिसन, 2000)। प्राथमिक स्तर पर भाषा के सवाल के महत्व की तरह कई अध्ययनों में इशारा किया है लेकिन इसके बाद भी जनजातीय छात्रों और उनके शिक्षकों में भाषाई तालमेल नहीं बन पा रहा है।

भाषा की शिक्षा भी संशय की मानसिकता में की जाती है। भाषिक कौशलों पर समुचित ध्यान न देने से अभिव्यक्ति और संचार की समस्याएं खड़ी होती हैं। भाषा एक अध्ययन विषय के रूप में और शिक्षा के माध्यम के रूप में किस तरह प्रयुक्त हो, इसको लेकर स्पष्ट और प्रभावी नीति नहीं विकसित हो सकी है। यह समाज के व्यापक हित में होगा कि हम न केवल शिक्षा के माध्यम को परिचित भाषा में ढालें, बल्कि भाषा शिक्षण की पद्धति को भी वैज्ञानिक ढंग से लागू करें (मिश्र गिरीश्वर, 2018)। इसलिए यह ज़रूरी है कि प्राथमिक शिक्षा व्यवहारिक तौर पर सम्बंधित समाजों की भाषाओं में दिया जाए जिससे उनका समुचित विकास हो सके और वे शिक्षा के प्रति आकर्षित हों।

दुर्भाग्यवश शैक्षिक संस्थानों में सरकार द्वारा इन वर्गों के लिए कुछ सीटें तो अरक्षित कर दी गयी हैं लेकिन ऐसी कोई व्यवस्था नहीं बनाई गई कि जो इस बात का आकलन भी करे कि क्या ये सीटें भरी जा रही हैं? आरक्षित सीटों पर उस वर्ग के बच्चों की पहुँच हो पा रही है या नहीं? यहाँ तक पहुँचने में उनको किस तरह की कठिनाईयों का सामना करना पद रहा है? आदि आदि। इन प्रश्नों का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण ज़रूरी है। इसी से जुड़ी दूसरी बात यह है कि वर्तमान में हम जो पारंपरिक शिक्षा दे रहे हैं वह कहाँ तक सफल है? उसका परिणाम क्या है? खासकर हाशिये के समाज के संदर्भ में? आज भी हम ऐसी शिक्षा दे रहे हैं जो पारंपरिक है। सोचने वाली बात यह है कि जो शिक्षा दी जा रही है उसका उपयोग कहां तक हो पा रहा है?

वर्तमान शिक्षा–प्रणाली अपने दायित्वों के निर्वाह में सफल नहीं हो पा रही है। इसमें बदलना जरूरी हो गया है। इस दृष्टि से सबसे पहली आवश्यकता शिक्षा को पढने़ वालों की रुचियों के अनुकूल बनाने की है। फिर उसका पाठयक्रम और विषयों का चयन ऐसा होना चाहिए जो हमें जीवन–व्यवहारों में दक्ष बना सके। आजकल कुछ विषय केवल परीक्षा पास करने के लिए ही पढ़ाए जाते हैं चाहे वे जीवन–व्यवहार के लिए उपयोगी और छात्र की रुचि के अनुकूल हों या न हों। ऐसे विषयों के बारे में सरकार को गंभीरता से सोचने की ज़रूरत है। सरकार ने ऐसे कौशलपूर्ण शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कई उपाय किए हैं। अलग–अलग स्तरों पर सरकार द्वारा यह प्रयास जारी है कि बच्चों को रोजगारपरक शिक्षा दी जाए जिससे वे आगे जाकर अपनी जीविका चला सकें। शिक्षा को केवल डिग्री लेने तक ही सीमित न किया जाए। मुख्यरूप से हाशिए के समाज की शिक्षा को सुदृढ़ करने की ज़रूरत है। आज भी सामाजिक भेदभाव और आर्थिक कारणों से दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यक वर्ग के बच्चे उच्च शिक्षा में उस सीमा तक नहीं पहुँच पा रहे हैं जहाँ उन्हें होना चाहिए। हर वर्ष उच्च शिक्षण संस्थानों से डिग्री लेकर एक विशाल फौज निकल रही है जो बेरोजगार हैं। इसका प्रमुख कारण पारंपरिक शिक्षा है। इसलिए अब यह ज़रूरी हो गया है कि पारंपरिक शिक्षा के साथ कौशलपूर्ण शिक्षा पर जोर दिया जाए जिससे इन शिक्षित युवाओं को रोजगार के लिए भटकना न पड़े। आज भी जो दलित, आदिवासी और पिछड़े हैं उनकी शिक्षा में बुनियादी बदलाव की ज़रूरत है तभी 'सबका साथ सबका विकास' जैसी व्यापक संकल्पना को साकार कर सकेंगे और एक ऐसे भारत का निर्माण कर सकेंगे, जिसका सपना हमारे संविधान निर्माताओं ने देखा था।

संदर्भ

- **265th Report:** Demands for Grants 2015-16 (Demand No. 60) of the Department of Higher Education", Standing Committee on Human Resource Development, April 23,2015, http://164.100.47.5/newcommittee/reports/EnglishCommittees/Committee%20on% HRD/265.pdf 19 Demands for Grants of Department of Higher Education,

- All India Survey on Higher Education 2012-13 (Provisional)", Ministry of Human Resource Development, 2015,http://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/statistics/AISHE2012-13F.pdf.

- Education at a Glance 2010, Organisation for Economic Cooperation and Development Indicators, 2010, http://www.oecd.org/education/skills-beyond-school/45926093

- मिश्र गिरीश्वर, शिक्षा की भाषा का सवाल, आलेख दैनिक जागरण

(https://www.jagran.com/editorial/apnibaat-the-question-of-the-language-of-education-13261819.html)

- वी, रामचंद्रन (सं.) 2003. गेटिंग चिल्ड्रन बैक टू स्कूल : केस स्टडी इन प्राइमरी एजुकेशन, सेज, नई दिल्ली
- तनेजा, शिवानी, त्रिपाठी, भ.(सं.). शिक्षा का उद्देश्य ,शैक्षणिक संदर्भ अंक 34, एकलव्य, भोपाल
- जोगदण्ड, पी. जी. 2000 न्यू इकोनोमिक पॉलिसी एंड दलिट्स, जयपुर : रावत पब्लिकेशन.
- आधारपत्र, राष्ट्रीय फोकस समूह, NCERT नई दिल्ली, 2010
- गुप्ता, एस.पी. 2015. भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद

****

शिक्षा, मानवाधिकार और गांधी

राजेश कुमार शर्मा*

बीज शब्द : राष्ट्रीय आंदोलन, महात्मा गांधी, शिक्षा प्रणाली, सर्वव्यापीकरण, नई तालीम

सारांश

गांधी ने राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली की तर्क संगत ढंग से आलोचना प्रस्तुत की। हंटर कमीशन के समक्ष अपने विचार प्रस्तुत करते हुए उन्होंने शिक्षा के सर्वव्यापीकरण पर बल दिया। वे शिक्षा प्राप्ति को मनुष्य के आत्मबल, आत्मसंतुष्टि तथा अपनी अधिकार प्राप्ति का साधन मानते थे। अपने रचनात्मक कार्यक्रमों के माध्यम से उन्होंने मनुष्य में मौलिकता, नैतिकता, समानता, मातृभाषा, आत्मनिर्भरता, चरित्र–निर्माण, बौद्धिकता इत्यादि गुणों के संवर्द्धन पर ध्यान दिया। उन्होंने मानवता के समुचित विकास में' नई तालीम' नामक शिक्षा प्रणाली को भी प्रासंगिक माना जिसका उद्देश्य सबको समान रूप से शिक्षा देकर ऐसी न्यायोचित सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना था, जिससे साधन संपन्न और साधनहीन, श्रमिक एवं बुद्धिजीवी तथा शहरी एवं ग्रामीण के बीच की खाई को पाटा जा सके और शिक्षा के प्रश्न को मानवाधिकार के साथ जोड़ा जा सके।

"शरीर, मन तथा आत्मा का सर्वांगीण विकास ही शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य है।" – महात्मा गांधी

शिक्षा मानवाधिकारों का ज्ञान प्राप्त करने, समझने, आत्मसात करने का एकमात्र साधन हैं। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का अनु. 26 मानव मात्र के लिए शिक्षा के अधिकार की व्यवस्था करता है।

अनु. 26(1) के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार हैं। शिक्षा कम से कम प्रारम्भिक और बुनियादी अवस्था में निःशुल्क होगी। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य होगी।

अनु. 26(2) शिक्षा का उद्देश्य होगा मानव के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और मानव अधिकारों तथा बुनियादी स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की पुष्टि।

***निदेशक, नेहरू अध्ययन केन्द्र एवं एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**

अनु. 26(3) माता–पिता को सबसे पहले इस बात का अधिकार देता है कि वे चुनाव कर सकें कि किस किस्म की शिक्षा उनके बच्चों को दी जाएगी।[1]

यू.डी.एच.आर. की घोषणाएं राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के शिक्षा के दर्शन को अभिव्यक्त करती है। गांधी जी ने तात्कालीन परिवेश में ऐसी शिक्षा योजना प्रस्तुत की जो मानवाधिकारों की भावना से अनुप्राणित थी। उनके लिए शिक्षा का अर्थ है स्वयं को अथवा आत्मा को जानना तथा यह ईश्वर, सत् और सत्य को जानने के समकक्ष है। इस प्रकार वे धार्मिकता एवं आत्मानुभूति में सम्बंध स्थापित करना चाहते थे। वास्तविक शिक्षा चरित्र निर्माण करती है, केवल अक्षर ज्ञान नहीं देती। यह तथ्य और आंकड़ों को इकट्‌ठा करने या बहुत सी पुस्तकें पढ़ने या परीक्षाएं पास करने का भी नाम नहीं, अपितु इसका सार तत्त्व मनुष्य के चरित्र का निर्माण करना है। यह शिक्षा 'हृदय' की शिक्षा है न कि 'मस्तिष्क' की। यह शिक्षा का अपमान है कि हम सिर्फ जीवनयापन की कला तक ही इसे सीमित रखें क्योंकि इसका प्रमुख उद्देश्य आत्मा की मुक्ति है या मोक्ष प्राप्त करना है। इस प्रकार शिक्षा गांधी के अनुसार मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास की शिक्षा है जिसमें उसका शरीर, मन तथा आत्मा सभी सम्मिलित हैं।[2]

प्लेटो की तरह महात्मा गांधी का भी यह मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य आत्मा को उच्च बनाना है। चरित्र–निर्माण, आत्मज्ञान और आत्म–संतुष्टि सभी आत्मा से सम्बंधित गुण हैं, ऐसा करने पर ही मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में सम्बंध स्थापित हो पाएगा और एक सम्पूर्ण विकास की दिशा में हम बढ़ पाएंगे। प्रसिद्ध विचारक इमानुअल काण्ट मानते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्यों को पूर्ण रूप से मनुष्य बनाना और अपनी अस्मिता को स्थापित करना हैं। महात्मा गांधी इस बात में काण्ट से सहमत हैं और इस प्रकार से अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त न करने से हम आत्मज्ञान से भी वंचित रह जाते है और एक स्तर तक अमानीवय भी बन जाते हैं।[3]

गांधी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली की तर्क संगत आलोचना की। 9 जनवरी 1920 को हंटर कमीशन के समक्ष अपने तर्क को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा कि भारत की शिक्षा पद्वति पूर्णतया निराशाजनक है और अच्छे नागरिकों का निर्माण करने में विफल है। उन्होंने इसके दो प्रमुख कारण बतलाए –

1. स्कूलों में किसी भी प्रकार की नैतिक और धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती है।

2. शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है।[4]

महात्मा गांधी ने रचनात्मक कार्यक्रम में भी शिक्षा को महत्व दिया। उनकी शिक्षा मौलिकता, नैतिकता, समानता, मातृभाषा, आत्मनिर्भरता, चरित्र निर्माण, बौद्धिकता इत्यादि से युक्त थी। इन सभी गुणों से भी बढ़कर उनकी शिक्षा योजना

'मानवता' के गुण से युक्त थी। गांधी ने कभी भी एक शिक्षा शास्त्री की तरह अपने शिक्षा सम्बंध विचार प्रचारित करने की कोशिश नहीं की। उनकी शिक्षा योजना उनके व्यावहारिक कार्यों से अभिव्यक्त होती है।

1920 में महात्मा गांधी ने गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की। इसका ध्येय वाक्य निश्चित किया गया – ''सा विद्या या विमुक्तये'' जिसका अर्थ है– ''ज्ञान से मुक्ति मिलती है।[5]

गांधी ने 1921 में राष्ट्रीय शिक्षा के बारे में अपने विचारों को सार्वजनिक किया। उन्होंने (यंग इण्डिया, 1 सितम्बर 1921) लिखा कि उनके मत में शिक्षा की व्यवस्था दोषपूर्ण है। यह न केवल एक अन्यायी सरकार से सम्बंधित है अपितु तीन महत्वपूर्ण दृष्टियों से दोषपूर्ण है –

प्रथम, यह देशी संस्कृति के स्थान पर विदेशी संस्कृति पर आधारित है।

द्वितीय, यह हाथ और हृदय की संस्कृति की अवेहलना कर अपने आपको केवल मस्तिष्क की संस्कृति से सम्बंधित रखती है।

तृतीय, यह विदेशी माध्यम से प्रेषित की जाती है।[6]

1931 में गांधी जी ने 'टीचर्स वर्ल्ड' नामक पत्रिका को साक्षात्कार दिया। इस साक्षात्कार में उनके शिक्षा सम्बंधी विचार अभिव्यक्त हुए। उन्होंने बच्चों के शिक्षण के लिए प्रेम को सही माध्यम माना। इसमें क्षमा करना, उचित शिक्षा का उद्देश्य, भौतिकवादी वस्तुओं के प्रति लालसा को न बढाना, आध्यात्मिकता को बढाना, व्यावहारिक हस्तकला को सिखाना, घरेलू शिक्षा का महत्व, मां–बाप को भी शिक्षित करना इत्यादि शामिल हैं।[7]

1932 में गांधी जी ने यरवदा जेल में शिक्षा सम्बंधी विचारों को मूर्त रूप से लिखना आरम्भ किया। 1937 में शिक्षा प्रणाली का दस्तावेज तैयार किया जिसे 'नई तालीम' नाम दिया। नई तालीम का दूसरा नाम 'वर्धा स्कीम' था। इसका प्रकाशन उन्होंने 'हरिजन' पत्र में किया। गांधी जी ने वर्धा में 22–23 अक्टूबर 1937 को एक दिवसीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन का आयोजन किया जो उनकी अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में गांधी जी ने शिक्षा के दार्शनिक और मानवीय पहलुओं को स्पष्ट किया। उनके द्वारा प्रतिपादित 'नई तालीम' की महत्वपूर्ण विशेषताएं इस प्रकार हैं:–

1. निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा दी जाए।
2. शिक्षा के केन्द्र में हस्तकला हो।

3. शिक्षा कार्यक्रम स्वपोषित हो।

4. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

5. अहिंसा का आधार लिया जाए।

6. आदर्श नागरिक के निर्माण पर बल दिया जाए।

7. सहयोगी समुदाय का विचार ध्यान में रहे।

गांधी जी की नई तालीम सबको समान रूप से शिक्षा देकर ऐसी न्यायोचित सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना चाहती थी जिससे साधन सम्पन्न और साधनहीन, श्रमिक व बौद्विक शहरी तथा ग्रामीण के बीच गहरी खाई को पाटा जा सके और प्रत्येक व्यक्ति को आजीविका व स्वतंत्र जीवन का अधिकार मिल सके। मानवाधिकारवादी चिन्तक भी ऐसे ही समाज और शिक्षा प्रणाली का समर्थन करते हैं जिसकी वास्तविक अभिव्यक्ति गांधी के शिक्षा दर्शन में हुई है। गांधी के शिक्षा दर्शन में 'चरित्र निर्माण' पर बहुत जोर दिया गया है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि 'सफलता की कसौटी उसका स्वाश्रयी रूप नहीं है बल्कि यह देखकर सफलता का अन्दाज लगाना होगा कि वैज्ञानिक रीति से उद्योग की शिक्षा द्वारा मनुष्यत्व का पूर्ण विकास हुआ या नहीं। बिना आचार के बौद्धिक ज्ञान वैसा ही है जैसा कि खुशबूदार मसाला लगाया हुआ मुर्दा। वह देखने में तो शायद सुन्दर लगेगा लेकिन उसमें स्फूर्ति देने वाली या मनुष्य को ऊंचा उठाने वाली कोई बात नहीं होगी।[9]

स्वावलम्बन गांधी जी की शिक्षा योजना का महत्वपूर्ण आधार था। डूबी के समान गांधी भी 'कर के सीखे' (Lerarning by Daing) के महत्व पर बल देते हैं। अतः उनकी अनुशंसा है कि शिक्षा एक अनिवार्य अंग है – कुछ कार्य कुशलता सीखना।[10]

गांधी जी का मानना था कि विद्या–मन्दिरों में विद्यार्थी अव्वल दर्जे के धुनिए, कतैये और जुलाहे बनें, पहले दर्जे की कपास की खेती जानने वाले हों, उन्हें देहात के उपयोग की बढ़ईगिरी आती हो, यानी उन्हें बढ़िया चरखा बनाना आता हो, गाड़ी आदि बनाना आता हो, गाँवों के लायक सीना–पिरोना जानते हों। साहित्य और उसके आध्यात्मिक और आधुनिक अर्थों के जानकार हों, तन्दुरुस्ती के कानून जानते हों इत्यादि। आवश्यकता यह है कि इन विद्या मन्दिरों में इस तरह की शिक्षा दी जाए कि वे गाँवों की हर तरह से सेवा करने के लिए तैयार हो सकें।[11]

अगर हमारे विद्या मन्दिरों में श्रद्धावान और त्यागी शिक्षक हों, तो मेरी पक्की राय है कि वे विद्यार्थियों से भर जाएँगे।

गांधीजी की शिक्षा योजना, उसके उद्देश्य और मानवीय पक्ष की अभिव्यक्ति 13 नवम्बर 1945 को पूना में पं. जवाहर लाल नेहरू को लिखे एक पत्र से होती है। यह पत्र एक मानवाधिकारवादी चिंतक की मानवता के प्रति अभिव्यक्ति है–

1. तुम्हारी दृष्टि में हरएक इंसान की बौद्धिक, आर्थिक, राजकीय और नैतिक शक्ति कैसे विकसित हो मुख्य प्रश्न है। मेरा भी वही है।

2. और उसमें भी हरेक इंसान को ऊंचे चढ़ने का एकसा हक और मौका होना चाहिए।

3. इस दृष्टि से देखते हुए देहात की और शहर की एक ही हालत होनी चाहिए। इसलिए खाना, पीना, रहना, पहनना सब एक सा होना चाहिए। आज तो यह स्थिति पैदा करने के लिए अपने कपड़े, खुराक और मकान अपने आप पैदा करना और बनाना चाहिए।

4. इंसान जंगल में रहने के लिए पैदा नहीं हुआ है। वह समाज में रहने के लिए पैदा हुआ है। एक पर दूसरा सवारी न कर सके, यह विचार करते हुए पता चलता है कि यूनिट एक काल्पनिक देहात या ग्रुप होना चाहिए, जो स्वावलम्बी रह सके और उस ग्रुप में एक दूसरे पर अवलम्बन तो होगा ही। इस तरह सोचने से सारी दुनिया के इंसानों के संबंध का नक्शा बन जाता है।[12]

गांधी जी की शिक्षा योजना, समाज के पुनर्निमाण और विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करती है। इन सब कार्यों को पूरा करने में गांधी ने मानवता को सर्वोपरि रखा। मानव मात्र का विकास ही उनका लक्ष्य था। ज्ञान प्राप्ति का सबको समान अवसर प्राप्त होगा और सब अपनी शक्ति के अनुसार अपनी बौद्धिक शक्ति का विकास कर सकेंगे। किसी भी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं अन्य किसी बाधा के कारण किसी को ज्ञान प्राप्ति से वंचित नहीं किया जाएगा।

विज्ञान का आदर होगा, लेकिन विज्ञान का प्रयोग जन सामान्य के हित में किया जाएगा। शिक्षा सबके लिए सुलभ होनी चाहिए और ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए जिसके द्वारा व्यक्ति आर्थिक रूप से अपने पैरों पर खड़ा हो सके। अपने घर गाँव के वातावरण में ही उसे शिक्षा देने की प्रक्रिया सतत् जारी रखनी चाहिए। गांधी जी का मानना था कि प्रत्येक मनुष्य एक विभूति है। सारी मौलिक वस्तुएँ उपकरण हैं। वे मनुष्य के लिए हैं न कि मनुष्य उनके लिए।[13]

मानवाधिकार की दृष्टि में गांधी की शिक्षा योजना से व्यक्ति के विभिन्न शैक्षिक अधिकार अभिव्यक्त होते हैं–

1. 7–14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों का अनिवार्य निःशुल्क तथा व्यावसायिक प्राथमिक शिक्षा का अधिकार।
2. 'जिसे विशेषज्ञों की जरूरत हो, उनके प्रशिक्षण का खर्च भी वही उठाए' के सिद्धांत पर आधारित उच्च शिक्षा का अधिकार।
3. महिलाओं तथा शैक्षणिक रूप से पिछड़े हुए लोगों का शिक्षा से संबंधित अधिकार।
4. नागरिकों के हर वर्ग का अपनी भाषा, लिपि, सभ्यता तथा संस्कृति को सुरक्षित रखने तथा उसे विकसित करने का अधिकार।[14]

इन्हीं मानव अधिकारों की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनु. 26 में हुई है। वस्तुतः गांधी जी का शिक्षा दर्शन समानता स्वतंत्रता, बंधुत्व, स्वावलम्बन, नैतिकता चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व विकास, बौद्धिक उन्नति, परोपकार दया तथा अहिंसा जैसे गुणों से युक्त है। ऐसी शिक्षा पद्धति समाज में अहिंसक रूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला देती है। मानवाधिकारवादी दृष्टि में उनकी शिक्षा पद्धति मानव मात्र को समर्पित थी जिससे व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व का विकास हो और व्यक्ति श्रेष्ठता को प्राप्त कर सके।

श्री राधाकृष्णन के शब्दों में "किसी महान गुरु के दर्शन जगत में दीर्घकाल के पश्चात् एक बार ही होते है। कभी–कभी ऐसे गुरु के प्रादुर्भाव के बिना सदियों का समय भी बीत जाता है। ऐसा गुरु अपने जीवन से ही जगत में पहचाना जाता है। वह गुरु पहले स्वयं जीवन जीता है और बाद में दूसरों से कहता है कि उसके जैसा जीवन वे किस प्रकार बिता सकते है। गांधी ऐसे ही महान गुरु थे।''[15]

गांधी जी शिक्षा दर्शन से नैतिक –चरित्र युक्त, स्वावलम्बी, कर्त्तव्यपरायण मानव का निर्माण करना चाहते थे। ऐसे ही मानव की वर्तमान समय में आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. जैन, उर्मिला, मानव अधिकार और हम, परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, 2014, पृ.100–101
2. रिचर्डस, ग्लाइन, 'गांधीज फिलॉसोफी ऑफ एजुकेशन', ओ.यू. पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2001, पृ.2
3. दाधीच, नरेश, 'महात्मा गांधी का चिन्तन', रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2014, पृ.182
4. वही, पृ.181
5. वही,पृ.175
6. यंग इण्डिया, समाचार पत्र, 1 सितम्बर 1921
7. दाधीच, नरेश, 'महात्मा गांधी का चिन्तन', रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2014, पृ.175

8. वही, पृ.176

9. कक्कड, पुष्पा, 'समर्पण', रा.उ.मा.क.वि., जयपुर, 1969 (गांधी शताब्दी वर्ष), पृ.55–56

10. लाल, बसन्त कुमार, 'समकालीन भारतीय दर्शन', मोतीलाल बनारसीलाल प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ.193

11. गांधी, महात्मा, 'प्राथमिक शिक्षा के मकसद', मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ.193

12. गांधी के कुछ पत्र (संकलित), समर्पण पत्रिका, रा.उ.मा.क.वि., जयपुर, 1969 (गांधी शताब्दी वर्ष), पृ.141–142

13. पाण्डेय, प्रदीप कुमार, 'गांधी का आर्थिक एवं सामाजिक चिंतन', हिन्दी माध्यम कार्यन्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2011, पृ.29

14. गर्ग, पूनम, 'गांधी की विचारधारा पर पश्चिम का प्रभाव हिन्दी मा. कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ.73

15. कुमार, श्रीमती सुषमा, 'गांधी के सिद्धांत' (लेख), समर्पण पत्रिका, रा.उ.मा.क.वि., जयपुर, 1969 (गांधी शताब्दी वर्ष), पृ.18

****

विकास का अधिकार सभी दूसरे मानवाधिकारों के प्रति सम्मान का मापदंड है।

—कोफी अन्नान

मानवाधिकार शिक्षा एवं संवेदीकरण

फ़रहानाज़ खान*

बीज शब्द : मानवाधिकार शिक्षा, लक्ष्य, संवेदीकरण, चुनौती

सारांश

मानवाधिकारों की शिक्षा हमें सार्वभौमिक मानवाधिकार संस्कृति के निर्माण एवं उसके व्यापक लक्ष्य में मानव अधिकारों की समझ, कौशल और मूल्यों को विकसित एवं उसके प्रति संवेदनशील करना सिखाती है। मानवाधिकारों के अर्थ से रूबरू होते हुए उसके लक्ष्यों, भारतीय संविधान में उसके प्रावधानों एवं नागरिकों को प्रदत्त मूलभूत अधिकारों का विश्लेषण व्यापक रूप से करना आवश्यक है। साथ ही, मानवाधिकार की शिक्षा एवं संवेदीकरण के अंतर्संबधों को स्पष्ट करते हुए इस दिशा में कार्य कर रहे कार्यकर्ताओं से परिचित होना, उनकी कार्य पद्धति एवं उनकी चुनौतियों को भी समझना आवश्यक है।

प्रस्तावना

हमारे पास जन्म से मरण तक कई अधिकार दिए जाते हैं और जिनका हम उपयोग करते हैं। हम जिस राष्ट्र में रहते हैं उस का भी यह कर्तव्य है कि वह हमारे इन अधिकारों की रक्षा करें ताकि उस राष्ट्र में रहने वाले सभी नागरिक उन अधिकारों का उपयोग अपने और समाज के हित में कर सकें। राष्ट्र के संविधान और संवैधानिक उसूलों के अनुसार प्रत्येक नागरिक को कुछ मौलिक अधिकार दिए जाते है इसके अलावा मानवाधिकार उसके पास होते हैं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मानव समाज का और समाज मानव का एक अभिन्न अंग है इसी कारणवश समाज का विकास मानवजाति के विकास पर निर्भर है। मानवजाति का सर्वांगीण विकास ही समाज और समाज के अवयवों को विकास के नए आयामों तक पहुँचा सकता है। विकास की इसी प्रक्रिया के लिए यह आवश्यक है कि मानवजाति को ऐसे अधिकार दिए जाएं जिनका वह सरलता और सुगमता के साथ उपयोग करके अपने रास्ते में आने वाली बाधाओं को दूर कर सकें ओर अपना और समाज का कल्याण कर सकें। मानवााधिकार

*सहायक प्रोफेसर, अल्पाइन कॉलेज, उज्जैन

की अवधारणा का आधार ही मनुष्य के उन मौलिक अधिकारों की व्याख्या करना है जिसे वह अपनी और समाज की उन्नति में उपयोग कर सके ।

मानवाधिकार का अर्थ

मानव के वे अधिकार जो उसे जन्म से स्वतः ही प्राप्त होते हैं, मानव अधिकार कहलाते हैं।

मानवाधिकार वे मापदंड हैं जो व्यवहार के मानकों को स्पष्ट करते हैं। एक इंसान होने के नाते ये वे मौलिक अधिकार हैं जिनका प्रत्येक व्यक्ति स्वाभाविक रूप से हक़दार है। यह अधिकार कानून द्वारा संरक्षित हैं।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों को व्यापक रूप से वर्गीकृत किया गया है:

- **नागरिक और राजनैतिक अधिकार:**

  यह अधिकार व्यक्ति की स्वायत्रता को प्रभावित करने वाले कार्यों के संबंध में सरकार की शक्तियों को सीमित करता है। यह लोगों को सरकार में भागीदारी और कानून के निर्धारण में योगदान करने का मौक़ा देता है।

- **सामाजिक अधिकार:**

  प्रत्येक देश की सरकार अपने सभी नागरिकों की भलाई को सुनिश्चित करने की उम्मीद करती है। प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है।

- **जीवन का अधिकार**

  प्रत्येक व्यक्ति के पास अपना स्वतंत्र जीवन जीने का जन्म सिद्ध अधिकार है।

- **उचित परीक्षण का अधिकार**

  प्रत्येक नागरिक को निष्पक्ष न्यायालय द्वारा निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार है। इसमें उचित समय के भीतर सुनवाई, जनसुनवाई और वकील के प्रबंध आदि के अधिकार भी शामिल हैं।

- **सोच विवेक और धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार:**

  प्रत्येक व्यक्ति को विचार और विवेक की स्वतंत्रता है वह अपनी इच्छा से धर्म को चुन सकता है और उसका पालन कर सकता है और यदि वह इसे किसी भी वक्त बदलना चाहे तो बदल सकता है ।

- **दासता से स्वतंत्रता:**

  कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरूद्ध दास या गुलाम

नहीं बना सकता, हालांकि दुनिया के कई हिस्सों में आज भी यही प्रथा है, जिसके विरूद्व कार्य किया जा रहा है

- **अत्याचार से स्वतंत्रताः**

  अंतरराष्ट्रीय कानून के तहत यातना देने पर प्रतिबंध है। हर व्यक्ति यातना ना सहने के लिए स्वतंत्र है।

- **अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकारः**

  हर इंसान को स्वतंत्र रूप से बोलने और अपनी बात रखने का अधिकार है हालांकि इस अधिकार में कुछ सीमा भी है।

सरकार किसी जाति, पंथ, धर्म, लिंग,रंग, संस्कृति और आर्थिक या सामाजिक स्थिति से ऊपर उठकर इन अधिकारों को प्रदान करती है। हालांकि कभी कभी इनका उल्लंघन किया जाता है। इसलिए लोगों को अपने मानवाधिकारों के किसी भी उल्लंघन के खिलाफ स्वयं आवाज़ उठाना पड़ेगा।

मानवाधिकारों के लक्ष्य

मानवाधिकार शिक्षा मानव अधिकारों और शिक्षा दोनों के बारे में सिखाती है।

इसका लक्ष्य लोगों को मानवाधिकारों को समझने, मानवाधिकारों को मानने, और मानवाधिकारों का सम्मान करने, बचाव करने और प्रचार करने की ज़िम्मेदारी लेने में मदद करना है। मानवाधिकार शिक्षा का एक महत्वपूर्ण परिणाम सशक्तिकरण है। एक प्रक्रिया जिसके माध्यम से लोग और समुदाय अपने जीवन और उनके प्रभाव को प्रभावित करने वाले निर्णयों को अपनाते हैं। मानवाधिकार शिक्षा का अंतिम लक्ष्य लोगों के लिए मानवाधिकार, न्याय और गरिमा लाने के लिए मिलकर काम करना है।

भारतीय संविधान में मानवाधिकार

भारत में नागरिक स्वतंत्रता की दृष्टि से मौलिक अधिकार ब्रिटिश साम्राज्य के समय से हो रहे संवैधानिक और संसदात्मक प्रणाली के विकास का परिणाम है। प्रारंभ से राष्ट्रीय आंदोलन ने जातीय भेदभाव का विरोध किया और मानव के मूलभूत अधिकारों के लिए संघर्ष जारी रखा।

1921 में निर्मित आइरिश संविधान से प्रेरणा ले कर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1925 में भारतीय विधेयक को अंतिम रूप दिया और प्रथम बार मौलिक अधिकारों की अलग से घोषणा हुई। भारत का संविधान 26 जनवरी 1950 को बनाया गया जो 395 लेख 8 अनुसूची के साथ सबसे विस्तृत संविधान में से एक है। संविधान की प्रस्तावना भारत को एक संप्रभू, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, और लोकतांत्रिक गणराज्य बनाता है।

शब्द लोकतांत्रिक यह दर्शाता है कि सरकार की इच्छा से उसका अधिकार प्राप्त होता है, यह एक भावना देता है कि वह सभी बराबर हैं भले ही जाति, धर्म, लिंग और संस्कृति भिन्न हों ।

मानवाधिकार आयोग का गठन सांविधिक निकाय के रूप में किया गया है जिसका गठन 13 अक्टूबर 1993 को लोक सभा राज्य सभा और राष्ट्रपति द्वारा बनाया गया। इसके गठन का प्रमुख उद्देश्य मानव के अधिकारों की रक्षा करना है जिससे कि जनता के मौलिक अधिकारों की रक्षा हो सके और उन्हें उनके मौलिक अधिकारों को दिलवाया जा सके।

समाज में व्याप्त सभी बुराइयों को दूर करने के लिए और विभिन्न आविष्कारों के साथ होने वाले समाज में परिवर्तनों के कारणों से भी मानवाधिकारों का विकास होने लगा।

संविधान ने न्यायिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक नेतृत्व, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, पूजा, समानता की स्वतंत्रता, स्थिति और अवसर की गरिमा का आश्वासन दिया है।

इस घोषणा में जो अधिकार दिए गए हैं उन्हें निम्न चार्ट से आसानी से समझा जा सकता है।

क्र. सं.	मौलिक अधिकारों के नाम	सार्वभौमिक घोषणा	भारतीय संविधान
1.	कानून के समक्ष समानता	अनुच्छेद 07	अनुच्छेद 14
2.	सार्वजनिक रोजगार के मामलों में अवसर की समानता	अनुच्छेद 21(2)	अनुच्छेद 16(1)
3.	अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता आदि से संबंधित अधिकारों का संरक्षण	अनुच्छेद 19	अनुच्छेद 19(1)
4.	अपराधों के लिए विचारण के संबंध में संरक्षण	अनुच्छेद 11(2)	अनुच्छेद 20(1)
5.	जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संरक्षण	अनुच्छेद 14	अनुच्छेद 23
6.	मानव तस्करी एवं बंधुआ मजदूरी	अनुच्छेद 18	अनुच्छेद (25)1
7.	अन्तःकरण तथा मुक्त व्यावसायिक कार्य तथा धर्म के प्रचार की स्वतंत्रता	अनुच्छेद 22	अनुच्छेद (29)1

8.	अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण	अनुच्छेद 22	अनुच्छेद (29)1
9.	शैक्षिक संस्थानों को स्थापित एवं संचालित करने के लिए अल्पसंख्यकों के अधिकार	अनुच्छेद (20) 3	अनुच्छेद (30)1
10.	संपत्ति का अधिकार	अनुछेद (17)2	संशोधन 44 के बाद मौलिक अधिकार नहीं है, परन्तु अब अनुच्छेद 300(ए) में है।
11.	इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रवर्तन हेतु उपाए	अनुछेद 08	अनुच्छेद 32

शिक्षा

जो हमें जीवन को अनूकूल तरीके से जीना सिखाता है, वही शिक्षा है। साथ ही समाज में रहने और अपना और समाज का कल्याण कर सके और सफलता की ओर अग्रसर हो। शिक्षा वह है जो हमारे जीवन के सभी अस्तित्वों के साथ सामंजस्य पूर्ण सम्बन्ध बनाती है। शिक्षा के द्वारा ही उसे अनुचित मार्ग से सद्मार्ग पर लाया जा सकता है। शिक्षा ही मनुष्य में निहित दैवीय पूर्णता का प्रत्यक्षीकरण है। शिक्षा केवल ज्ञान तक सीमित नहीं है जब तक वह जीवन के मूल्यों, आदर्शो एवं मान्यताओं का परिचय नहीं देता तब तक व्यर्थ है। शिक्षा की यही विशेषता उसे मानवजाति में व्याप्त संवेदनाओं से जोड़ता है। संवेदना एक ऐसा शब्द है जो थोडा वैज्ञानिक लेकिन जीवन के हर पहलू और क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान देता है। यदि बात शिक्षा और ज्ञान की की जाए तब संवेदना का स्थान और महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है।

ज्ञान का अर्थ ही है पुराने संस्कारों को बदलना। हम संस्कारों को ही तमोप्रधान से सतोप्रधान बनाते हैं। अगर हमने अपने संस्कारों को जान लिया तो फिर उसको ज्ञान में परिवर्तित कर सकते हैं। ज्ञान का मूलभूत आधार ही अपने अंदर उपस्थित पुराने और ऐसे विचारों का त्याग करना है जो समाज के उद्धार में बाधा बनते हैं। ज्ञान हमें अपने सिद्धांतों और अपने धर्म के रिवाजों को मानते हुए उन संस्कारों और मान्यताओं को ग्रहण करना सिखाता है जो भविष्य को बनाने और संवारने में सहयोंग करते हैं।

संवेदना

संवेदना से तात्पर्य मानव की उस मनोवैज्ञानक स्थिति से है जिसमें व्यक्ति परिवर्तनों को ग्रहण करता है और उन्हें किस तरह अपने जीवन में लागू करता है इस

बात का निर्धारण किया जाता है।

ये संवेदनाएं मानव प्रकृति और उसके मस्तिष्क और मान्यताओं के अनुसार भिन्न भिन्न होती हैं।

शिक्षा और संवेदना :

यदि शिक्षा के क्षेत्र में संवेदना की बात की जाए तो दोनों का ही एक अलग और प्रभावशाली रूप निखर कर आता है क्योंकि शिक्षा के बिना संवेदना और संवेदना के बिना शिक्षा दोनों ही अर्थहीन है। दोनों का अस्तित्व एक दूसरे की आत्मा में अंतर्निहित है। मनुष्य अपने जीवन काल में प्रति क्षण कुछ नया सीखता व अनुभव करता है। यही सीख और अनुभव उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। इसे ही अनुभव कहा जाता है परन्तु यह अनुभव तभी सिद्ध होता है जब मानवजाति द्वारा उसे सही समय पर और सही जगह उपयोग किया गया हो। शिक्षा के सभी पहलुओं को जैसे शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति, शिक्षण विधि, पाठयक्रम, मूल्यांकन, अनुशासन जैसे कई महत्वपूर्ण तत्वों की सफलतापूर्वक स्थापना संवेदना के बिना असंभव है। जब तक शिक्षा संवेदना से ना जुड़े तब तक इसे सुचारू रूप से नहीं चलाया जा सकता। शिक्षा के क्षेत्र मे शिक्षण प्रणाली को सुधारने और सीखने की प्रक्रिया को सुधारने के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रयोग किया जाना स्वाभाविक है। व्यक्ति के व्यवहार, मानसिक प्रक्रियाओं एवं अनुभवों का अध्ययन शैक्षिक परिस्थिति में किया जाता है, जिस से वह प्रत्येक व्यक्ति की संवेदनाओं से जुड जाता है जिस से ज्ञान प्राप्त करने वाले और शिक्षा देने वाले दोनों के लिए एक दूसरे के व्यवहार को और मनोवैज्ञानिक स्थिति को समझना आसान हो जाता है। शिक्षण प्रक्रिया सरल और सुचारू रूप से चलती रहती है इसी प्रकार एक दूसरे के सामने वह अपनी समस्याओं को आसानी से रख सकते हैं।

संवेदनाओं का केन्द्र मानव इंद्रियाँ और मानव व्यवहार है। संवेदना पूर्व में किए गए अनुभवों से भी प्रभावित होती है। यह मानव के विकास और वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के साथ भी बदलती है ।यह वह मानसिक स्थिति है जो व्यक्ति के निर्णय लेने की क्षमता और उसके तरीके को प्रभावित करती है इसी लिए विभिन्न परिस्थितियों में हर व्यक्ति अलग अलग प्रतिक्रिया और निर्णय लेता है। क्योंकि उसमें संवेदनाओं को समझने और उस पर प्रतिक्रिया देने की समझ अलग अलग होती है मानव संवेदना के क्षेत्र में वह सभी ज्ञान और तकनीकें सम्बंधित हैं जो सीखने की प्रक्रिया को अच्छी प्रकार से समझाने तथा अधिक निपुणता से निर्धारित करने से संबंधित हैं। संवेदनाओं के अध्ययन में निम्न बिंदुओं का अध्ययन किया जाता है:

- वंशानुक्रम
- विकास
- व्यक्तिगत भिन्नता
- व्यक्तित्व
- पाठ्यक्रम निर्माण
- मानसिक स्वास्थ्य
- शिक्षण विधियाँ
- निर्देशन एवं परामर्श
- अनुसंधान
- किशोरावस्था
- व्यवहार का अध्ययन
- सीखने की कियाओं का अध्ययन
- व्यक्तिगत तथा बुद्धि

मानवाधिकार की शिक्षा और उसकी आवश्यकता

समाज में हो रहे परिवर्तनों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि आज प्रत्येक नागरिक को अपने मौलिक अधिकारों के बारे में पूर्ण रूप से पता होना चाहिए और साथ ही यह भी कि इन अधिकारों को कब कहाँ और कैसे उपयोग करना चाहिए। मानवाधिकारों की शिक्षा के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक को यह सीखना चाहिए कि वह किस तरह अपने अधिकारों का उपयोग विभिन्न परिस्तिथियों में कर सकता है। मानवधिकार की शिक्षा का उद्देश्य सार्वभौमिक मानवधिकारों के निर्माण के साथ मानवधिकार के ज्ञान कौशल और मूल्यों को विकसित करना है। मानवाधिकार का क्षेत्र धीरे–धीरे परिवर्तित हुआ है। और विकसित होता जा रहा है। मानवधिकार की कल्पना परिवर्तनोन्मुखी है।

मानवाधिकार की शिक्षा, सार्वभौमिक मानवाधिकार संस्कृति के निर्माण में व्यापक लक्ष्य के साथ मानव अधिकार के ज्ञान, कौशल, और मूल्यों को विकसित करती है। इसके लिए आवश्यक है कि प्रदेश के युवाओं को अपने मौलिक अधिकारों का ज्ञान और उसे जनता के हित में व्यापक रूप से किस तरह लागू किया जा सके इस बात का ज्ञान हो। मानवाधिकार के ज्ञान के लिए प्रदेश के कई तत्व एक साथ मिल कर कार्य करते हैं

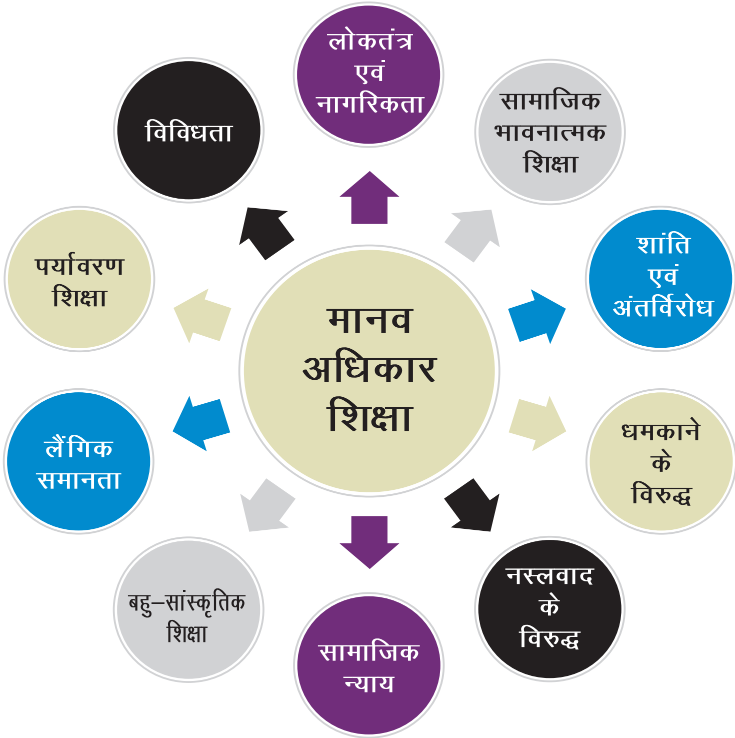

मानवधिकार शिक्षा ढ़ांचा

मानवाधिकार शिक्षा वैश्वीकरण, पर्यावरण, शांति, नागरिकता, लिंग, समानता, लोकतंत्र, गरीबी, और अंतर सांस्कृतिक संबंधों के विषय में संबंधित करती है और मानवाधिकारों का सम्मान करने वाली संस्कृति बनाने का प्रयास करती हैं।

मानव अधिकार में शिक्षा ही मौलिक अधिकार है और यह भी एक जिम्मेदारी है। मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के प्रस्ताव ने हर व्यक्ति और समाज के हर अंग को इन अधिकारों के सम्मान को बढ़ावा देने के लिए शिक्षण और शिक्षा द्वारा प्रयास करने का आग्रह किया और स्वतंत्रता के लिए प्रेरित किया लेकिन एक कटु सत्य यह भी है कि आज भी समाज का एक बडा वर्ग अपने मौलिक अधिकारों और मानव अधिकारों से परिचित नहीं है, तो इनका उपयोग करना तो बहुत दूर की बात है। मानवधिकारों की शिक्षा तब तक सर्वमान्य नहीं हो सकती जब तक वह सर्व साधारण की पहुंच तक ना हो। जब प्रत्येक नागरिक अपनी शिक्षा प्रणाली में दूसरे विषयों की तरह इसे भी अनिवार्य नहीं समझेगा और इसकी उपयोगिता को समझने और इसे दूसरों तक पहुंचाने का प्रयास नहीं करेगा तब तक मानवधिकारों का विकास असंभव है।

मानव अधिकारो की कुछ प्रेरणात्मक कहानियाँ

हम सभी जीवित रहने के लिए पैदा हुए हैं, लेकिन हमारे बीच लाखों लोग हैं जो प्रतिष्ठित जीवन का नेतृत्व करने के अपने अधिकार से वंचित रह गए हैं। यहाँ हम भारतीय मानवाधिकार कार्यकर्ताओं के काम पर नज़र डालते हैं, जिन्होंने अपने प्रयासों के माध्यम से लोगों के जीवन में सकारात्मक अंतर डाला है।

1. कीर्ति भारती :

इस 29 वर्षीय कार्यकर्ता ने पिछले चार वर्षों में 900 बाल विवाहों को रोक दिया है। राजस्थान के निवासी, कीर्ति भारती ने असहाय बच्चों की रक्षा के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया है जिनके परिवार उन्हें युवा आयु में शादी में मजबूर करते हैं। उन्होंने 2012 में सार्थी ट्रस्ट की स्थापना की, एक गैर–लाभकारी संगठन जो बाल विवाह के पीड़ितों की रक्षा करता है। साल भर में, कीर्ति को ग्रामीणों, जाति परिषदों और स्थानीय राजनेताओं से उनके काम की प्रकृति और इस तथ्य के कारण कई मौत की धमकी मिली है कि राज्य में कई लोग अभी भी हत्याओं का सम्मान करते हैं। यह भयानक अभ्यास, पितृसत्तात्मक समाज की उपज, भारत सरकार के बाल विवाह अधिनियम 2006 के निषेध को पारित करने के बाद भी चल रहा है। कीर्ति ने एक पुनर्वास मनोवैज्ञानिक और अनगिनत बच्चों के साथ काम किया है जो अपने बचपन के अनुभवों के कारण पीड़ित हैं।

2. अशोक रो कवि :

भारत के समलैंगिक समुदाय के पिता के रूप में निरूपित किए गए, अशोक रो कवी 1980 के दशक से भारतीय समलैंगिक अधिकार आंदोलन में सबसे आगे रहे हैं। 69 वर्षीय कवि ने 1974 में द इंडियन एक्सप्रेस के साथ पत्रकारिता में अपना करियर शुरू किया। अपने प्रारंभिक वर्षों में, उन्हें अपनी कामुकता से निपटना मुश्किल हो गया और रामकृष्ण मिशन में भिक्षु के रूप में शामिल हो गया। एक वरिष्ठ हिंदू भिक्षु ने उन्हें मठ छोड़ने और सक्रियता में संलग्न होने के लिए प्रोत्साहित किया ताकि वह अपनी पहचान को स्वतंत्र रूप से तलाश सके और व्यक्त कर सके। अशोक ने 1990 में भारत की पहली समलैंगिक पत्रिका, बॉम्बे डोस्ट की स्थापना की। वह एम्स्टर्डम में अंतरराष्ट्रीय एड्स सम्मेलन में एक प्रतिनिधि रहे हैं और भारत में समलैंगिकों और समलैंगिक अधिकारों के बारे में खुले तौर पर बोलने वाले पहले लोगों में से एक थे। उनका साक्षात्कार 1986 में सावी पत्रिका में प्रकाशित हुआ था और इससे भारी उछाल आया। उन्होंने देश में सार्वजनिक जीवन में समलैंगिकों की सक्रिय भागीदारी के लिए एक मंच प्रदान करने की दिशा में लगातार काम किया है। वर्तमान में, वह एक

एलजीबीटी और स्वास्थ्य संगठन हूमाफ़र ट्रस्ट के संस्थापक–अध्यक्ष हैं जो समलैंगिकता, लिंग जागरूकता और यौन अल्पसंख्यक पहुंच को वैध बनाने की दिशा में काम करते हैं।

3. कैलाश सत्यार्थी :

जाने–माने बाल अधिकार और शिक्षा कार्यकर्ता, कैलाश सत्यार्थी को 1980 के दशक से बच्चे और बंधुआ श्रमिकों से 80,000 से अधिक बच्चों को बचाने के लिए श्रेय दिया जाता है। उन्होंने 1980 में बचपन बचाओ आंदोलन शुरू किया। यह उनके अथक प्रयास थे जिन्होंने अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन को 182 बाल श्रम के सबसे बुरे रूपों को खत्म करने के लिए मजबूर किया दिलचस्प बात यह है कि भारत उन 15 सदस्य देशों में से एक है जिन्होंने 2000 में प्रभावी होने के बाद से इसे मंजूरी नहीं दी है। 62 वर्षीय सत्यार्थी ने आधुनिक दासता के जाल में पकड़े गए निर्दोष बच्चों को बचाने के लिए कारखानों, ईंट भट्टियों और कालीन बनाने की दुकानों पर धावा बोला है। उन्हें 2014 में नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

4. लक्ष्मी अग्रवालः

2005 में पुरुषों के एक समूह द्वारा एसिड के साथ हमला करने के बाद लक्ष्मी अग्रवाल एक कार्यकर्ता बन गई क्योंकि उन्होंने पुरुषों की प्रगति में से एक वर्ग को खारिज कर दिया था। वह चव्हाण फाउंडेशन की निदेशक हैं, एक गैर सरकारी संगठन जो भारत में एसिड हमले पीड़ितों के कारण लड़ता है। उन्होंने एसिड की बिक्री को रोकने के लिए जनहित याचिका (पीआईएल) के लिए 27,000 हस्ताक्षर एकत्र करने के लिए व्यापक प्रशंसा प्राप्त की, जिसके कारण सुप्रीम कोर्ट ने केंद्रीय और राज्य सरकारों को न्याय करने के लिए एसिड की बिक्री को नियंत्रित करने का आदेश दिया।

5. बेज़वाडा विल्सन

बेज़वाडा विल्सन एक सामाजिक कार्यकर्ता है जिसने सिर पर मैला ढोने (manual scavenging) की अमानवीय गतिविधि के खिलाफ जोरदार अभियान चलाया है। विल्सन ने इस गतिविधि में अभी भी शामिल 6 लाख लोगों की अनुमानित संख्या में से 3 लाख मैनुअल स्केवेंजर्स के पुनर्वास में मदद की है। वह कोलार में एक दलित परिवार से आता है जो पीढ़ियों के लिए मैनुअल सफाई से जुड़ा हुआ था। अपने बचपन के अनुभवों से पीड़ित, उन्होंने मैनुअल स्कावेन्जिग के खिलाफ जन आंदोलन शुरू करने के अपने प्रयासों को प्रसारित किया। सफाई कर्मचारी आंदोलन (एसकेए) की अगुवाई में, वह 2014 के सुप्रीम कोर्ट के फैसले को उनके पक्ष में बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे, जिसने सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों को उन मैनुअल स्केवेंजर्स के

परिवारों को जिनकी सफाई के दौरान मृत्यु हो गई, की क्षतिपूर्ति करने का निर्देश दिया था। उन्हें इस साल रमन मैगसेसे पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

उपसंहार :

मानवधिकार को समझना और इसका महत्व लोगों तक पहुंचाना आज के युग की आवश्यकता है। क्योंकि आज के दौर में जहाँ हर व्यक्ति अपनी ताकत और अपने आप को समाज के सामने एक शक्तिशाली बनना चाहता है, भले ही इस के लिए किसी और को नीचा दिखाना पड़े और उसके अधिकारों का हनन हो। इसी कारण हर व्यक्ति को अपने अधिकारों की जानकारी होना आवश्यक है।

****

किसी व्यक्ति के उत्थान के लिए तीन कारकों की आवश्यकता होती है। ये हैं– सहानुभूति, समानता तथा स्वतंत्रता।

—डॉ. भीम राव अंबेड़कर

मानव अधिकार शिक्षा : मुद्दे, चुनौतियाँ और समाधान

राजकुमार*

बीज शब्द : मानवाधिकार शिक्षा, देशज समुदाय, पाठ्यक्रम, चुनौतियां

सारांश

मानवाधिकार शिक्षा का सैद्धांतिक आधार और मानव अधिकारों के प्रति सम्मान एवं उसके प्रति चेतना जागृति से संबंधित है। इसके तहत सभी राष्ट्रों के देशज समुदाय नस्लीय, भाषाई, एथनिक एवं धार्मिक समूहों के मध्य सहनशीलता, लैंगिक समानता तथा मित्रता का संवर्द्धन करना है। विश्वभर में मानवाधिकार शिक्षा के प्रचार प्रसार को मूर्तरूप देने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के स्तर पर गंभीर प्रयास किए गए हैं। इस शिक्षा में अध्यापकों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है। मानव अधिकारों की पहुंच जन–जन तक स्थापित करना इसके वृहद उद्देश्यों में से एक है। मानवाधिकार शिक्षा के समक्ष सबसे बडी चुनौती इसके लिए पर्याप्त शिक्षकों का न होना तथा इसे कानून के विषयों के साथ संबद्ध कर दिया जाना है। हालांकि, हाल के कुछ वर्षों में मानव अधिकार आयोग के हस्तक्षेप के कारण इसे स्वतंत्र विषय के रूप में पढाए जाने की शुरुआत हो चुकी है। समाज में मानवाधिकारों की समुचित शिक्षा के बिना विकास तथा मानवाधिकारों के संवर्द्धन की कल्पना बेमानी है।

आज के युग में सिर्फ सरल और सुविधाजनक जीवन ही पर्याप्त नहीं है बल्कि जीवन गरिमामयी और अधिकारयुक्त होना चाहिए। हर व्यक्ति को उसके अपने अनुसार जीवन यापन की स्वतंत्रता होनी चाहिए। जैसा कि विदित है समय के साथ–साथ मानवीय आवश्यकताओं के क्रम में अनेक नये विषयों ने जन्म लिया, इसी कड़ी में बीसवी सदी के मध्य में जन्म लिया मानव अधिकार ने।

वैश्विक स्तर पर मानवाधिकारों ने संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए मानवधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा 1948 नामक दस्तावेज को संयुक्त राष्ट्र संघ की आम सभा द्वारा स्वीकृत किया गया। यह दस्तावेज विश्वभर की सरकारों के लिए मानव अधिकार सिद्वान्त को अपनाने के लिए प्रेरणास्त्रोत के रुप में काम आने वाला वैश्विक दस्तावेज बना। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर विकसित मानव अधिकार के सिद्धान्त और कानून को विश्व के हर कोने में कैसे पहुंचाया जाय यह एक बड़ा मुद्दा और चुनौती थी।

*पूर्व शोधार्थी, मानव अधिकार विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यायल, लखनऊ

इस शोध पत्र के माध्यम से भारत में उच्च शिक्षा क्षेत्र में मानव अधिकार शिक्षा सम्बन्धी मुद्दों और चुनौतियों को उकेरने और उसके समाधान का प्रयास किया गया है।

मानवाधिकार शिक्षा क्या है?

मानव अधिकार शिक्षा के सैद्धान्तिक आधार और मानव अधिकार शिक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य के लिए मानव अधिकार शिक्षा को परिभाषित किया गया है। जिसके अनुसार मानव अधिकार शिक्षा का प्रशिक्षण, प्रसार और सूचना के प्रयास किए जाएंगे तथा निम्न रूप में व्यवहार निर्मित और निर्देशित किया जायेगा।

1. मानव अधिकारों और मूलभूत स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान को मजबूत कराना।

2. मानवीय व्यक्तिव और उसके सम्मान के प्रति जागृति का पूर्ण विकास करना।

3 सभी राष्ट्रों के धार्मिक और भाषायी समूहों के बीच सहनशीलता, लैंगिक समानता और मित्रता की सम्बन्ध का संवर्द्धन करना।

3. सभी लोगो को स्वतन्त्र समाज में प्रभावी भागीदारी के लिये समर्थ बनाना।

संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा 1948 के लक्ष्य को घोषित करते हुए कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति और समाज का प्रत्येक अंग अध्यापन और शिक्षण द्वारा इन अधिकारों तथा स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की भावनाओं का अभिवर्धन करेगा।

वैश्विक स्तर पर मानवाधिकार शिक्षा का उद्‌दभव

विएना घोषणा और कार्य योजना 1993 के पैराग्राफ 82 में कहा गया है कि सरकारों को मानव अधिकार की शिक्षा को आरम्भ करना चाहिए तथा उसका समर्थन करना चाहिए। विश्वभर में मानव अधिकार शिक्षा के प्रचार, प्रसार को मूर्तरुप देने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के स्तर पर गम्भीर प्रयास किए गये हैं। इन प्रयासों के तहत अभी तक दो चरण पूर्ण हो चुके हैं तथा तीसरा चरण अभी भी बाकी है। प्रथम चरण 2005–2009 तक तथा द्वितीय चरण 2010–2014 तक तथा वर्तमान यानी तृतीय चरण 2015 से 2019 तक जारी रहेगा।

मानव अधिकार शिक्षा का प्रथम चरण प्राथमिक और माध्यमिक स्कूल व्यवस्था में मानव अधिकार शिक्षा के एकीकरण को समर्पित था। वहीं मानवाधिकार शिक्षा के वैश्विक कार्यक्रम के दूसरे चरण का उद्‌देश्य अध्यापकों, शिक्षाविदों, लोक सेवकों, कानून का क्रियान्वयन करने वाले अधिकारियों और मिलिट्री के लोगों के प्रशिक्षण और शिक्षा से जुड़ा था। इस वृहद कार्य को पूरा करने के लिए मानव अधिकार काउंसिल ने वर्ष

2010 सितम्बर में इसके क्रियान्वयन के लिए प्लान ऑफ एक्शन (कार्य योजना) को स्वीकृति दी थी।

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 19 दिसम्बर 2011 को मानव अधिकार शिक्षा एवं प्रशिक्षण पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा को अंगीकृत किया गया है, भारत भी इसका सदस्य है। इस दृष्टिकोण से उपरोक्त घोषणा के सिद्धान्तों को भारत में बढावा देना न सिर्फ अन्तरराष्ट्रीय समुदाय के प्रति बल्कि भारतीय नागरिकों के प्रति भी भारत की प्रतिबद्धता है।

मानव अधिकार शिक्षा और प्रशिक्षण पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा, 2011 के अनुच्छेद 1 के अनुसार "प्रत्येक व्यक्ति को सभी मानव अधिकार और मूलभूत स्वतंत्राओं के बारे में जानने, मांग करने और प्राप्त करने का अधिकार है।"

इसी घोषणा का अनुच्छेद 7 कहता है कि राज्य को व्यक्तिगत तौर पर और अंतरराष्ट्रीय सहायता और सहयोग से मानव अधिकार शिक्षा और प्रशिक्षण के उत्तनशील क्रियान्वयन के लिये कदम उठाने चाहिये। घोषणा के अनुच्छेद 14 में कहा गया है कि "मानव अधिकार शिक्षा और प्रशिक्षण पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा के प्रभावी क्रियान्वयन और फालोअप के लिए राज्य द्वारा उचित उपाय किए जाने चाहिए और इस संदर्भ में आवश्यक स्त्रोत उपलब्ध कराने चाहिए।" घोषणा का अनुच्छेद–9 कहता है कि "राज्य को प्रभावी और स्वतन्त्र राष्ट्रीय मानव अधिकार संस्थान की स्थापना और मजबूती का, राष्ट्रीय संस्था की क्षमताओं में मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्द्धन के परिपेक्ष्य में संवर्द्धन करना चाहिए यह मानते हुए कि राष्ट्रीय मानव अधिकार संस्थाऐं मानव अधिकार शिक्षा के सम्वर्धन में जहॉ आवश्यक हो समन्वयक की भूमिका में महत्वपूर्ण योगदान कर सकते है।" अनुच्छेद 12(3) कहता है कि मानव अधिकार शिक्षा की शुरुआत और प्रोजेक्ट के लिये स्वैच्छिक दान को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा ने 10 दिसम्बर 2014 को मनाये गये मानव अधिकार दिवस को मानव अधिकार शिक्षा के रुप में मनाया। इस अवसर पर संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्कालीन महासचिव ने कहा था कि **"मानव अधिकार शिक्षा सभी के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति की विधि है।"**

भारत में मानव अधिकार शिक्षा के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः

आज विश्व भर में मानव अधिकार शिक्षा के प्रचार प्रसार के परिणामस्वरुप एक बहुत बड़ा मानव अधिकार आन्दोलन खड़ा हो गया है। जिसका प्रभाव भारत पर भी स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर होता है।

भारत में औपचारिक रुप से मानव अधिकार शिक्षा का उद्भव अधिक पुराना नहीं हैं। विश्व भर में मानव अधिकार के संरक्षण व संवर्द्धन के लिए हर देश में एक मानव अधिकार संस्था का गठन होना चाहिऐ। मानव अधिकार संरक्षण (अधिनियम), 1993 के तहत भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन किया गया।

मानव अधिकार शिक्षा के संवर्द्धन हेतु राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के प्रयास

मानव अधिकार संरक्षण (अधिनियम), 1993 की धारा–12(ज) राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को निर्देशित करती है कि वह देश भर में समाज के विभिन्न वर्गों के बीच मानव अधिकार संबन्धी जानकारी का प्रसार करना और प्रकाशनों, प्रचार, माध्यमों, गोष्ठियों और अन्य उपलब्ध साधनों के माध्यमों से इन अधिकारों के संरक्षण के लिए उपलब्ध रक्षोपायों के प्रति जागरुगता का संवर्द्धन करेगा ।

वर्ष 1999 में मानव अधिकार आयोग ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को सुझाव दिया कि वह मानव अधिकार शिक्षा पर पाठ्यक्रम बनाये और पूरे भारत में उसे विश्वविद्यालयों और कालेजों में प्रारम्भ करने के लिए प्रयास करें।

मानव अधिकार शिक्षा संवर्द्धन हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रयास

प्रारम्भिक अवस्था के इसी क्रम में मानव अधिकार आयोग द्वारा विश्व विद्यालय अनुदान आयोग व अन्य शैक्षणिक संगठनो से मिलकर मानव अधिकार शिक्षा को शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में शामिल कराने और स्वतंत्र रुप से उच्च शिक्षा में मानव अधिकार को एक विषय के रुप में पढ़ाये जाने के लिए गम्भीरतापूर्वक प्रयास किए गए।

वर्ष 1980 में विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा जस्टिस एस.एम. सीकरी की अध्यक्षता में सभी स्तरों पर मानव अधिकार शिक्षा के संवर्द्धन के लिए तरीके और माध्यमों पर विचार करने के लिए एक कमेटी का गठन किया गया था।

वर्ष 1999 में मानव अधिकार आयोग के सुझाव पर वर्ष 2001 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने मानवअधिकार एवं कर्तव्य शिक्षा पर माडल करीकुलम का निर्माण किया जिसे परिणाम स्वरुप विश्वविद्यालय और कालेजो में चालू किया गया। इसी क्रम में मानव अधिकार संवर्द्धन हेतु एन सी ई आर टी ने भी एक, 'स्त्रोत पुस्तक' जो मानव अधिकार शिक्षा से जुड़े दस्तावेजों का संग्रह है, प्रकाशित की, जो छात्रों, अध्यापको, नीतिनिर्धारकों आदि के लिए अत्यधिक लाभकारी है।

मानव अधिकार शिक्षा के मुद्दे और चुनौतियां

मानव अधिकार शिक्षा के संवर्द्धन में अध्यापकों की भूमिका अत्यधिक

महत्वपूर्ण होती है। भारत की आजादी के 70 वर्ष बीतने के बाद भी भारत में मानव अधिकार शिक्षा अभी भी शैशव अवस्था से गुजर रही है। भारतीय संदर्भ में देखा जाय तो मानव अधिकार शिक्षा विषय को पढ़ाने के लिए मानव अधिकार शिक्षा के क्षेत्र में प्रशिक्षित एवं योग्य शिक्षकों का अत्यधिक अभाव है। मानव अधिकारों की पहुंच जन–जन तक स्थापित करना मानव अधिकार शिक्षा का एक वृहद मकसद रहा है। जहां उच्च शिक्षा में मानव अधिकारों के स्नातकोत्तर पाठयक्रम प्रारम्भ किए हैं वे या तो विधि स्कूलों के अधीन खोले गये है या कला विभाग के अधीन खोले गये है।

यह अचरज की बात है कि आज भी मानव अधिकार विषय को पढ़ाने के लिए अधिकांश मात्रा में अन्य विषय विशेषज्ञ ही लगे हैं। यद्यपि जहॉ मानव अधिकार पाठयक्रम विधि विभाग में चलाए जा रहे है वहां पर विधि विशेषज्ञ शिक्षक पढ़ा तो रहे है लेकिन अधिकांशतः मानव अधिकार शिक्षा को विधि से कमतर समझते हैं और वे मानव अधिकार शिक्षा को प्रोत्साहन देने की बजाय विधि को अधिक तवज्जो देते हैं।

मानव अधिकार शिक्षा के पाठ्यक्रम में मानव अधिकार कोर विषय के रुप में होने चाहिए जबकि वे विधि को कोर विषय के रुप में पढ़ाने को अपना कर्तव्य अधिकार समझते है। इस प्रकार मानव अधिकार विभाग में पढ़ा रहे अध्यापक अपनी सुविधा के अनुरुप कार्य करते है।

मानव अधिकार शिक्षा संवर्द्धन में बाधा तथा शिक्षा की गुणवत्ता भी निरंतर गिर रही है। इस गम्भीर स्थिति की सुध लेने वाला कोई नही दिखाई देता है।

मानव अधिकार शिक्षा के प्रति दुराग्रह इस कदर हावी है कि पीएच.डी. जैसे गरिमामयी और सर्वोच्च पाठ्यक्रमों में मानव अधिकार विषय में प्रवेश के लिए विज्ञप्ति जारी की जाती है और जब पीएच.डी. की डिग्रियॉ देने का समय आता है तो डिग्रियों का विषय बदल कर विधि बना दिया जाता है। उच्च शिक्षा के संवर्द्धन में इससे बडी विडम्बना और दुराग्रह क्या हो सकता है?

मानव अधिकार आयोग के प्रयासों से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने यह स्पष्ट रुप से स्वीकार कर लिया है कि विधि और मानव अधिकार दो अलग–अलग और स्वतंत्र विषय के रुप में अपना अस्तित्व रखते है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने वर्ष 2001 में विधि और मानव अधिकार विषयों पर अलग–अलग 'मॉडल करीकुलम' बनाकर सभी विश्वविद्यालयों और कालेजों को उस पर अमल करने के निर्देश जारी किया है। समय की मांग को देखते हुए वर्ष 2007 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने 2001 को मानव अधिकार विषय पर बनाए गये 'मॉडल करीकुलम' की समीक्षा करने के लिए कहा और मानव अधिकार विषय के स्नातकोत्तर सर्टिफिकेट, स्नातक डिप्लोमा, फाउण्डेशन

कोर्स और पीएच.डी. के लिए एक कॉमन कोर्स (समरुप पाठ्यक्रम) तैयार करने के लिए भी कहा था।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मानवअधिकार पाठ्यक्रमो को प्रारम्भ कराने के लिये आर्थिक मदद तो दी गयी लेकिन यह अस्थायी तौर पर थी, जिसके कारण, अनेक स्थानों पर विश्वविद्यालय द्वारा आर्थिक मदद बन्द होने पर मानव अधिकार पाठ्यक्रमों को बन्द करना पडा। डॉ० भीम राव अम्बेडकर विश्वविद्यालय आगरा में (अम्बेडकर चेयर के अधीन) बन्द किया गया मानवाधिकार विषय में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम इसका उदाहरण है। इस पाठयक्रम को करने वाले अनेक छात्र मानव अधिकार विषय में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा करायी जाने वाली राष्ट्रीय स्तर की नैट परीक्षा भी पास कर चुके हैं।

उच्च शिक्षा में मानव अधिकार शिक्षा की स्थिति

मानव अधिकार शिक्षा में पाठ्यक्रम प्रारम्भ करने और विश्वविद्यालय स्तर पर मानव अधिकार के क्षेत्र में कार्यशाला, सिम्पोजियम को बढावा देने के लिए वर्ष 1997 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने एक स्टैन्डिग कमेटी का गठन किया। इस कमेटी द्वारा कुछ सर्टिफिकेट, डिग्री पाठयक्रम प्रारम्भ करने के लिए अनुमोदन दिया। जिसमें इन्दिरा गॉधी खुला विश्वविद्यालय, दिल्ली, मुम्बई, विश्वविद्याालय, आन्ध्रा विश्व विद्यालय, मणिपुर विश्वविद्यालय, जामिया मिलिया स्लामिया, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट, जबलपुर विश्वविद्यालय, अलीगढ़ विश्वविद्यालय उत्तर प्रदेश आदि के अलावा कुछ और विश्वविद्यालय/कालेज शामिल हैं।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मानव अधिकार शिक्षा के क्षेत्र में यह एक सराहनीय कदम रहा है लेकिन कहना ना होगा कि राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रयासों के बावजूद कुछ मुट्ठीभर सरकारी और गैर सरकारी विश्वविद्यालय/कालेजो में मानव अधिकार शिक्षा से जुडे विभिन्न पाठ्यक्रम प्रारम्भ हो सके। अन्य शब्दों में सवा अरब की आबादी वाले देश में मानव अधिकार शिक्षा के क्षेत्र में यह उपलब्धि (ऊॅट के मुॅह में जीरा) के समान है।

24 जनवरी 2013 को अंग्रेजी दैनिक हिन्दू में छपी खबर खुलासा करती है कि भारतीय विश्वविद्यालयों के लिये मानव अधिकार शिक्षा सम्बन्धित पाठ्यक्रम प्राथमिकता नही है।

समाधान

मानव अधिकार शिक्षा की आवश्यकता भूतकाल के मुकाबले वर्तमान में ज्यादा

है। मानव अधिकार शिक्षा की आवश्यकता पर अधिकांश मानव अधिकार दस्तावेजों में जोर दिया गया है और इस भूमण्डलीय मानवाधिकार संस्कृति के विकास में आवश्यक माना गया है। 'मानवाधिकार संस्कृति के विकास का तात्पर्य विस्तृत आयामों में प्रजा की भलाई व प्रसन्नता से है।

वास्तव में सही मायने में मानव अधिकार शिक्षा को सभी लोगों तक पहुंचाने का लक्ष्य तब तक पूरा नहीं किया जा सकता है जब तक कि शिक्षा का स्तर एक संतुष्ट कारक बिन्दु तक नही पहुंचता है। मानव अधिकार शिक्षा को महत्व देते हुए इस सन्दर्भ में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उन्नीकृष्ण जे.पी. एण्ड अदर्स बनाम स्टेट आफ आन्ध्र प्रदेश और अन्य में दिया गया निर्णय महत्वपूर्ण है। इसके अनुसार पूरे देश में 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को आवश्यक रुप से शिक्षा को सिर्फ घोषणापत्रों से ले जाकर कक्षाओं तक नहीं छोड़ना है बल्कि उसे मानव अधिकार हिंसा का अंत करने वाले तथा मानव अधिकार संस्कृति (शांन्ति, प्रजातन्त्र, पोषणीय विकास, सहनशीलता एवं मानव सम्मान का वातावरण) विकसित करने वाले औजार के रुप में विकसित करना है ।

समय आ गया है कि विश्वविद्यालयों में मानव अधिकार विषय को पढ़ाने के लिये अलग फैकल्टी बनायी जानी चाहिये। इसके अतिरिक्त मानव अधिकार विभाग में नियुक्तियों के लिये सिर्फ और सिर्फ मानव अधिकार विषयों में योग्यता रखने वाले व्यक्तियों का ही अध्यापको के रुप में चयन किया जाना चाहिये इस ओर सरकार को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

वर्तमान में चल रहा मानवअधिकार शिक्षा का तृतीय चरण (2015 से 2019) जिसका अधिकांश समय गुजर चुका है लेकिन भारत में किए जा रहे प्रयासों पर नजर डालें तो पाते है कि उपरोक्त संन्दर्भ में तृतीय चरण के लिये भी कोई प्रयास दृष्टिगोचर नही होते हैं विशेषकर पत्रकारों और मीडिया व्यवसाइयों के सन्दर्भ में।

भारत में मानवअधिकार शिक्षा के क्षेत्र में संवर्द्धन के प्रयासों में कमी के पीछे राजनैतिक इच्छाशक्ति की कमी स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर होती है। यह कहने में कोई अतिश्योक्ति न होगी कि मानव अधिकार शिक्षा को हमारे अस्तित्व व सतत् विकास की आवश्यक शर्त माना जा सकता है। मानव अधिकार शिक्षा सतत् विकास की जननी है। समाज में मानव अधिकार शिक्षा के प्रचार प्रसार के बिना सतत् विकास और मानवाधिकार सस्ंकृति के विकास की परिकल्पना भी बेमानी हैं।

संदर्भ–स्रोत

1. मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 (मानव अधिकार संरक्षण संशोधन/ अधिनियम, 2006 (2006 का अधिनियम संख्या 43) द्वारा संशोधित रूप में)

2. यूनाइटेड नेशन्स जनरल असैम्बली (2012) यूनाइटेड नेशन्स डिक्लेरेशन आफ हयूमन राइटस एजूकेशन एण्ड ट्रेनिंग रिवोल्यूशन एडप्टेड बाई द जनरल असैम्बली ऑन 19 दिसम्बर 2011, ए/आर ई एस/ 66/132
3. ह्यूमन राइडस्ज कोर्स बार प्रायोरिटी फॉर वरसिटीज, द हिन्दू, जनवरी, 2013
4. रिक्मण्डेशन्स ऑफ नेशनल ह्यूमन राइटस कमीशन, ह्यूमन राइटस एजूकेशन एट दी यूनिवर्सिटी एण्ड कालेज लेवल, एन एच आर सी, जुलाई, 2007
5. गाइडलाइन फॉर नेशनल प्लान ऑफ एक्शन फॉर हयूमन राइट्स एजूकेशन, 1997
6. संयुक्त राष्ट्र संघ का अधिकरण पत्र 1949
7. मानव अधिकार की सार्वजनीन घोषणा, 1948
8. आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों से सम्बन्धित अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966
9. नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारों सम्बन्धी अन्तराष्ट्रीय प्रसंविदा 1966
10. सभी प्रकार के नस्ली विभेदो के उन्मूलन से सम्बन्धित अन्तरराष्ट्रीय अधिसमय 1965
11. यातना और अन्य क्रूर, अमानवीय या अपमान जनक व्यवहार तथा दण्ड के विरुद्ध अभिसमय 1984
12. महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के विभेदों की समाप्ति सम्बन्धी अभिसमय, 1979
13. विकास के अधिकार से सम्बन्धित घोषणा, 1986 14. बच्चों के अधिकारों से सम्बन्धित अभिसमय, 1989
14. अर्जुन देव, इन्द्रा अर्जन देव, सुप्ता दास मानव अधिकार, स्त्रोत ग्रंथ, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, 1998 नई दिल्ली।
15. माडल करीकुलम ऑफ हयूमन राइट्स एण्ड ड्यूटीज एजूकेशन, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा वर्ष 2001 मे जारी।
16. यूनाइटेड नेशन डिकेड फार हयूमन एजूकेशन (1994) 23 दिसम्बर के प्रस्ताव 49/184, ए/आर ई एस/ 49 184, के तहत महासभा द्वारा अंगीकृत।
17. बर्ड प्रोग्राम फॉर हयूमन राइट्स एजूकेशन (2004), 10 दिसम्बर 2004 के प्रस्ताव 59/113, ए/ आर ई एस /59/113 के तहत महासभा द्वारा अंगीकृत। 16. मूल चन्द शर्मा, हयूमन राइटस एजूकेशन इन यूनिवर्सिटीज एण्ड कालेजेज।

****

खण्ड V

न्याय, सुशासन और मानव अधिकार पर केन्द्रित आलेख

आलोचना और दूसरों की बुराइयां करने में बहुत फ़र्क है। आलोचना करीब लाती है और बुराइयां दूर करती हैं।

—मुंशी प्रेमचंद

मानव अधिकारों का संवर्द्धन एवं संरक्षण : सरकार की भूमिका

सुदर्शन वर्मा*
नितेश कुमार चतुर्वेदी#

बीज शब्द : मानवाधिकार, मौलिक अधिकार, योजना, समावेशी विकास

सारांश

मानव अधिकारों का महत्व आज निर्विवाद है। इन्हें नैसर्गिक अधिकार के रूप भी परिभाषित किया जाता है जिससे नागरिकों को किसी प्रकार से वंचित नहीं किया जा सकता। यह हमारी प्रकृति के मूल तत्वों में है। यह एक राजनीतिक एवं नैतिक संकल्पना होने के साथ–साथ विधिक भी है। भारत सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं में इसकी स्पष्ट झलक देखने को मिलती है। सरकार ने प्रमुख क्षेत्रों के चयन के अनुसार मुख्य समस्याओं को ध्यान में रखते हुए जनता के लिए शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, खाद्य सुरक्षा, आवास सुरक्षा, जीवन बीमा, उज्जवला योजना, सौभाग्य योजना जैसे अनगिनत योजनाओं के माध्यम से मानवाधिकारों को सुरक्षित एवं संरक्षित रखने का प्रयास किया है। उचित समावेशी विकास को बढावा देने तथा मानव विकास संकेतकों में सुधार की गति को बढाने हेतु आवश्यक सुधार किए जा रहे हैं।

मानव अधिकारों का महत्व आज निर्विवाद है। विश्व में मानवाधिकार की भावना का श्रीगणेश भारत की सभ्यता के साथ हुआ। यहां पर 'वसुधैव कुटुम्बकम' तथा 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' जैसे उदार चिन्तन के कारण मानव को सभी प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ माना गया। अधिकार एक ऐसी व्यवस्था है जो मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में सहायक होती है। हेराल्ड लास्की के अनुसार, अधिकार एक ऐसी व्यवस्था है जिसके बिना सामान्यतः कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता। अतः मानवाधिकार वह अधिकार है, जो प्रत्येक मनुष्य के लिए हैं, वह इसलिए है कि वह मानव है, चाहे वह किसी भी राष्ट्रीयता, प्रजाति, नस्ल, धर्म, लिंग का हो। मानव अधिकार को कभी–कभी मौलिक या नैसर्गिक अधिकार भी कहते हैं, क्योंकि उनको विधायिनी या सरकार के किसी कृत्य द्वारा छीना नहीं जा सकता।

*आचार्य, अधिष्ठाता छात्र कल्याण (महिला), विभागाध्यक्ष, विधि अध्ययन विद्यापीठ, लखनऊ।
#विधि परास्नातक, विधि अध्ययन विद्यापीठ, लखनऊ।

मानव अधिकार तथा मौलिक स्वतंत्रताएं हमें अपने गुणों, ज्ञान, प्रतिभा तथा अन्तः विवेक का विकास करने में सहायक होते हैं। इनसे भौतिक, आध्यात्मिक तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति एवं सन्तुष्टि संभव हो पाती है। मानवाधिकार वास्तव में हमारी प्रकृति के मूल तत्वो में है जो हमारे दैनिक जीवन को विभिन्न रूपो में प्रभावित करती है। मानवाधिकार अब एक राजनैतिक एवं नैतिक संकल्पना न रह कर एक विधिक संकल्पना भी है। मानवाधिकार अब विकसित होते हुए विधि शास्त्रीय साहित्य का विषय वस्तु बन गया है।

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 की धारा 2 (घ) में मानव अधिकार को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि,''मानव अधिकार से तात्पर्य स्वतंत्रता, समानता और व्यक्ति की गरिमा से सम्बन्धित अधिकार अभिप्रेत है, जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत किए गये है, या अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सन्निविष्ट और भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय है''।

विशाखा बनाम राजस्थान राज्य के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने श्रमजीवी महिलाओं के प्रति कार्यस्थल पर होने वाले उत्पीड़न को रोकने के लिए जब तक विधि का निर्माण नहीं हो जाता, तब तक के लिए विस्तृत मार्गदर्शक सिद्धान्त विहित किया। न्यायालय ने कहा यदि उक्त विषय पर विधि नहीं है तो मानव अधिकारों की परिभाषा में यह देखना उचित है कि क्या अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में इसका उल्लेख है कि नहीं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि विधि की अनुपस्थिति मात्र से मानव अधिकारों के उल्लंघन से समझौता नहीं किया जा सकता। निश्चित तौर पर मानव अधिकार से तात्पर्य उन सभी आवश्यक अधिकारों से है जो व्यक्ति को मानव गरिमा के साथ जीवन जीने के अधिकार में सम्मिलित हैं।

मेनका गॉधी बनाम भारत संघ के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने जीवन के अधिकार की एक नई व्याख्या दी और कहा कि जीवन का अधिकार केवल भौतिक अस्तित्वों तक सीमित नहीं है बल्कि इसमें मानव गरिमा को बनाये रखते हुए जीवन जीने का अधिकार है जैसा कि **मन बनाम इलिनायस** के विनिश्चय का अनुसरण करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि अन. 21 में प्रयुक्त 'जीवन' शब्द का अर्थ केवल पशुवत जीवन नहीं है वरन उन सभी सीमाओं एवं सुविधाओं तक विस्तृत है जिसमें मानवीय गरिमा के साथ जीवन का उपभोग किया जाता है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना संविधान का सारांश है, यह संविधान के दो तत्वों को स्पष्ट करती है:—

1– शासन व्यवस्था का उद्देश्य

2– शासन व्यवस्था का स्वरूप

जैसा कि न्यायाधीश श्री हिदायतुल्लाह ने कहा था "प्रस्तावना संविधान की आत्मा है, जिसमें अपने देश की सम्प्रभुता, समाजवादिता धर्म निरपेक्षता तथा लोकतान्त्रिक शासन की झलक मिलती है, साथ ही अपने देश की न्यायिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक सुरक्षा भी प्रदान करती है।"

अधिकारों का मूलभूत आधार है **"सामाजिक कल्याण का भाव"** और यही सामाजिक कल्याण की भावना ही शासन व्यवस्था का उद्देश्य है। इस प्रकार व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक हितों की सुरक्षा करना ही मानवाधिकार का संरक्षण है। इनके रूप भिन्न–भिन्न हैं लेकिन लक्ष्य मानव हितों की संरक्षा एवं सुरक्षा है। इस तरह मानवाधिकार एक सामाजिक परिस्थिति है जिनके बिना साधारणतः कोई मनुष्य अपना सर्वांगीण विकास नहीं कर सकता। भारत में आवश्यक मानवाधिकारों को संविधान के मौलिक अधिकारों (भाग–3) एवं राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों (भाग–4) वाले हिस्से में शामिल किया गया है।

भारतीय संविधान के अनु. 51-A(a) में यह नागरिकों का मूल कर्तव्य है कि वे संविधान का पालन करें तथा उसके आदर्शो एवं संस्थाओं का भी सम्मान करें। इस प्रकार प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह मानव अधिकारों का संरक्षण करें, जो कि संविधान के आदर्श हैं।

संविधान की प्रस्तावना में परिकल्पित लोकहितकारी राज्य एवं समाजवादी समाज की स्थापना का आदर्श तभी प्राप्त किया जा सकता है जब सरकार नीति निर्देशक तत्वों (भाग–4) को लागू करने का प्रयत्न करें। राज्य का यह कर्तव्य है कि जनता के हित और आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना के लिए इनको यथाशक्ति कार्यान्वित करने का प्रयास करें। नीति निर्देशक तत्वों में वे आदर्श निहित हैं जिनको प्रत्येक सरकार अपनी नीतियों के निर्धारण और कानून बनाने में सदैव ध्यान में रखेगी, अनु. 37 के अनुसार नीति निर्देशक तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं तथा विधि बनाने में इन तत्वों को लागू किया जायेगा। यद्यपि सरकारों ने इस दिशा में जो कुछ किया है कम है परन्तु सरकारों का कार्य उत्साहवर्धक एवं सराहनीय रहा है। इन तत्वों को लागू करने की प्रक्रिया एक निरन्तर प्रक्रिया है और जो भी सरकारें सत्ता में आएंगी वे इन्हें कार्यान्वित करने के लिए यशाशक्ति प्रयास करेगी।

2— मानव अधिकारों के प्रवर्तन में मूलभूत समस्याएं

आज भी कुछ प्रमुख क्षेत्र हैं जिनमें समस्याओं का निराकरण नहीं हो पाया है, जिनके कारण मानव अधिकारों के प्रवर्तन के लिए कार्यक्रम, योजनाएं एवं नीतियां बनाकर उनकी मूल समस्याओं के निराकरण का प्रयास किया जा रहा है। कुछ प्रमुख समस्याएँ इस प्रकार हैं :–

1. भोजन एवं पोषाहार की समुचित व्यवस्था का अभाव।
2. स्वास्थ्य सम्बन्धी चुनौतियों का पूर्ण निराकरण न हो पाना।
3. अशिक्षा की समस्या।
4. आश्रयहीनता की समस्या।
5. रोजगार एवं स्वरोजगार की उचित व्यवस्था का अभाव।
6. सामाजिक सुरक्षा के कार्यक्रमों का उचित क्रियान्वयन न होना।
7. गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रमों के उचित एवं पारदर्शी क्रियान्वयन का अभाव।
8. किसानों की आय में वृद्धि का अभाव।
9. शोषित, वंचित एवं समाज के पिछडे वर्गो के अधिकारों के क्रियान्वयन का अभाव।
10. सामाजिक असमानता।

उपर्युक्त समस्याओं का समाज में विद्यमान होने के कारण हैं:–

1. अशिक्षा (अधिकारों का ज्ञान न होना)।
2. विलम्बित एवं महंगी न्याय प्रक्रिया।
3. भ्रष्टाचार।
4. परिवार नियोजन (जनसंख्या नियन्त्रण) का अभाव।
5. आत्मकेन्द्रित तथा स्वार्थी स्वभाव।
6. सरकार के कार्यक्रमों एवं नीतियों के उचित क्रियान्वयन एवं समीक्षात्माक अध्ययन का अभाव।

3– भारत सरकार विभिन्न क्षेत्रों में मूल मानव अधिकारों को संरक्षित करने के लिए कई प्रकार के कार्यक्रमों एवं योजनाओं का कार्यान्यवन करती है। इनका संक्षिप्त विवरण अधोलिखित है:–

(A) शिक्षा क्षेत्र –

शिक्षा एक सामाजिक एवं राजनीतिक आवश्यकता है। शिक्षा के बिना प्रगति एवं विकास लंगड़े रहते हैं। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्तित्व को महिमान्वित करना एवं पूर्णता की ओर ले जाना है। भारत सरकार की वे प्रमुख कार्यक्रम एवं योजनाए जिनके माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित एवं स्वावलम्बी बनाना है निम्नांकित हैं:–

(i) अटल एनोवेशन कार्यक्रम

(ii) गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का मदरसा कार्यक्रम

(iii) बालिकाओं के प्राथमिक शिक्षा का राष्ट्रीय कार्यक्रम

(iv) अनिवार्य एवं मुक्त शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009

(v) सर्वशिक्षा अभियान

(vi) कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय

(vii) राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान

(viii) जवाहर नवोदय विद्यालय

(ix) महिला समाख्या कार्यक्रम

(x) दशमोत्तर छात्रवृत्ति एवं शुल्क प्रतिपूर्ति योजना

(xi) पूर्वदशम् छात्रवृत्ति एवं शुल्क प्रतिपूर्ति योजना

(xii) आई आई टी,आई आई एम, एवं केन्द्रीय विश्वविद्यालयों की स्थापना

(xiii) राजीव गांधी राष्ट्रीय अध्येता वृत्ति (RGNF)

(xiv) कनिष्ठ शोध अध्येता वृत्ति (JRF)

(xv) सैनिक विद्यालयों एवं केन्द्रीय विद्यालयों की स्थापना।

(B) खाद्य सुरक्षा से सम्बनिधत कार्यक्रम एवं नीतिया –

भोजन मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है। जीवन के लिए भोजन का अधिकार जीवन के अधिकार का एक आवश्यक घटक एवं संविधान के अनु. 21 के अन्तर्गत मौलिक अधिकार भी है।

पीपुल्स यूनियन फार सिविल लिबर्टीज बनाम भारत संघ के वाद में भूख एवं भूखमरी से होने वाली मौतो का समाधान करने में राज्य की असफलता को चुनौती दी गयी। इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने जीवन के अधिकार से उत्पन्न होने वाले भोजन के संवैधानिक अधिकार को पहचानते हुए विभिन्न कार्यक्रमों के उचित क्रियान्वयन के सम्बन्ध में निर्देश देते हुए अन्तरिम आदेशों की श्रृंखला जारी की। भारत सरकार एकीकृत बाल विकास सेवाएं, मिड डे मिल योजना, खाद्य सुरक्षा योजना,सार्वजनिक वितरण प्रणाली जैसी भोजन आजीविका एवं सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम कार्यान्वित कर रही है। ये मूलतः कमजोर वर्गो के लोगो को भोजन उपलब्ध कराने में सहायता कर रही हैं। इनमें प्रमुख कार्यक्रम एवं योजनाएं निम्नांकित हैः–

(i) राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम :

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 के प्रावधानों के अन्तर्गत प्रत्येक परिवार के सदस्यों का संख्या के अनुसार प्रति व्यक्ति 5 किलो अनाज दिया जा रहा है। अनाज बहुत ही मामूली मूल्य क्रमश 3, 2, 1 रूपया प्रति किग्रा चावल, गेहूं एवं मोटा अनाज दिया जा रहा है। इसके अन्तर्गत भारत की कुल आबादी का 2/3 हिस्सा शामिल है। इस कार्यक्रम का लाभ भारत का प्रत्येक गरीब पा रहा है।

(ii) मिड–डे मिल योजना (MDM):

भारतीय संविधान के अनु. 47 में मानव के पोषाहार स्तर को सुदृढ करने तथा कुपोषण को दूर करने के लिए भारत सरकार ने 15 अगस्त 1995 को 2408 ब्लाकों में पोषाहार युक्त प्राथमिक शिक्षा की राष्ट्रीय कार्य योजना प्रारम्भ की। वर्ष 1997–98 में यह सम्पूर्ण भारत में लागू हो गई। वर्ष 2007 में प्राथमिक कक्षाओं में कक्षा 1–5 तक के बच्चों में पकाया हुआ भोजन देने का प्रबन्ध किया गया। वर्ष 2008–09 में यह मध्याह्न भोजन योजना सम्पूर्ण भारत के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक कक्षाओं (1 से 8) तक में लागू कर दी गई।

(iii) अन्त्योदय अन्न योजना (AAY):

इस योजना का शुभारम्भ 1 मार्च 2000 को किया गया जिसका लक्ष्य भारत के गरीब से गरीब व्यक्ति को भोजन सुनिश्चित कराना है। इस योजना के लाभार्थी को 35 किग्रा अनाज दिया जाता है। भारत सरकार सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से 15 किग्रा गेहू दो रूपये एवं 20 किग्रा चावल 3 रूपये किग्रा की दर पर दिया जाता है।

(iv) अन्नपूर्णा अन्न योजना :

(v) एकीकृत बाल विकास सेवाएँ :

(C) स्वास्थ्य सम्बन्धी नीतियां एवं कार्यक्रम :–

प्रत्येक मनुष्य गरिमापूर्ण जीवन जीने के लिए उपयोगी स्वास्थ्य मानकों के आस्वादन का हकदार है। मनुष्य के अन्य मानवाधिकारों की कवायद के लिए यह अपरिहार्य है। सभी व्यक्तियो के स्वास्थ्य का सम्बर्धन, संरक्षण एवं परिरक्षण करना राज्य का दायित्य है भारत के संविधान में स्वास्थ्य के अधिकार को अनु. 21 के अन्तर्गत मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया है। स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार के लिए निम्नांकित कार्यक्रम एवं योजनाएं चलायी जा रही है।

(i) **आयुष्मान भारत योजना** : भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने उच्चीकृत स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने हेतु भारत की लगभग आधी आबादी को स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने के लिए छत्तीसगढ के बीजापुर से 'आयुष्मान भारत' नामक स्वास्थ्य सेवा को प्रारम्भ किया था। कई विद्वानजनो ने इसे अमेरिका में लागू ओबामा केयर स्वास्थ्य कार्यक्रम के तर्ज पर मोदी या नमो केयर नाम दिया है। सरकार उपस्वास्थ्य केन्द्रों/प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के उन्नयन के जरिये ऐसे 150000 समुचित संसाधन वाले स्वास्थ्य और कल्याण केन्द्रो की स्थापना के प्रति समर्पित है जहॉ व्यापक प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा मिल सके, जिनमें मुख्य औषधि और जॉच सुविधा भी शामिल है। जिसका लक्ष्य 10.74 करोड परिवार यानी 50 करोडों लोगों को 500000 रूपये की स्वास्थ्य बीमा कवर मिलेगा।

(ii) **प्रधानमंत्री जन औषधालय केन्द्र** : इस योजना का मुख्य उददेश्य आवश्यक दवाओं का सस्ते दामों पर बिक्री है। इस योजना के अन्तर्गत जेनरिक दवाओं की बिक्री आती है जो सस्ती एवं प्रभावी है। भारत में करीब 2200 केन्द्रों पर सस्ती दवाओं की बिक्री की जा रही है।

(iii) **राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन** : राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन योजना 12 अप्रैल 2005 को भारत के 18 राज्यों में कमजोर स्वास्थ्य सुविधाओं को सुदृढ करने के लिए लागू किया गया। इसका मुख्य उददेश्य ग्रामीण भारत के लोगों की स्वास्थ्य सुविधाओं में बेहतरी करना था। इसके अन्तर्गत अन्य प्रमुख योजनाएं निम्नवत हैं –

(a) प्रधानमंत्री मातृ वन्दना योजना, (b) जननी सुरक्षा योजना, (c) जननी शिशु सुरक्षा योजना, (d) राष्ट्रीय बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम, (e) राष्ट्रीय परिवार नियोजन क्षतिपूर्ति योजना तथा (f) राष्ट्रीय तपेदिक निवारण कार्यक्रम।

4. **राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन** : यह कार्यक्रम भी राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन का 12 उप कार्यक्रम है। यह कार्यक्रम 1 मई 2013 को लागू किया गया, यह कार्यक्रम मूलरूप से 50000 से अधिक शहरी आबादी वाले राज्यों की राजधानी, जिला मुख्यालयों, नगर निगमों, शहर/टाउन आदि में लागू किया गया।

5. **मिशन इन्द्रधनुष** : इस कार्यक्रम के माध्यम से बड़ी मात्रा में बच्चों का टीकारण किया जा रहा है। जिससे बच्चों का स्वास्थ्य सुदृढ करने का प्रयास किया जा रहा है। 31500000 बच्चों का टीकाकरण किया गया है। मिशन इन्द्रधनुष से सुनिश्चित किया गया है कि 201 जिलों में पूर्ण टीकाकरण की दर के 61 प्रतिशत की तुलना में 6.7 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

(D) आश्रय (आवास) सम्बन्धी कार्यक्रम एवं नीतियॉं :

मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में प्रमुख रोटी, कपड़ा एवं मकान आते हैं। इस प्रकार आश्रय (आवास) मनुष्य का मानव अधिकार है जैसा कि चमेली सिंह बनाम उत्तर प्रदेश के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि अनु. 21 के जीवन के अधिकार में आश्रय का अधिकार मूल मानव अधिकार है। आवास से सम्बन्धित प्रमुख कार्यक्रम एवं योजनाएं निम्नवत हैं:

(i) **प्रधानमंत्री आवास योजना** :– प्रधानमंत्री आवास योजना के माध्यम से सम्पूर्ण भारत में करीब गरीबों को 10000000 आवास प्रदान किया गया, इस कार्यक्रम से मुख्य रूप से शहरी एवं ग्रामीण गरीब आबादी को लाभ पहुॅंच रहा है।

(ii) **इन्दिरा आवास योजना** :– इन्दिरा आवास योजना ग्रामीण विकास मंत्रालय भारत सरकार के तहत एक महत्त्वाकांक्षी योजना है जिसका मुख्य उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों जो कि आश्रयविहीन है या कच्चा मकानों में रहते हैं जो आवास की सुविधा प्रदान करना है। इस योजना के अन्तर्गत 70000 रूपये समतल भूमि पर एवं 75000 रूपये पहाड़ी भूमि पर मकान बनाने के लिए भारत सरकार देती है। इस योजना में 60,15 एवं 3 प्रतिशत दलित आदिवासी, अल्पसंख्यकों एवं विकलांगों को लाभ दिया जाता है। इस योजना में केन्द्र एवं राज्य सरकारों का अंशदान क्रमश 75 : 25 का है, एवं पूर्वोत्तर राज्यों में 90 : 10 तथा संघ शासित प्रदेशों में 50 : 50 का है।

(E) जीवन बीमा एवं पेंशन योजनाएं :

वृद्ध महिला एवं विकलांगजनों के लिए भारत सरकार विभिन्न प्रकार की पेंशन

योजनाएं चलाती है जिससे उनके भरण पोषण एवं दूसरों पर निर्भरता को कम किया जा सके। दुर्बल वर्ग के लोगों के लिए एवं असंगठित क्षेत्र में कार्यरत विभिन्न व्यक्तियों को निम्न कार्यक्रमों के माध्यम से स्वायत्तता प्रदान की जा रही है।

(i) अटल पेंशन योजना (APY):

इस योजना का शुभारम्भ 1 जून 2015 को किया गया। 2011–12 के सांख्यिकी गणना के अनुसार असंगठित क्षेत्र में कार्यरत 47.29 करोड़ लोगों के पास कोई पेंशन योजना नहीं थी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य आयु आधारित आय योजना द्वारा राष्ट्रीय पेंशन योजना में असंगठित क्षेत्र में कार्यरत लोगों को शामिल करना है। इस योजना के अन्तर्गत 60 वर्ष उम्र के बाद प्रत्येक व्यक्ति 1000, 2000, 3000, 4000 एवं 5000 रूपये प्रतिमाह पेंशन के रूप में देने की योजना है। इस योजना में दो प्रकार से सहभागिता सुनिश्चित की जा सकती है।

(a) 42 रूपये से 210 रूपये तक प्रतिमाह 18 वर्ष के उम्र से जमा करने पर प्राप्त की जा सकती है।

(b) 291 से 1454 रूपया तक प्रतिमाह 18 वर्ष के उम्र से जमा करने पर प्राप्त की जा सकती है।

(ii) इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय पेंशन योजना :

इस पेशन योजना का प्रारम्भ 15 अगस्त 1995 को हुआ। राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना को 19 नवम्बर 2007 का नाम बदलकर इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना कर दिया। इस योजना के अन्तर्गत 65 वर्ष से अधिक आयु के पुरुषों एवं महिलाओं को राज्य एवं केन्द्र के अंशदान के माध्यम से 400 रूपये प्रतिमाह पेंशन दिया जाता है। अप्रैल 2011 से गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों को 60 वर्ष की उम्र से पेंशन दी जाती है।

(iii) इन्दिरा गॉधी राष्ट्रीय विधवा पेंशन योजना :

यह योजना ग्रामीण विकास मंत्रालय भारत सरकार द्वारा फरवरी 2009 में लागू किया गया था। इस योजना का लाभ उन विधवा महिलाओं को दिया जाता है जिनकी उम्र 40–79 वर्ष तक है। वर्ष 2012 के पूर्व 300 रूपये प्रतिमाह दी जाती थी, लेकिन अब 400 रूपये प्रतिमाह पेंशन दी जाती है।

(iv) इन्दिरा गॉधी राष्ट्रीय विकलांगता पेंशन योजना :

इन्दिरा गॉधी राष्ट्रीय विकलांगता पेंशन उन सभी विकलांगों को दी जाती है

जो 18 से 59 वर्ष के बीच में है तथा जो गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन करते हैं। इस योजना के अन्तर्गत 400 रूपये प्रतिमाह पेंशन केन्द्र एवं राज्य सरकार के अंशदान के माध्यम से दिया जाता है।

(v) प्रधानमंत्री जीवन बीमा योजना :

प्रधानमंत्री जीवन बीमा योजना का शुभारम्भ 1 जून 2015 को किया गया है जिसका मुख्य उद्देश्य किसी व्यक्ति की मृत्यु की दशा में वित्तीय सुरक्षा प्रदान करना है। यह वार्षिक बीमा योजना है। जिसका प्रीमियम 330 रूपये है। इस बीमा योजना के अन्तर्गत एक वर्ष के भीतर व्यक्ति की मृत्यु की दशा में 2,00,000 रूपये तक देय है।

(vi) प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना :–

प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना भी 1 जून 2015 को प्रारम्भ हुई। इस बीमा योजना का मुख्य उद्देश्य मृत्यु एवं विकलांगता जो दुर्घटना के कारण होती है। इससे सभी बचत खाता धारक जिनकी उम्र 18 से 70 वर्ष हो भागीदारी कर सकते हैं, यह बीमा योजना वार्षिक है।

(F) रोजगार सम्बन्धी नीतियां एवं कार्यक्रम :

सर्वोच्च न्यायालय ने ओलेगा तेलीस बनाम म्यूनिसिपल कारपोरेशन के वाद में यह स्पष्ट किया था कि जीविकोपार्जन का अधिकार अनु0 21 के अन्तर्गत एक मूल अधिकार है परन्तु यह एक आत्यन्तिक अधिकार नहीं है। भारत सरकार विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से व्यक्तियों के जीविकोपार्जन एवं बेहतर जीवन के लिए कार्य कर रही है, मौजूदा समय में बहुत से ऐसे कार्यक्रम एवं नीतियां हैं जिनके माध्यम से व्यक्ति के मानव अधिकारों को संरक्षित एवं सुरक्षित कर रही है। कुछ अधिकार आधारित कार्यक्रम जो लोगों की सामाजिक सुरक्षा के बडे कार्यक्रम हैं जिनके माध्यम से जीविकोपार्जन उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है। व्यक्तियों को रोटी कपड़ा एवं मकान केवल अपने कौशल, श्रम एवं रोजगार से ही मिल सकता है। कुछ प्रमुख कार्यक्रमों का उल्लेख निम्नवत है।

(i) **महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम 2005 :** राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधि0 2005 को 7 सितम्बर 2005 को पारित किया गया। इस अधिनियम का विस्तार भारत के 200 जिलों में 2 फरवरी 2006 से हुआ। 1 अप्रैल 2008 को यह कार्यक्रम सम्पूर्ण भारत में प्रभावी हो गया। इस कार्यक्रम का मुख्य उददेश्य रोजगार प्रदान करना तथा ग्रामीण भारत का विकास तथा लोगों का पलायन रोकना है। यह

अधिनियम प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को जो परिवार का सदस्य है, 100 दिन के नियोजन की गारन्टी देता है। यह कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है। ग्रामीण भारत के दलित, पिछड़ा एवं आदिवासियों के लिए वरदान साबित हुई है।

(ii) **मुद्रा बैंक योजना :** मुद्रा बैंक योजना के माध्यम से युवाओं एवं महिलाओं को स्वरोजगार प्रदान करने के लिए महत्वाकांक्षी योजना लागू की गई। इस योजना के अन्तर्गत हितग्राहियों को बैंक के माध्यम से बिना किसी जमा सम्पत्ति के 50000 रूपये तक धनराशि प्राप्त हुई। यह बहुत बड़ा स्वरोजगार कार्यक्रम है।

(iii) **दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना :** 25 सितम्बर 2015 को ग्रामीण विकास मंत्रालय भारत सरकार ने इस योजना को 610 जिलों में लागू किया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य 10 लाख ग्रामीण युवाओं के कौशल का विकास करना है, ताकि 3 वर्षों के भीतर इनको रोजगार प्रदान करना है। यह कार्यक्रम मूलतः 250 व्यवसायों में युवाओं के कौशल को निखारता है, जो कि इन प्रमुख क्षेत्रों में जैसे–स्वास्थ्य, विनिर्माण, इलेक्ट्रानिक्स, आटोमोबाइल, प्लम्बिंग आदि से जुड़े हैं।

(iv) **दीन दयाल उपाध्याय श्रमेव जयते कार्यक्रम :** 16 अक्टूबर 2014 को श्रम मंत्रालय भारत सरकार ने श्रमिकों से सम्बन्धित योजना को प्रारम्भ किया।

(v) **दीन दयाल अन्त्योदय योजना :** यह योजना शहरी ग्रामीण गरीबों के लिए 25 सितम्बर 2014 को आरम्भ की गयी। इस कार्यक्रम का उद्देश्य कौशल विकास एवं अन्य माध्यमों से जीविकोपार्जन का अवसर प्रदान करना है।

(vi) **स्टार्टअप इण्डिया :**

(vii) **स्टैण्ड अप इण्डिया :**

(G) कृषि सम्बन्धी कार्यक्रम एवं नीतियां :–

भारत सरकार द्वारा वर्ष 2009–14 में 121082 करोड रूपये किसानों के कल्याण के लिए जारी किए गये जबकि मौजूदा सरकार ने वर्ष 2014–19 के लिए 211649 करोड रूपये आवंटित किए गये। साथ ही स्वामीनाथन समिति की रिपोर्ट के अनुसार लागत मूल्य का डेढ गुना भुगतान करने का काम किया है। मौजूदा समय में कृषि क्षेत्र में काफी उथल–पुथल दिख रही है परन्तु सरकार ने किसानों के हित के लिए कई प्रमुख योजनाएं प्रारम्भ की हैं, जैसे

(i) **नीम कोटेड यूरिया** : भारत सरकार ने नई यूरिया नीति लागू करके यूरिया के उत्पादन में रिकार्ड वृद्धि दर्ज की तथा यूरिया को नीम कोटेड करके भी किसानों के हित में काम किया है चूंकि पहले यूरिया को तस्करी तथा गलत प्रयोग से किसानों को समय से यूरिया खाद नही मिल पाता था, जो अब आसानी से सुलभ है। साथ ही भारत सरकार ने 10000 करोड रूपये डीएपी, एमओवी एवं काम्पलेक्स उर्वरकों पर सब्सिडी प्रदान की है।

(ii) **इलेक्ट्रानिक नेशनल एग्रीकल्चर मार्केट** : इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 87.5 लाख से अधिक किसानों एवं विक्रेताओं ने पंजीकरण कराकर 164.53 लाख टन कृषि सम्बन्धी वस्तुओं का लेनदेन किया जिसमें 41591 करोड़ रूपये भुगतान प्राप्त किया गया है।

(iii) **प्रधानमंत्री फसल सुरक्षा बीमा योजना** : प्रधानमंत्री फसल सुरक्षा बीमा योजना प्रारम्भ करके किसानों की फसलों का बीमा किया गया जिसमें प्राकृतिक आपदाओं से फसल के बर्वाद होने की दशा में उनको आर्थिक सहायता प्रदान की जा सके।

(iv) **सायल हेल्थ कार्ड** : इस कार्यक्रम के अन्तर्गत मिट्टी की गुणवत्ता जांचने के लिए करीब 17 करोड़ किसानों को सायल हेल्थ कार्ड जारी किया गया है।

(v) **सम्पदा योजना** : यह कार्यक्रम मुख्य रूप से कृषि क्षेत्र में खाद्य प्रसंस्करण के विकास के उद्देश्य से आरम्भ इस योजना के लिए 14 वित्त आयोग ने 2016–2020 की अवधि के लिए मंजूरी दी थी। इस योजना का मुख्य उददेश्य कृषि को पूरक बनाना, प्रसंस्करण का आधुनिकीकरण करना तथा कृषि अपशिष्ट को कम करना है। यह कार्यक्रम 3 मई 2017 को लागू किया गया।

(vi) किसान विकास पत्र

(vii) प्रधानमंत्री ग्राम सिंचाई योजना

(H) अन्य प्रमुख योजनाएं :

(i) **उज्जवला योजना** : इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण भारत में प्रयोग हो भोजन पकाने के परम्परागत तरीकों जैसे, लकडी, गोबर के उपले एवं अन्य के प्रयोग को बन्द करना था ताकि लोगों के नवीन ऊर्जा के माध्यम से भोजन पकाने की पद्धति का प्रयोग हो सके। इस कार्यक्रम से स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी सुधार होगा। उज्जवला योजना के अन्तर्गत अब तक कुल 41030010 गैस के कनेक्शन मुफ्त में बांटे गये हैं, जो कि ग्रामीण भारत के लिए बहुत बडा बदलाव है।

(ii) **सौभाग्य योजना** : इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण भारत के सभी गांवों में बिजली पहुँचाना है। भारत के बहुत से ऐसे गांव थे जो आजादी के बाद अंधेरे में रहने को मजबूर थे, जबकि बिजली पाने का अधिकार अनु0 21 के अन्तर्गत मूल अधिकार है। वर्तमान सरकार ने सौभाग्य योजना के अन्तर्गत 18500 गांवों के 6889956 घरों का विद्युतीकरण करके करीब सम्पूर्ण भारत को बिजलीयुक्त कर दिया है,जिससे करीब 4 करोड़ परिवारों को बिजली उपलब्ध हो पा रही है। दीनदयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना इस कार्यक्रम की मुख्य सहयोगी योजना थी। साथ में उजाला कार्यक्रम के अन्तर्गत 301482231 एल0 ई0 डी0 बल्बो का भी वितरण किया गया है।

(iii) **स्वच्छ भारत मिशन** : अस्वचछता मूलभूत समस्याओं में से एक है, क्योकि स्वच्छता से तमाम प्रकार की बीमारियों से बचा जा सकता है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने 24 सितम्बर 2014 को स्वच्छ भारत अभियान की शुरूआत की थी। इस कार्यक्रम को पूर्णरूप से 2 अक्टूबर 2014 को महात्मा गॉधी के जन्म दिवस के अवसर पर प्रारम्भ किया गया, यह कार्यक्रम ग्रामीण विकास मंत्रालय भारत सरकार द्वारा चलाया जाता है। इस का मुख्य उददेश्य सड़कों, गलियों आदि को स्वच्छ बनाना तथा ग्रामीण क्षेत्र में साफ–सफाई एवं शौचालय आदि का निर्माण करना है। महात्मा गांधी की 150 वर्षगांठ एक स्वच्छ भारत के संकल्प को पूरा करने का है, तथा इस कार्यक्रम के माध्यम से भारत को स्वच्छ देशों की श्रेणी में खडा करना है। स्वच्छ भारत मिशन के अन्तर्गत अबतक कुल 383819 गांवों को खुले शौच से मुक्त किया गया एवं करीब 78739923 शौचालयों का निर्माण भी कराया गया है। स्वच्छ भारत मिशन के तहत साफ सफाई पर लगातार बल देने से ग्रामीण भारत में स्वच्छता 39 प्रतिशत से बढ़कर 84 फीसदी हुई है। इसके स्वास्थ्यगत एवं आर्थिक लाभ दिखने शुरू हो गये हैं, इससे चिकित्सा लागत घटी है, समय की बचत हुई है और जीवन की रक्षा भी हुई है।

(iv) **डिजीटल इण्डिया**: डिजीटल इण्डिया कार्यक्रम का शुभारम्भ 21 अगस्त 2014 को हुआ था। इसका मुख्य उददेश्य सूचना प्रोद्यौगिकी को बढ़ावा देना है। इस कार्यक्रम को पूरे भारत में लागू करने के लिए पांच वर्ष निर्धारित किया गया है। इस कार्यक्रम के माध्यम से सरकारी सेवा में कागज युक्त प्रणाली को मुक्त करना तथा सभी गांवो को इण्टरनेट नेटवर्क के माध्यम से जोडना भी है। अब तक कुल 116397 गांवों को आप्टिकल फाइबर नेटवर्क के माध्यम से जोड़ दिया गया है। साथ ही कामन सर्विस सेन्टर के माध्यम से रोजगार का

भी सृजन किया गया है।

(v) **प्रधानमंत्री जनधन योजना** : 28 अगस्त 2014 को प्रधानमंत्री जनधन योजना का शुभारम्भ किया गया। यह एक प्रकार का राष्ट्रीय वित्तीय समविशन कार्यक्रम है जो वित्त मंत्रालय भारत सरकार के अधीन चलाया जा रहा है। इस योजना के अन्तर्गत अबतक कुल 32 करोड़ बैंक खाते बिना रूपये के खोले गये। इस प्रकार इस योजना के अन्तर्गत साधारण बचत खाता खोलना, डेबिट कार्ड की सुविधा एवं आवश्यकता वश 5000 रूपये तक की उधारी प्राप्त करना है।

(vi) **बेटी बचाओ बेटी पढाओ**

(vii) **धन लक्ष्मी समृद्धि योजना**

(viii) **सुकन्या समृद्धि योजना**

(ix) **राष्ट्रीय ग्राम स्वराज अभियान**

(x) **राष्ट्रीय गोकुल मिशन**

(xi) **स्मार्ट सिटी योजना**

(xii) **अमृत योजना**

(xiii) **उडान स्कीम**

(xiv) **सांसद आदर्श ग्राम योजना**

4. निष्कर्ष

यह एक सामान्य नियम है कि मानव सर्वत्र उन विधिक मूल्यों की प्राप्ति की मॉग करता है जो उनके व्यक्तिगत एवं सामूहिक हित को सुनिश्चित कर सके। व्यक्तियों को अधिकार विधि द्वारा प्रदत्त किया गया है, अतः विधि निर्माण, नीतियों एवं कार्यक्रमों को सृजित करके मानव अधिकारों की संरक्षा एवं सुरक्षा की जाती है, चूँकि हमने शासन व्यवस्था के लिए संसदीय लोकतंत्र प्रणाली को अंगीकार किया है, जो लोक कल्याण अवधारणा पर आधारित है। अतः सरकारों का कार्य मूल मानव अधिकारों को लागू करने की दिशा में उत्साहवर्धक एवं सराहनीय रहा है। मानव अधिकारों के प्रवर्तन की प्रक्रिया एक निरन्तर प्रक्रिया है, और जो भी सरकारें सत्ता में आयेंगी वे इन्हें कार्यान्वित करने के लिए यथाशक्ति प्रयास करेगी। आज भारत सरकार विभिन्न कार्यक्रमों, योजनाओं एवं नीतियों के माध्यम से मानव अधिकारों की

पुष्टि कर रहे हैं। मौजूदा सरकार पूर्ववर्ती कार्यक्रमों को छोड़कर विभिन्न क्षेत्रों में कुल लगभग 104 नये कार्यक्रमों एवं योजनाओं के माध्यम से मानव अधिकारों को धरातलीय रूप देने का प्रयास कर रही है, जो स्वागत योग्य है। परन्तु बडे दुख एवं आश्चर्य की बात है कि आजादी के लगभग 71 वर्ष बीत जाने के बाद भी भारत में भय, भूख, गरीबी एवं आश्रयविहीनता जैसी प्रमुख समस्याएं आज भी विद्यमान हैं, हालांकि यह वैश्विक समस्या भी है, परन्तु भारत जैसे विकासशील देश के लिए चिन्ता का सबब बना हुआ है। अशिक्षा, सामाजिक असमानता, भूखमरी, आश्रयहीनता, स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं तथा शोषितों, वंचितों एवं समाज के पिछड़े वर्गो के प्रति असंवेदनशीलता जैसे महत्वपूर्ण एवं ज्वलन्त मुददे हमारे विकास में बाधक हैं। जिनके समाधान के बिना रामराज्य एवं मूलमानव अधिकारों के प्रवर्तन की कल्पना ही संभव नहीं है। मौजूदा सरकार की कई योजनाएं कामयाब दिख रही है परन्तु कुछ नाकामी के दायरे में भी हैं जैसे–किसानों की आय दुगुनी करने का वादा, रोजगार के अवसर, और भ्रष्टाचार में कमी नहीं दिख रही है। इस तब्दीली में सरकार के भावी फैसले, कार्यक्रम और योजनायें अहम् भूमिका अदा कर सकती हैं। परन्तु चार साल बीत जाने के बाद भी यह समझना कठिन है कि वह पुलिस सुधार एवं शिक्षा सुधार को प्राथमिकता क्यो नही दे रही है, नई शिक्षा नीति का कुछ पता नहीं है।

उचित समावेशी विकास को बढ़ावा देने और मानव विकास संकेतकों में सुधार की गति बढ़ाने हेतु संसाधनों की प्राथमिकता का निर्धारण करने और अड़चनों को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है। इसका लक्ष्य प्रमुख कल्याण कार्यक्रमों को देश के पिछड़े क्षेत्रों तक पहॅुचाना है। शिक्षा, स्वास्थ्य और पोषण पर सरकार के प्रोत्साहन को देखते हुए यह माना जा रहा है कि मानव विकास सूचकांक क्षेत्र में बड़ा प्रभाव देख सकेंगे। इन कार्यक्रमों से उम्मीद है कि ये सभी परिवर्तन एक स्थाई विशेषता बनेंगे।

सन्दर्भ सूची

1. डा0 एस0 के0 कपूर मानव अधिकार एवं अन्तर्राष्ट्रीय विधि सेन्ट्रल ला एजेन्सी पृ0 सं0 691–692
2. डा0 टी0 पी0 त्रिपाठी मानव अधिकार एवं अन्तर्राष्ट्रीय विधि,इलाहाबाद ला एजेन्सी पृ0 सं0 24
3. A I R 1997 SCC 3011
4. A I R 1978 SC 597
5. (1876) 94 U S 113
6. मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य (1992) 3 SCC 666
7. पी यू सी एन बनाम भारत संघ (2000) 5 SCC 30

8. A I R 2001 SC 1337
9. परमानन्द कटारा बनाम भारत संध (1989) 4 SCC 1984
10. Visited on Dt 04/06/2018 – 48 monthsmygov.in
11. (1996)2 SCC 549
12. Visited on Dt 05/06/2018 – 48 monthsmygov.in
13. A I R 1986 SC 180
14. Visited on Dt 06/06/2018 – 48 monthsmygov.in
15. Visited on Dt 06/06/2018 – 48 monthsmygov.in
16. Visited on Dt 06/06/2018 – 48 monthsmygov.in
17. Visited on Dt 06/06/2018 – 48 monthsmygov.in
18. Visited on Dt 06/06/2018 – 48 monthsmygov.in
19. Visited on Dt 07/06/2018 – 48 monthsmygov.in
20. Visited on Dt 07/06/2018 – 48 monthsmygov.in
21. Visited on Dt 07/06/2018 – 48 monthsmygov.in
22. Visited on Dt 08/06/2018 – 48 monthsmygov.in
23. डॉ. अमिताभ कान्त, दैनिक जागरण– सम्पादकीय, सामाजिक प्रगति की दिशा में ठोस कदम (6 जून 2018)
24. राजीव सचान, दैनिक जागरण– सम्पादकीय, एक साल बाद की सम्भावनायें (30 मई 2018)
25. डा0 जयनारायण पाण्डेय,भारत का संविधान,सेन्ट्रल ला एजेन्सी 2015

****

मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्द्धन में मानव अधिकार संस्थाओं की भूमिका

नम्रता वर्मा*

बीज शब्द : मानवाधिकार, संरक्षण, संवर्द्धन, संगठन

सारांश

मानव अधिकारों के संरक्षण एवं उसके संवर्द्धन के लिए वर्तमान समय में अंतरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय स्तर पर अनेक सरकारी एवं गैर सरकारी संगठन कार्यरत हैं जिनकी भूमिका, कार्यपद्धति तथा संवाद शैली को समझना आवश्यक है। मानवाधिकारों की रक्षा के लिए कानून तथा प्रशासनिक व्यवस्थाओं की भी भूमिका है। साथ ही, 1993 के मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज, पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स, इंडियन ह्यूमन राइट्स कमीशन जैसी महत्वपूर्ण संस्थाएं इस दिशा में पूरी तरह सक्रिय हैं।

वर्तमान समय में अन्तरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर मानवाधिकार से सम्बन्धित विभिन्न गैर–सरकारी संगठन कार्यरत् हैं। अन्तरराष्ट्रीय गैर–सरकारी संगठनों की सदस्यता अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर होती है। और उनकी गतिविधियां अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सम्पादित होती हैं। राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित गैर–सरकारी संगठनों की सदस्यता राष्ट्रीय स्तर पर होती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रारंभ से ही गैर–सरकारी संगठन इसके सहयोगी के रूप में कार्य करते रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 'मानवाधिकारों का अन्तरराष्ट्रीय बिल' बनाए जाने में इन संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। गैर–सरकारी संगठनों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के विभिन्न अंगों द्वारा समय–समय पर की गई मानवाधिकार से सम्बन्धित विभिन्न घोषणाओं एवं उनके कार्यान्वयन में भी सहायता प्रदान की है।

गत दशकों में मानवाधिकार संस्थाओं की भूमिका और उनकीं क्रियाशीलता में निरन्तर वृद्धि हुई है। वैश्विक स्तर पर कार्यरत् लगभग सभी बड़ी मानवाधिकार संस्थायें किसी–न–किसी रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व बैंक

*वक्ता, समाजशास्त्र, सारनाथ बोधिसत्व महाविद्यालय, वाराणसी, उ० प्र०

और उसके निकायों तथा अन्तर सरकारी संगठनों से जुड़ी हैं। इनकी गतिविधियां प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में भाईचारे की भावना विकसित करने के लिए संकल्पबद्ध हैं।

मानवाधिकारों के संरक्षण व प्रोत्साहन में संलग्न संयुक्त राष्ट्र की संस्थाएं

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानवाधिकारों की रक्षा व विश्व स्तर पर इनके प्रोत्साहन हेतु निम्नलिखित संस्थाओं की स्थापना की गई है

संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग : इसकी स्थापना संयुक्त राष्ट्र की आर्थिक व सामाजिक परिषद द्वारा 1946 में की गई थी। 53 सदस्यीय आयोग का मुख्यालय जिनेवा में है। यह उल्लेखनीय है कि इसी आयोग ने कई स्वायत्त समूहों की स्थापना की है, जो विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में मानव अधिकारों की समस्या व उनके विशिष्ट उल्लंघन की रिपोर्ट आयोग को प्रस्तुत करते है इसका स्थान 2005 द्वारा स्थापित मानवाधिकार परिषद ने ले लिया है।

मानवाधिकारों के लिए उच्चायुक्त : इस पद का सृजन 1993 में किया गया था। इसके मुख्य कार्य हैं

- सभी के द्वारा नागरिक व राजनीतिक अधिकारों का उपयोग सुनिश्चित करना,
- मानवाधिकार केन्द्र को उसकी गतिविधियों में सहायता करना,
- मानवाधिकारों की रक्षा हेतु अन्तरराष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित करना।

संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार केन्द्र : इसका मुख्यालय जेनेवा में है, इस केन्द्र में मानवाधिकार उच्चायुक्त तथा पांच प्रकार के मानवाधिकारों हेतु पांच सहायक महासचिवों का कार्यालय है। इस केन्द्र का मुख्य कार्य मानवाधिकारों के क्षेत्र में शोध करना तथा सम्बन्धित जानकारियों को एकत्र करना है, ये सूचनाएं संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्य अंगों द्वारा प्रयोग में लाई जाती हैं।

महिलाओं की स्थिति के लिए संयुक्त राष्ट्र आयोग : इस आयोग की स्थापना आर्थिक व सामाजिक परिषद द्वारा 1946 में की गई थी। इस आयोग का प्रमुख उद्देश्य विभिन्न देशों में महिलाओं के मौलिक अधिकारों का अनुपालन सुनिश्चित करना है। आयोग विभिन्न देशों द्वारा महिलाओं के अधिकारों की रक्षा हेतु लिए गए उपायों का निरीक्षण करता है। वर्ष 2010 में महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु इस सम्बन्ध में सभी अभिकरणों को एकीकृत कर 'यू0एन0 मेन' नाम की संस्था की स्थापना की गई है।

मानव अधिकार परिषद् : इस संस्था की स्थापना संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 2005 में की गई थी। यह संस्था मानवाधिकारों का अनुपालन सुनिश्चित करने हेतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था है। संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रत्येक सदस्य देश के लिए अपने यहाँ मानवाधिकारों की रक्षा हेतु किए गए उपायों की जानकारी इस संस्था को दिया जाना आवश्यक है, यदि काउंसिल रिपोर्ट से संतुष्ट नहीं है, तो वह स्वतंत्र जाँच आयोग की स्थापना कर सकती है। 47 सदस्यीय इस परिषद् के सदस्यों का कार्यकाल 4 वर्ष है तथा इसका मुख्यालय जेनेवा में है।

वर्तमान में मानवाधिकार के संवर्द्धन एवं संरक्षण में मानवाधिकार संगठनों की भूमिका

वर्तमान में मानवाधिकार संगठन मानवाधिकार के संवर्द्धन एवं संरक्षण में तीन रूपों में सहायक हो सकते हैं। **प्रथम,** यह कि मानवाधिकार के उल्लंघन का पता लगाकर जनसाधारण के ध्यान में लाना तथा उनके निवारण के लिए प्रयत्न करना। **दूसरा,** यह है कि मानवाधिकार संगठन का जनसाधारण से जुड़े होने के कारण मानवाधिकार के उल्लंघन के गम्भीर मामलों में अन्वेषण की प्रक्रिया में हर प्रकार से मदद करना। **तीसरा,** जैसाकि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग कहता है, मानवाधिकार कार्य में विशिष्ट क्षेत्रों में मानवाधिकार संगठनों की निजी एवं उच्च स्तरीय विशेषज्ञता आयोग के लिए अत्यधिक उपयोगी स्रोत बन सकती है, क्योंकि आयोग विशिष्ट मुद्दों व समस्याओं का अध्ययन करता है और उसके सम्बन्ध में अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करता है।

मानवाधिकार संगठनों द्वारा वर्तमान में मानवाधिकार के संवर्द्धन एवं संरक्षण में निभाई जा रही भूमिका इस प्रकार है :–

मानव अधिकारों के प्रति जागरूकता लाना मानवाधिकार संगठनों द्वारा राज्य ही नहीं, बल्कि देश व विश्व में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता लाने के क्षेत्र में बहुत ही सराहनीय कार्य किए जा रहे है। ग्रामीण जनता में अधिकारों के प्रति जागरूकता लाने के लिए इन संगठनों द्वारा नुक्कड़ नाटकों, स्थानीय भाषा में गीत तैयार कर तथा वाद–विवाद प्रतियोगिताओं आदि के आयोजन किए जाते है।

जनहित याचिकाएं दाखिल करना मानवाधिकार संगठन बड़े पैमाने पर व्यक्तियों को न्याय उपलब्ध कराने के उद्देश्य से जनहित याचिकाओं द्वारा न्यायालयों के समक्ष वाद दाखिल करते है।

सामाजिक परिर्वतन में भागीदारी समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था, साम्प्रदायिकता की समस्या, स्त्री–पुरूष के बीच गैर–बराबरी की समस्या, स्वतंत्रता,

न्याय और बंधुत्व के मूल्यों पर आधारित नई व्यवस्था लाने में मानवाधिकार संगठनों द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जाती है।

मानवाधिकार मानक निश्चित करना: मानवाधिकार संगठनों की भूमिका अन्तरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय व राज्य सभी स्तरों पर मानव अधिकारों के मानक स्तर निश्चित करने में महत्वपूर्ण है। यू.एन. के मानवाधिकार आयोग में मानवाधिकार परिषद् द्वारा भी मानक निश्चित करते समय विश्व स्तर के मानवाधिकार संगठनों से विचार–विमर्श किया जाता है।

मानवाधिकार से सम्बन्धित कानून बनाने हेतु दबाव डालना: मानवाधिकार संगठनों द्वारा सरकार को मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए नए कानून बनाने के लिए दबाव डाला जाता है।

सरकार द्वारा बनी योजनाओं, कार्यक्रमों, कानून व व्यवस्थाओं का सही कार्यान्वयन करना: मानवाधिकार संगठनों द्वारा सरकार द्वारा बनी योजनाओं एवं कार्यक्रमों का सही कार्यान्वयन किया जाता है। इसके महत्वपूर्ण कार्य विचार गोष्ठियॉं आयोजित करना तथा पोस्टर, पुस्तिकाएं प्रकाशित कर योजनाओं की जानकारी लोगों तक पहुॅंचाना है।

मध्यस्थता की भूमिका: मानवाधिकार संगठनों द्वारा जनता व सरकार के मध्य मध्यस्थता की भूमिका निभाई जाती है। जिसमें यह संगठन जनता की आवश्यकताओं एव ंअपेक्षाओं को सरकार तक पहुॅंचाते हैं।

विधिक सहायता प्रदान करना: मानवाधिकार संगठन ऐसे मामलों में पहल करते हैं, जिन मामलों में किसी व्यक्ति के अधिकारों का उल्लंघन हुआ हो, किन्तु पीड़ित व्यक्ति द्वारा अज्ञानता के कारण या संसाधनों की कमी के कारण न्यायालय के समक्ष कोई कदम नहीं उठाया गया हो।

अन्तरराष्ट्रीय निकायों एवं सरकारों से वार्तालाप: मानवाधिकार संगठन सरकारों से मानवाधिकार के अन्तरराष्ट्रीय स्तर के सम्बन्ध में वार्तालाप करते है सरकार पर दबाव भी डालते हैं कि वह अपनी रिपोर्ट विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय समितियों/संगठनों को समय से भेजें।

मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु वैश्विक स्तर पर कार्यरत् प्रमुख गैर–सरकारी संगठन

विश्व स्तर पर मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए कार्यरत् गैर–सरकारी संगठनों में **''एमनेस्टी इंटरनेशनल''** का महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी स्थापना 28 मई, 1961 में पीटर बेनसन द्वारा की गई थी। इसका मुख्यालय लंदन में स्थित है। 'एमनेस्टी

इंटरनेशनल' द्वारा मानवाधिकारों के संरक्षण में सफलतापूर्वक कार्य करने के लिए वर्ष 1977 में संस्था को नोबल शान्ति पुरस्कार प्रदान किया गया।

'ह्यूमन राइट्स वॉच' की स्थापना वर्ष 1978 में हेलसिंकी वॉच के रूप में की गई थी। वर्ष 1988 में 'ह्यूमन राइट्स वॉच' के अन्तर्गत सभी क्षेत्रीय इकाइयों को सम्मिलित कर दिया गया। इसका मुख्यालय न्यूयॉर्क (संयुक्त राज्य अमेरिका) में स्थित है।

अल्पसंख्यकों की दशा सुधारने हेतु एक अन्तरराष्ट्रीय संगठन 'माइनॉरिटी राइट्स ग्रुप प्रभावी है। इसकी स्थापना साठ के दशक के प्रारंभ में हुई। इसका मुख्यालय लंदन में स्थित है।

'रोटरी इंटरनेशनल' रोटरी क्लबों का संगठन है। रोटरी क्लब विश्व भर में सेवा करने वाला संगठन है। वर्ष 1905 में 'पॉल हैरिस' द्वारा रोटरी क्लब की स्थापना की गई थी। रोटरी दुनिया का सबसे पहला सेवा संगठन बना। वर्तमान में रोटरी इंटरनेशनल का मुख्यालय इलिनॉइस संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थित है। रोटरी क्लब रोटरी इंटरनेशनल का आधार स्तंभ है, विश्व के लगभग 263 देशों में स्थापित 34,282 रोटरी क्लबों में लाखों रोटेरियंस कार्यरत् है।

'ऑक्सफेम' की स्थापना वर्ष 1942 में हुई थी, इस संस्था का लक्ष्य विश्व भर में गरीबी समाप्त करना है। ऑक्सफेम इंटरनेशनल का मुख्यालय ऑक्सफोर्ड इंग्लैण्ड में स्थित है।

'मेडसिंस सेंस फ्रंटियर्स इंटरनेशनल एक लाभ निरपेक्ष मानवतावादी संगठन है इसकी स्थापना वर्ष 1971 में हुई।

'इण्टरनेशनल रेड क्रॉस कमेटी' की स्थापना हैनरी ड्यूरैन्ट द्वारा 9 फरवरी 1863 में युद्ध या विपदा के दौरान पीड़ित लोगों को राहत देने के उद्देश्य से की गई थी। इस संस्था को मानवाधिकारों के संरक्षण से सम्बन्धित कार्यों के लिए 3 बार शान्ति का नोबल पुरस्कार मिल चुका है—वर्ष 1917, 1944 तथा 1963 में। इस संस्था का मुख्यालय जेनेवा में स्थित है।

'वर्ल्ड सोशल फोरम' का गठन 'विश्व आर्थिक मंच' की तर्ज पर किया गया। वर्ल्ड सोशल फोरम की स्थापना वर्ष 2001 में की गई। वर्ल्ड सोशल फोरम के प्रणेता चिको विटेकर थे। इस मंच का प्रथम, सम्मेलन वर्ष 2001 में पोर्ट एलिग्रे (ब्राजील) में सम्पन्न हुआ। यह मंच वैश्वीकरण का विरोध करता रहा है।

भारत में मानवाधिकारों की रक्षा के लिए निम्नलिखित कानून व प्रशासनिक व्यवस्थाएं उल्लेखनीय है

- नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम,1955
- अनुसूचित जाति/जनजाति उत्पीड़न निरोधी अधिनियम, 1989
- अनुसूचित जातियों व जनजातियों के संवैधानिक अधिकारों की रक्षा के लिए अलग–अलग राष्ट्रीय आयोग
- राष्ट्रीय महिला आयोग,1990
- राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग,1992
- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, 1993
- राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग,1993
- सफाई कर्मचारियों का राष्ट्रीय आयोग,1993
- विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों का संरक्षण अधिनियम,1995

भारत में मानवाधिकारों की उक्त व्यापक प्रशासनिक व कानूनी व्यवस्था के बावजूद अनेक कारणों से मानवाधिकारों का पालन नहीं हो पा रहा है तथा विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा भारत में मानवाधिकार उल्लंघन की रिपोर्टें प्रकाशित होती रहती हैं, संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्थाओं के अतिरिक्त कतिपय स्वैच्छिक अन्तरराष्ट्रीय संस्थाएं यथा– **एमनेस्टी इण्टरनेशनल, ह्यूमन राइट्स वॉच, इण्टरनेशनल रेडक्रॉस सोसाइटी, इण्टरनेशनल काउंसिल ऑफ जूरिस्टस** आदि ने भारत में मानवाधिकारों की स्थिति को सन्तोषजनक नहीं पाया, प्रमुख समस्या व्यवहारिक स्तर पर मानवाधिकारों की व्यवस्था को लागू करने से है। व्यवहार में मानवाधिकारों का पालन कानूनी व संवैधानिक व्यवस्था के अनुरूप नहीं हो पा रहा है।

अन्तरराष्ट्रीय मानव अधिकार संस्थाओं तथा राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थाओं के सर्वेक्षण के अन्तर्गत भारत में मानव अधिकारों से सम्बन्धित निम्नलिखित प्रमुख मुद्दों को चिह्नित किया जा सकता है

- अनुसूचित जातियों के प्रति भेदभाव व उत्पीड़न
- जनजातियों का शोषण व विस्थापन
- सुरक्षा बलों व पुलिस द्वारा मानवाधिकारों का उल्लंघन

- महिलाओं का उत्पीड़न व शोषण
- अल्पसंख्यकों के अधिकार
- बच्चों के अधिकारों का उल्लंघन
- श्रमिकों तथा झुग्गी–झोपड़ी के निवासियों की समस्याएं
- विकलांग व असहाय व्यक्तियों के अधिकारों का उल्लघंन

इन चिन्हित मुद्दों के संरक्षण और संवर्द्धन के लिए अन्तरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय मानव अधिकार संगठनों द्वारा बहुत ही सार्थक प्रयास किए जा रहे है। इनके प्रयासों का ही नतीजा है कि आज भारत में मानवाधिकारों से सम्बन्धित इन प्रमुख मुद्दों के खिलाफ तेज गति से शिकायतों को दर्ज कराया जा रहा है, साथ ही उनके निवारण एवं संरक्षण हेतु सार्थक कदम उठाएं जा रहे है।

भारत में मानवाधिकार से सम्बन्धित प्रमुख गैर–सरकारी संगठन

भारतीय संसद द्वारा वर्ष 1993 में पारित 'मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम' की धारा 12(झ) के अनुसार राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग से यह अपेक्षा की जाती है कि वह मानवाधिकार के क्षेत्र में कार्य कर रहे गैर–सरकारी संगठनों और संस्थाओं के प्रयासों को प्रोत्साहित करे– उल्लेखनीय है कि भारत में गैर–सरकारी संगठनों का पंजीकरण सामान्यतः पंजीकरण अधिनियम, 1860 के अन्तर्गत होता है। भारत में मानवाधिकार से सम्बन्धित बहुत से गैर–सरकारी संगठन और संस्थाएं कार्य कर रहे हैं, जिनमें प्रमुख है:–

पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज(पी0यू0सी0एल0)

"पीपुल्स यूनियन सिविल लिबर्टीज एण्ड डेमोक्रेटिक राइट्स" की स्थापना जयप्रकाश नारायण द्वारा वर्ष 1976 में आपातकाल के दौरान की गई थी। वर्ष 1980 में पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज एण्ड डेमोक्रेटिक राइट्स' ने अपने एक सम्मेलन में संस्था को 'पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज नाम दिया। सम्मेलन में इस संस्था का संविधान भी अंगीकार किया गया इसमें संगठन के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को वर्णित किया, जो इस प्रकार है:–

- सम्पूर्ण भारत में लोकतांत्रिक तरीकों एवं नागरिक स्वतंत्रताओं को शान्तिपूर्ण ढ़ंग से अंगीकृत करना।
- व्यक्तियों की व्यक्तिगत गरिमा के सामान्य सिद्धान्तों को सुनिश्चित करना।

- न्यायपालिका की स्वतंत्रता एवं विधि के शासन को सुनिश्चित करना।
- प्रेस की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करना
- ऐसी सामाजिक बुराइयों के विरूद्ध लड़ना, जो नागरिक स्वतंत्रताओं का अतिक्रमण करती है।
- जेल सुधारों को लागू करना।

पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज द्वारा दायर जनहित याचिका की सुनवाई के पश्चात् ही सर्वोच्च न्यायालय ने 27 सितम्बर, 2013 को इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों में ''उपर्युक्त में से कोई नही'' विकल्प उपलब्ध कराने का चुनाव आयोग को निर्देश दिया है।

पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स

'पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स' की स्थापना अस्सी के दशक के प्रारंभ में 1981 में हुई। यह जनता में लोकतांत्रिक अधिकारों के प्रति जागृति लाने हेतु समय–समय पर सम्मेलन, गोष्ठियॉं, लेख प्रतियोगिता, वाद–विवाद प्रतियोगिता आदि के माध्यम से मानव अधिकारों के संरक्षण लिए जागरूकता लाने का प्रयास करता है।

ऑल इण्डिया फेडरेशन ऑफ ऑर्गेनाइजेशन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स

यह संस्था वर्ष 1982 में स्थापित की गई, जो विभिन्न छोटे–छोटे क्षेत्रीय संगठनों का मिला–जुला मंच है यह भी मानवाधिकारों के हनन के मामले उठाती है।

इंडियन पीपुल्स ह्यूमन राइट्स कमीशन

इसकी स्थापना वर्ष 1987 में की गई, यह एक लोक न्यायाधिकार जैसी संस्था है। यह कमीशन मानवाधिकार हनन के मुकदमों की सुनवाई में योगदान देता है।

मानवाधिकारों से सम्बन्धित गैर–सरकारी संगठन

वर्तमान में गैर–सरकारी संगठनों को विभिन्न नामों व उपनामों से जाना जाता है। जैसे– स्वैच्छिक संगठन, गैर लाभकारी संगठन, सिविल सोसाइटी संगठन, स्वयं सहायता समूह, निजी स्वैच्छिक संगठन, ग्रासरूट सपोर्ट संगठन, सामाजिक आन्दोलन सम्मेलन, तृतीय क्षेत्र के संगठन, तथा सरकार संचालित गैर–सरकारी संगठन आदि। गैर–सरकारी संगठनों को संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद–71 के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त है, जिसमें यह प्रावधान है कि आर्थिक व सामाजिक परिषद् द्वारा इस प्रकार के

प्रयास किए जाएंगे जिससे एनजीओ को परामर्शकारी भूमिका निभाने हेतु प्रोत्साहित किया जा सके। वर्तमान में यू0एन0 की आर्थिक व सामाजिक परिषद् के अन्तर्गत लगभग 4045 एनजीओ को परामर्शकारी भूमिका निभाने हेतु दर्जा प्राप्त है।

वर्ष 2013 में महिलाओं, दलितों एवं गरीब लोगों के उत्थान हेतु काम कर रहे 6 भारतीय गैर सरकारी संगठनों को मानवाधिकार के संरक्षण हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ में विशेष सलाहकार का दर्जा दिया गया है। संयुक्त राष्ट्र की आर्थिक व सामाजिक परिषद में शामिल गैर–सरकारी संगठन समिति ने अपने वार्षिक सत्र के दौरान इन संगठनों को मंजूरी दी है। सलाहकार का दर्जा पाने वाले 6 भारतीय एनजीओ इस प्रकार है

- एक्शन ऑफ ह्यूमन मूवमेंट
- सोशल एण्ड हेल्दी एक्शन फॉर रूरल इम्पॉवरमेंट
- एकता वेलफेयर सोसाइटी
- इंटरनेशनल सर्विसेज एसोसिएशन
- चैतन्य सम्सकारिका वेदी
- सेन्टर फॉर कम्युनिटी इकोनोमिक्स एण्ड डेवलपमेंट सोसाइटी

वर्तमान में मानवाधिकार संगठनों द्वारा राज्य ही नहीं, बल्कि देश–विदेश में मानव अधिकारों के संवर्द्धन एवं संरक्षण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा रही है। अतः सरकार द्वारा भी मानवाधिकारों के संरक्षण के क्षेत्र में कार्य कर रहे गैर–सरकारी संगठनों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। सरकार को चाहिए कि वह इन संगठनों की सहायता से राज्य के विभिन्न हिस्सों में मानव अधिकारों की स्थिति की जॉच समय–समय पर कराती रहे और समस्याओं से निपटने के लिए गैर–सरकारी संगठनों के साथ विचार–विमर्श करे। इन संगठनों को भी चाहिए कि मात्र अपनी लोकप्रियता के लिए सरकार की उचित कार्यवाईयों का विरोध न करे, ताकि जनता का विश्वास इन संगठनों पर बना रहे तथा इन संगठनों पर भी उचित माध्यम से पर्यवेक्षण किए जाने की व्यवस्था होनी चाहिए। इन मानव अधिकार संगठनों के माध्यम से वैश्विक स्तर पर उन सुझावों को भी अमल में लाने के लिए प्रयासरत रहना चाहिए, जो कि इस संस्था की गरिमा और प्रतिष्ठा को धूमिल होने से बचाएं। मानव अधिकारों की रक्षा और इसकी साख को बनाए रखने के लिए मानव अधिकार संगठनों के द्वारा दिए गए कुछ प्रमुख सुझावों की पुनः विवेचना कर संवर्द्धन करना आवश्यक है, ये सुझाव निम्नलिखित हैंः–

- मानव अधिकारों के प्रति शिक्षा व प्रसार माध्यमों से जागरूकता उत्पन्न करना

- मानवाधिकारों की दृष्टि से प्रचलित कानूनों की पुनः समीक्षा
- पुलिस, सैनिक बलों तथा प्रशासन को मानवाधिकारों के प्रति संवेदनशील बनाना
- उत्तरदायित्व तथा खुली प्रशासनिक प्रक्रिया की व्यवस्था
- न्यायिक प्रक्रिया को सरल, तीव्र तथा सस्ता बनाना तथा मानवाधिकारों के लिए विशेष अदालतों की व्यवस्था
- मानवाधिकारों के संरक्षण व प्रसार में कार्यरत् स्वयं–सेवी संगठनों को प्रोत्साहित करना
- विभिन्न वर्गों व क्षेत्रों का सन्तुलित विकास करना, क्योंकि आर्थिक विषमता मानवाधिकारों के उल्लंघन व शोषण को जन्म देती है

इन सभी सुझावों को अमल में लाने के लिए राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों के क्षेत्र में काम कर रहे सभी संगठनों को एक दूसरे के सहयोग से इनके संरक्षण और संवर्द्धन का प्रयास करना होगा, तभी सार्थक रूप में विश्व भर में मानव अधिकारों की वह संकल्पना पूरी हो सकेगी जिसकी आधारशिला कई दशकों पूर्व रखी गई थी।

सन्दर्भ–सूची

1. कपूर, एस.के., "मानव अधिकार," सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, 2011.
2. शर्मा, सुभाष, "भारत में मानवाधिकार," राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2009.
3. प्रतियोगिता दपर्ण अतिरिक्तांक, भारतीय राज व्यवस्था एवं शासन.
4. मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993.
5. उपाध्याय, जय राम., "भारत का संविधान," सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, 2011.
6. संयुक्त राष्ट्र चार्टर

****

शासन की नीतियों में मानवाधिकारों के सरोकार और संवेदना

कृष्ण कुमार चौधरी*

बीज शब्द : राष्ट्र, मानवाधिकार, संविधान, संवेदना, सरोकार

सारांश

एक वृहत राष्ट्र एवं विशाल जनसंख्या वाला देश होने के कारण स्वाभाविक है कि भारत में मानवाधिकार से संबंधित प्रकरणों की बहुलता हो। सामाजिक, जातीय एवं स्थानीय कारणों से इन प्रकरणों में जटिलता की भी संभावनाएं विद्यमान हैं। संविधान समेत भारत सरकार की समस्त नीतियों एवं योजनाओं में मानवाधिकार के प्रति सरोकार एवं संवेदना के पर्याप्त साक्ष्य विद्यमान हैं। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में समाजवादी एवं धर्मनिरपेक्ष शब्दावलियों का प्रयोग वस्तुतः नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं सामाजिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास–धर्म और उपासना की स्वतंत्रता तथा उन सबमें व्यक्ति की राष्ट्र की एकता व अखंडता बढ़ाने वाली वाली बंधुता का संकल्प संविधान सभा के व्यापक मानवतावादी संवेदना एवं सरोकारों को चरितार्थ करती है।

अवधारणा एवं संक्षिप्त इतिहास

मानव अधिकार से तात्पर्य जाति, लिंग, भाषा, धर्म, नस्ल आदि के भेदभाव के बिना मनुष्य को प्राप्त कतिपय नैसर्गिक अधिकार एवं स्वतंत्रता की अभिरक्षा से है जो मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं तथा जिनके बिना न तो व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और न ही समाज के लिए उपयोगी कार्य कर सकता है। राज्य का सर्वोच्च लक्ष्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्णतः विकास है, इसी कारण राज्य द्वारा व्यक्ति को कतिपय अधिकार प्रदान किए गए हैं, जिस पर व्यक्ति की अनन्य प्रभुता स्थापित है तथा अति आपात स्थिति में ही राज्य द्वारा इस पर अंकुश लगाया जा सकता है।

मानव समाज अपने आदिकाल से ही असाम्य, शोषण व उत्पीड़नमूलक रहा है। यद्यपि सद्ग्रंथों में समानता एवं भ्रातृत्व के पुट भरे दिखते हैं –

*आयकर अधिकारी, आयकर विभाग, भोपाल (म. प्र.)

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया,
सर्वे भद्राणि पश्यन्ति, मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत्।

किन्तु यथार्थ में सामाजिक परिदृश्य भेदकारी रहा है ।

मानवाधिकारों की आधुनिक अनुगूँज 'प्रबोधन युग' के विचारकों द्वारा प्रकट किए गए क्रांतिकारी विचारों में सुनायी देता है, यही कारण है कि फ्रांसिसी एवं अमरीकी क्रांतियों में मानव अधिकारों की स्वर लहरियाँ तीव्रता से सुनायी देती है। इन क्रांतियों में मानव अधिकारों की जो घोषणा हुई उसके द्वारा मानव के महत्वपूर्ण अधिकारों को स्वीकार किया गया। किन्तु, इसे वैश्विक स्तर पर आधिकारिक मान्यता प्राप्त हुई 10 दिसम्बर, 1948 को जब 'संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग' द्वारा **'मानवाधिकार के मूल सिद्धांतों के विश्वव्यापी घोषणा'** को 10 दिसम्बर, 1948 को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। इस घोषणा–पत्र में प्रस्तावना सहित 30 अनुच्छेद हैं।

घोषणा–पत्र के अनुच्छेद 1 के अनुसार सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र है और अधिकार और मर्यादा में समान है। उनमें विवेक ओर बुद्धि है, अतएवः इन्हें एक दूसरे के साथ भ्रातृभाव युक्त व्यवहार रखना चाहिए ।

घोषणा –पत्र के शेष अनुच्छेद भी व्यापक महत्व के हैं तथा विस्तृत मानव अधिकार की धारणा उनमें समाविष्ट हैं। इस घोषणा–पत्र को 'मानवाधिकार का मैग्नाकार्टा' की संज्ञा दी जाती है। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा कुछ प्रसंविदाएं भी प्रस्तावित की गयी हैं जिसे 16.12.1966 को अपने प्रस्ताव के द्वारा साधारण सभा ने राज्यों के हस्ताक्षर एवं अभिपुष्टि हेतु प्रस्तुत किया।

मानवाधिकार के संदर्भ में भारत की स्थिति

भारत 'संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार, आर्थिक एवं सामाजिक परिषद' और महासभा के अधिवेशनों में मानवाधिकार के मुद्दों पर शुरू से सक्रिय रहा है। भारत अब तक 16 अंतरराष्ट्रीय संधियों में शामिल है जिन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में तैयार किया गया। जिनमें प्रमुख हैं– 'आर्थिक, सामाजिक, एवं सांस्कृतिक अधिकार प्रसंविदा', 'अंतरराष्ट्रीय सिविल तथा राजनीतिक अधिकार प्रसंविदा', 'महिलाओं के राजनीतिक अधिकार' विषयक प्रसंविदा आदि।

विभिन्न प्रसंविदाओं में हस्ताक्षरकर्ता देश होने के कारण, अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं को पूरा करने के उद्देश्य से भारतीय संसद ने राष्ट्रीय मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 पारित किया जिसके तहत् 'राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग' का

गठन हुआ। मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 2(1)(d) में मानव अधिकार को इस प्रकार परिभाषित किया गया है–

'मानव अधिकार से प्राण, स्वतंत्रता, समानता और व्यक्ति की गरिमा से संबंधित ऐसे अधिकार अभिप्रेत हैं जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत किए गए हैं या अंतरराष्ट्रीय संविदाओं में सन्निविष्ट और भारत में न्यायालओं द्वारा प्रवर्तनीय हैं।'

उक्त अधिनियम की धारा 30 में मानव अधिकारों के उल्लंघन संबंधी अपराधों की शीघ्र सुनवाई उपलब्ध कराने के लिए मानव अधिकार न्यायालय अधिसूचित करने का प्रावधान है। आंध्रप्रदेश, असम, सिक्किम, उत्तर प्रदेश एवं तमिलनाडु में ऐसे न्यायालय स्थापित किए गए हैं। अधिनियम में आयोग को पर्याप्त शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं तथा इसे किसी प्रकरण को स्वतः संज्ञान लेने या शिकायत किए जाने पर अथवा पीड़ित की ओर से किसी और द्वारा शिकायत किए जाने पर अथवा किसी न्यायालय द्वारा निर्देशित किए जाने पर उक्त शिकायत पर विधि अनुसार कार्रवाई करने का अधिकार प्राप्त है।

मानवाधिकार को समर्पित 'एमनेस्टी इंटरनेशनल' द्वारा वर्ष 2016–17 की भारत संबंधी रिपोर्ट में मानवाधिकार की स्थिति पर तल्ख टिप्पणी की गयी है। इसमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से संबंधित अधिकारों का हनन, धार्मिक अल्पसंख्यकों से असमान एवं अभद्र व्यवहार, जम्मू–कश्मीर में अर्द्ध–सैनिक बल द्वारा बल प्रयोग, जाति आधारित भेदभाव, बालअधिकारों का हनन, जातीय एवं सांप्रदायिक हिंसा, बढ़ते सामाजिक अपराध, शरणार्थियों एवं प्रवासियों के अधिकार, कैद एवं निरोध की स्थिति में प्रताड़ना एवं दुर्व्यवहार, महिला अधिकारों के हनन पर चिंता प्रकट की गयी है। इसमें भारत पर अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं को पूरा न करने का भी आरोप लगाया गया है।

एक बृहत् राष्ट्र एवं विशाल जनसंख्या वाला देश होने के कारण यह स्वाभाविक है कि भारत में मानवाधिकार से संबंधित प्रकरणों की बहुलता हो। सामाजिक, जातीय, एवं स्थानीय कारणों से इन प्रकरणों में जटिलता भी अधिक होती है। किन्तु, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों द्वारा मानवाधिकार संबंधित घटनाओं पर कई बार स्वतः संज्ञान ले हस्तक्षेप किया गया है। विगत वर्षों में उच्च/उच्चतम न्यायालयों द्वारा कई फैसले आये हैं जिसमें मानवाधिकार को रेखांकित कर राज्य को पर्याप्त निर्देश दिए गए हैं। राज्य मानव अधिकार आयोग एवं राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की सक्रिय एवं निर्णायक भूमिका ने भी इस दिशा में सुधारात्मक कार्य किया है। भारत स्वयं सैकड़ों वर्षों की दासता में मानवाधिकार हनन का भुक्तभोगी रहा है। हमारे कर्णधारों ने स्वतंत्रता संग्राम में जो क्रूर यातनाएँ सही उस

कटु अनुभव ने स्वतंत्र राष्ट्र के संविधान में शोषणरहित एवं समतामूलक समाज की स्थापना की परिकल्पना को बल दिया। यही कारण है कि भारतीय संविधान में पर्याप्त ऐसे विधिक उपबंध दृष्टिगोचर होते हैं जो मानव अधिकार की सुरक्षा से अभिप्रेरित हैं। संविधान समेत भारत की तमाम नीतियों एवं योजनाओं में मानवाधिकार के सरोकार एवं संवेदना का पर्याप्त दर्शन होता है। विवेचन हेतु विषय को अधोलिखित उपखंडों में विभाजित किया जाता है–:

- विधायी नीतियों में मानवाधिकार के सरोकार एवं संवेदना।
- प्रशासनिक नीतियों एवं अधिनियमों में मानवाधिकार के सरोकार एवं संवेदना।
- लोक नीतियों में मानवाधिकार के सरोकार एवं संवेदना।

विधायी नीतियों में मानवाधिकार के सरोकार एवं संवेदना

भारतीय संविधान एक संतुलित संविधान है। इसमें राज्य एवं जनता के अधिकार एवं शक्तियों का युक्तियुक्त विभाजन है। जनता को मूल अधिकारों समेत वे सारे अधिकार प्रदान किए गए हैं जो व्यक्ति के स्वतंत्र एवं गरिमामय जीवन यापन के लिए आवश्यक हैं। ये अधिकार राज्य की शक्तियों पर अंकुश लगाते हैं तथा व्यक्ति की संप्रभुता राज्य पर स्थापित करते हैं। उदाहरणार्थ –अनुच्छेद 15 द्वारा धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर विभेद का निषेध, लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता (अनु.16), वाक्–स्वातंत्र्य, संघ बनाने, संचरण, निवास और वृत्ति की स्वंतत्रता (अनु.19), विधि की समानता (अनु.14) अपराधों के लिए दोष सिद्धि के संबंध में संरक्षण (अनु.20), प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनु.21), मानव के दुर्व्यापार और बलात् श्रम निषेध (अनु.23), कारखानों आदि में बालकों के नियोजन पर प्रतिबंध (अनु.24), अन्तःकरण और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता (अनु.25), शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार जैसे विधि प्रदत्त मौलिक अधिकारों में मानव अधिकारों के अभिरक्षण का पुट स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

इन अधिकारों में मानवाधिकार से संबंधित प्रसंविदाओं एवं घोषणा–पत्रों का अमूर्त रूप सहजता से दृश्यमान होता है। **ये अधिकार राज्य की शक्तियों पर अंकुश लगाते हैं एवं व्यक्ति की संप्रभुता राज्य पर स्थापित करते हैं।** इन अधिकारों को न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय बनाना तथा इनके विधिक संशोधन को न्यायिक पुनर्विलोकन में रहना, स्पष्ट करता है कि ये अधिकार अनन्य रूप से व्यक्ति को प्राप्त हैं तथा अपवाद की स्थिति में ही राज्य इस पर अंकुश लगा सकता है, किन्तु व्यक्ति को इन अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार ये अधिकार मानवाधिकार की संवेदना से

परिपूर्ण हैं।

नीति–निदेशक सिद्धांत : संविधान के भाग 4 के अनु. 36 से अनु. 51 तक में वर्णित ये सिद्धांत यद्यपि न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं, किन्तु, राज्य की शक्तियों पर अंकुश लगाकर राज्य को लोकतांत्रिक स्वरूप देने, सामाजिक, आर्थिक समता व सशक्तीकरण का लक्ष्य हासिल करने का निर्देश देते हैं। यह विधायिका एवं कार्यपालिका को उनके द्वारा लिए गए लोकसेवा के संकल्प का स्मरण दिलाता है ताकि विधि निर्माण एवं प्रवर्तन के दौरान इन उद्देश्यों का ध्यान रखा जाये। इन सिद्धांतों का मूल उद्देश्य सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय प्रदान करना है। अधोलिखित सिद्धांतों के अवलोकन से यह सहज बोध होता है कि इनमें मानवाधिकार के सरोकार एवं संवदेना का पूर्ण समावेश है।

राज्य का यह कर्त्तव्य होगा कि –

- पुरुष एवं स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्रदान किए जायें।
- समुदाय के भौतिक संसाधनों के स्वामित्व और नियंत्रण का न्याय संगत बँटवारा हो।
- पुरुष एवं स्त्री के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन दिलाना।
- सभी कर्मकारों को शिष्ट जीवन–स्तर तथा अवकाश प्रदान करना।
- शिशुओं तथा अवयस्क बालकों के शोषण को रोकना तथा उन्हें आवश्यक अवसर व सुविधाएं प्रदान करना।
- पुरुषों, स्त्रियों तथा अवयस्क बालकों के दुरुपयोग पर रोक अर्थात् उन्हें ऐसे कार्य करने से रोकना जो उनकी आयु और शक्ति के प्रतिकूल हो।
- काम व शिक्षा दिलाने का प्रयास करें तथा बेकारी, बीमारी, बुढ़ापे में लोक सहायता प्रदान करें।
- राज्य सभी बालकों को 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा देने के लिए प्रावधान करने का प्रयास करेगा।
- राज्य यह सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार कार्य करें कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो।
- राज्य समाज के अन्य वर्गों के बीच प्रतिष्ठा, अवसरों तथा सुविधाओं की

असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा।

- राज्य भारत के समस्त नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता बनाने का प्रयास करेगा।
- राज्य पोषाहार स्तर और जीवन–स्तर सुधारने का प्रयास करेगा।
- राज्य उद्योगों में लगे हुए कर्मकारों का प्रबंधन में सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त विधान बनाएगा।
- राज्य मादक पेयों और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक औषधियों के उपयोग का प्रतिषेध करने का प्रयास करेगा।

गौरतलब है कि 42वें संविधान संशोधन, 1976 द्वारा जो मूल कर्तव्य संविधान में जोड़ा गया है उसके भी कतिपय प्रावधान में मानवाधिकार के सरोकार नजर आते हैं, उदाहरणार्थः–

देश का प्रत्येक नागरिक :–

उपबंध (V) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो भाषा, धर्म, प्रदेश, आय, वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो। ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हो।

उपबंध (VII) वैज्ञानिकवाद, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।

पंचायती शासन व्यवस्था में मानवाधिकार के सरोकार :

राज्य के विकास में सामान्य–जन को जोड़ने के उद्‌देश्य से 1957 में बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिश पर पंचायती राज अधिनियम पारित कर 01 अप्रैल, 1958 से इसे लागू कर दिया गया। 73वाँ संविधान संशोधन विधेयक 1992 में पारित कर पंचायती राज को वैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। इस व्यवस्था के निम्नलिखित प्रावधानों में मानवतावाद की संवेदना की अनुगूँज सुनाई देती है।

ग्रामीण आवास की व्यवस्था, पेयजल, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, प्रौढ़ एवं अनौपचारिक शिक्षा का प्रबंध, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, महिला बाल विकास, समाज एवं परिवार कल्याण, अनुसूचित जाति एवं जनजातियों का कल्याण आदि।

अन्य पहलू

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में समाजवादी एवं पंथनिरपेक्ष जैसे शब्दावलियों का प्रयोग तथा नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, आस्था–धर्म और उपासना की स्वतंत्रता तथा उन सबमें व्यक्ति की राष्ट्र की एकता व अखंडता बढ़ाने वाली बंधुता का संकल्प, संविधान सभा की विराट मानवतावादी उद्देश्य को चरितार्थ करता है।

भारतीय संसद का मानवाधिकार के प्रति सरोकार एवं संवेदना का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि संसद विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे शोषण, उत्पीड़न, असमानता की आवाज को संजीदगी से सुना है एवं उन पर निरोधक कानून भी बनाए हैं। उदाहरणार्थ, श्रम क्षेत्र में शोषण रोकने हेतु फैक्ट्री एक्ट, 1948 अधिनियम पारित किया गया। इसी प्रकार असंगठित श्रमिकों के हितार्थ कर्मचारी राज्य बीमा निगम अधिनियम, 1948, भविष्य–निधि अधिनियम, 1952, ग्रेच्युटी एक्ट, 1972, बोनस एक्ट, 1965 आदि पारित किए गये हैं। कर्मचारी राज्य बीमा निगम, कर्मचारी भविष्य निधि संगठनों के परिचालन के द्वारा श्रमिक हितों का पूरा ध्यान रखा गया है। इसी प्रकार ट्रेड यूनियन एक्ट, 1926 के तहत ट्रेड यूनियन को कर्मचारियों के हित में मान्यता देने तथा प्रबंधन द्वारा श्रमिक हितों के मुद्दों पर, निर्णय लेने से पूर्व अनिवार्य रूप से विचार–विमर्श करने का प्रावधान है। इस प्रकार श्रमिक अधिकारों को मान एवं संरक्षण देने का प्रयास किया गया है।

संसद ने समाज के विशिष्ट वर्गों के हितों के संरक्षण के उद्देश्य से तत्संबंधी अधिनियम पारित कर उक्त वर्ग को संरक्षण प्रदान किया है। उदाहरणार्थ, महिला के संवैधानिक एवं कानूनी रक्षोपाय तथा महिला समस्या एवं उनकी उन्नति हेतु 31 जून, 1992 को 'राष्ट्रीय महिला अधिनियम 1990' के अंतर्गत 'राष्ट्रीय महिला आयोग' का गठन किया गया।

इसी प्रकार संविधान के अनु. 358 के आलोक में 1978 में 'राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग' की स्थापना की गयी जो अनुसूचित जाति एवं जनजाति की शिकायतों की जाँच करता है। जनजाति समुदाय के सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति का मूल्यांकन करना तथा इसके लिए जागरूक करना आयोग का प्रमुख कर्त्तव्य है।

अल्पसंख्यकों के संविधान प्रदत्त अधिकारों के रक्षोपाय निमित्त राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1992 के तहत संसद द्वारा 'राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग' की स्थापना की गई है जो अल्संख्यकों से संबंधित मामलों पर विशेष प्रतिवेदन

तैयार कर केन्द्र सरकार के समक्ष प्रस्तुत करती है। अल्पसंख्यकों के साथ भेदभाव के कारणों की समीक्षा करती है तथा उसे दूर करने के लिए प्रभावकारी उपाय सुझाती है।

संविधान के अनु. 340 के तहत केन्द्र सरकार ने 1979 में सामाजिक एवं शैक्षिक पिछड़ा वर्ग आयोग (एसईबीसी) का गठन बी. पी. मंडल की अध्यक्षता में किया। मंडल आयोग की सिफारिश के आधार पर सरकारी सेवा में 1990 में अन्य पिछड़ा वर्ग हेतु केन्द्र/राज्य/सार्वजनिक उपक्रमों में 27 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया है। इसी आयोग की सिफारिश के अनुरूप 1993 में 'राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग' का गठन किया गया जो कि पिछड़े वर्ग की समस्याओं से संबंधित संस्तुति केन्द्र सरकार को देती है।

23 फरवरी, 1977 को 'बाल अधिकार संरक्षण आयोग' का गठन किया गया जो कि एक वैधानिक संस्था है। आयोग का प्रमुख कार्य केन्द्र या राज्य सरकारों के तहत् आनेवाले किशोर सुधार गृहों का निरीक्षण करना, बच्चों से जुड़ी शिकायतों की जाँच करना, बच्चों को आंतकवाद, सांप्रदायिक हिंसा, घरेलू हिंसा, एड्स, वैश्यावृत्ति आदि से बचाने हेतु कदम उठाना।

उपरोक्त आयोगों के कार्यों से स्पष्ट है कि इनका उद्देश्य पूर्णतः मानवतावाद पर केन्द्रित है। इस प्रकार हम सरकार की विधायी नीतियों में मानव अधिकारों के प्रति संवदेनशीलता एवं उन्हें संरक्षित करने के कारगर उपाय की स्पष्ट झलक पाते हैं।

प्रशासनिक एवं संस्थागत नीतियों में मानव अधिकारों के सरोकार एवं संवेदना:

प्रभावी एवं जबावदेह प्रशासन की सुनिश्चितिः भारतीय प्रशासन पर गैरजबावदेही, अंसेवदनशीलता, लेट–लतीफी/लालफीताशाही तथा भ्रष्टाचार के जघन्य आरोप लगते आये हैं। शासन ने जन अपेक्षा एवं जानाक्षोभ के प्रति संवेदनशीलता दिखाते हुए पर्याप्त ऐसे कदम उठाये हैं जिससे प्रशासन में जबावदेही, भ्रष्टाचार, लेट–लतीफी पर अंकुश लगा है। यद्यपि अभी यह निर्मूल होना बाकी है। उदाहरणार्थः–

सूचना का अधिकार अधिनियमः 15 जून, 2005 को अस्तित्व में आये 'सूचना का अधिकार अधिनियम' प्रशासन को जबावदेह बनाने में अत्यधिक कारगर सिद्ध हुआ है। चूँकि आम जनता तक महत्वपूर्ण सूचनाओं की पहुँच इस अधिनियम से संभव हो सका है, अतः अब अधिकारी सुलभता से महत्वपूर्ण सूचानाएँ वेबसाइट आदि पर साझा कर रहे हैं। जबावदेही तय किए जाने से निर्णय प्रक्रिया एवं रिकॉर्ड अनुरक्षण पहले से बेहतर हुआ है। पारदर्शिता बढ़ी है। इस अधिनियम ने आम जनता के जानने के हक/अधिकार की अभिरक्षा की है।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग: संथानम कमेटी की सिफारिश पर इसकी स्थापना 1964 में हुई थी। किन्तु, हाल में आयोग अति सक्रिय हुआ है। फलतः लोक–सेवक द्वारा भ्रष्टाचार पर काफी हद तक लगाम लगा है। आयोग को शिकायत भेजने की प्रक्रिया बेहद आसान है। साथ ही, भ्रष्टाचार विरोधी ऑनलाइन शपथ दिलवाकर जनता की भागीदारी भ्रष्टाचार मुक्त भारत के निर्माण हेतु सुनिश्चित किया जा रहा है। सतर्कता आयोग भ्रष्टाचार खत्म करने के लिए कटिबद्ध है तथा विभिन्न विभागों की कार्य–प्रणाली की समीक्षा कर भ्रष्टाचार संवेदनशील क्षेत्रों में रक्षोपाय का निर्देश देता है। इन प्रयासों से भ्रष्टाचार पर काफी हद तक रोक लगी है एवं मानव अधिकारों की सुरक्षा को बल मिला है।

केन्द्रीय नागरिक सेवा, आचरण नियम, 1964 : यह नियम भारत सरकार द्वारा 1964 में लाया गया और केन्द्रीय सेवाओं की सभी श्रेणियों पर लागू है। इस नियम का दायरा अत्यंत व्यापक है तथा यह सरकारी कर्मचारियों से निर्दिष्ट मानक व्यवहार की अपेक्षा रखता है। कतिपय नियम द्रष्टव्य हैः–

- नियत समय पर ड्यूटी पर आना, पूँछे जाने पर नाम एवं पदनाम बिना हिचक बतायेगा।
- किसी के भी साथ अनपेक्षित व्यवहार नहीं करेगा।
- महिलाओं, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के प्रति सम्मानजनक व्यवहार रखेगा, आदि। स्पष्ट है कि उक्त नियमों में मानवाधिकार की झलक साफ दिखाई देती है ।

महिलाओं की गरिमा एवं लैंगिक शोषण के रक्षोपाय के उद्‌देश्य से प्रत्येक विभाग में 'महिला प्रकोष्ठ' बनाया गया है जिसका अध्यक्ष विभाग की वरिष्ठ महिला अधिकारी होती है। समिति में एक पुरुष सदस्य एवं अन्य सदस्य महिलायें होती हैं। यह महिलाओं की शिकायतों की जांच कर अपनी संस्तुति विभागाध्यक्ष को प्रस्तुत करती है। जिससे विभागीय कार्यवाही को एक दिशा मिलती है। उक्त प्रकोष्ठ का गठन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 'विशाखा बनाम राजस्थान सरकार' मामले में दिए गए निर्देश के तारतम्य में किया गया है जिसकी प्रकृति मानव अधिकारों की अभिरक्षा से प्रेरित है।

सरकारी तंत्र को प्रभावी बनाने तथा मूलभूत सेवायें त्वरित रूप से जनता को पहुँचाने के उद्‌देश्य से सरकार ने अनेक नए कदम उठाए हैं जो नागरिक गरिमा पर आघात किए बिना घर बैठे उन्हें वांछित सेवा की उपलब्धता सुनिश्चित करता है। उदाहरणार्थ, 'सिटीजन चार्टर' के द्वारा प्रत्येक विभाग में मूलभूत सेवायें प्रदान करने की नियत तिथि

निर्धारित की गई है। अतः कार्यरत अधिकारी/कर्मचारी पर नियत अवधि में सेवा प्रदान करने की बाध्यता रहती है। लोक शिकायतों का न्यायालय के बाहर निदान करने के लिए लोकपाल की अवधारणा लाई गई है जो कि अत्यंत कारगर है। लोकपाल के निदेश विभाग के लिए बाध्यकारी होते हैं। बैंकिंग एवं बीमा क्षेत्रों में लोकपाल संस्था अत्यंत कारगर सिद्ध हुई है तथा इससे लोक शिकायतों के निपटारे को बल मिला है।

सी.पी.जी.आर.ए.एम. (CPGRAM): लोक शिकायत के त्वरित निवारण हेतु एक समेकित शिकायत प्रणाली Centralsied public Grievance Redressal and Monitoring System चलन में लायी गयी है। इस पर किसी भी केंद्रीय विभाग से सम्बंधित शिकायत ऑनलाइन/ऑफलाइन डाली जा सकती है। इस पोर्टल की निगरानी प्रधानमंत्री कार्यालय द्वारा की जाती है जो संबंधित विभागाध्यक्ष को तत्क्षण आवश्यक कार्रवाई हेतु अग्रेषित कर देता है। इस पर डाले गए शिकायतों के निवारण की अवधि 30 दिनों की है। समय–समय पर अंतरिम रिपोर्ट विभागाध्यक्ष को देनी पड़ती है, फलतः लोकसेवकों में शिकायतों के निपटान के प्रति संवेदनशीलता कई गुना बढ़ी है।

प्रगति (PRAGATI) : प्रगति में प्रत्येक विभाग के सचिव स्तर के उच्चाधिकारी द्वारा संबंधित विभागाध्यक्ष को शिकायत स्थानांतरित की जाती है। विभागाध्यक्ष को प्रति सप्ताह 10 शिकायतों का एवं महीने में कुल 40 शिकायतों का व्यक्तिगत मॉनिटरिंग का निपटान रिपोर्ट भेजना होता है। संबंधित विभागों के सचिव स्तर के अधिकारी द्वारा मॉनिटरिंग किए जाने की वजह से इन शिकायतों का निपटान अविलंब किया जाता है।

इसके अतिरिक्त भी विभिन्न विभागों के शिकायत निवारण की निजी पोर्टल, योजना/वेबसाइट है जिसकी निगरानी उच्च स्तरीय होती है, अतः समयबद्ध निपटान अनिवार्य रूप से करना होता है।

विशेष श्रेणी हेतु केंद्रित नीतियां :–

- समाजवाद के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिए केंद्र/राज्य/सार्वजनिक उपक्रम की सेवाओं में आरक्षण की व्यवस्था है। अतः इन श्रेणियों को सामाजिक मुख्य धारा में लाने के उद्देश्य से इन्हें परीक्षा पूर्व निःशुल्क प्रशिक्षण, छात्रवृत्ति एवं छात्रावास की सुविधा उपलब्ध कराये जाने की नीति है।
- भिन्नतः सक्षम (दिव्यांग) श्रेणी के व्यक्तियों के लिए सरकारी सेवाओं एवं लोक उपक्रमों में पृथक रूप से 3% आरक्षण का प्रावधान है।
- रेल टिकट में वरिष्ठ नागरिकों को विशेष छूट प्रदान किया जाता है।
- इसी प्रकार आयकर स्लैब में वरिष्ठ नागरिकों को विशेष छूट प्राप्त है।

- सहकारिता एवं लोकोपयोगी कार्य करने हेतु सहकारी संस्थाओं एवं ट्रस्टों को आयकर अधिनियम के तहत विशेष छूट प्राप्त है। पंजीकृत ट्रस्ट की आय आंशिक/पूर्ण रूप से कर मुक्त है।
- दिव्यांश पारिवारिक सदस्य की देखभाल के लिए पालनकर्ता करदाता को आयकर की धारा 80DD में 75000 से 1,25,000/– रूपये तक की छूट प्राप्त है।
- राज्य का उद्देश्य एक कल्याणकारी, समाजवादी गणतंत्र की स्थापना है, फलतः जन–कल्याण हेतु इसे सुनिश्चित करना होता है। यही कारण है कि रेल, बस, हवाई जहाज़ आदि दुर्घटनाओं में हताहतों को मुआवज़ा देने का प्रावधान है। घायलों का निःशुल्क ईलाज करने का प्रावधान है।
- प्राकृतिक आपदाओं यथा बाढ़, सूखा, आगजनी आदि में त्वरित राहत कार्य एवं बुनियादी वस्तुओं के आवंटन संग नुकसान की एकमुश्त भरपाई करने का प्रावधान है।
- विकास कार्यों यथा रेल, रक्षा, उद्योग, बाँध आदि निर्माण हेतु भूमि अधिग्रहण में भी मुआवज़ा एवं पुनर्वास का प्रावधान है।

लोक योजनाओं में मानव अधिकारों के सरोकार एवं संवेदना

एक विशाल जनसंख्या वाला देश होने के कारण भारत की सामाजिक, आर्थिक समस्याएं एवं चुनौतियां जटिल प्रकृति की हैं। जिनमें मुख्यतः – अशिक्षा, गरीबी, भूख, कुपोषण, बाल श्रम, वृद्ध एवं निःशक्तजन की उपेक्षा, बेरोजगारी, स्वच्छता, आवास, पेयजल की समस्या, आदि हैं। बहुधा सामाजिक आर्थिक समस्याओं का मौलिक रूप मानवाधिकार से प्रत्यक्ष अथवा गौण रूप से जुड़ा होता है। अतः हमारी अधिकांश नीतियाँ इन्हीं समस्याओं के उन्मूलन पर केंद्रित होती हैं। आरम्भ से लेकर यदि वर्तमान तक की लोक योजनाओं पर विहंगम दृष्टि डालें तो मानवाधिकार के सरोकार एवं संवदेनाओं का झलक सुस्पष्ट दिखाई देगा। उपर्युक्त तथ्य को अधोलिखित योजनाएं, उनके उद्देश्य तथा केंद्रित वर्ग विशेष के अवलोकन द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है।

योजना का नाम	शरूआत	अंतरराष्ट्रीय	मानवाधिकार की झलक
अटल पेंशन योजना	2005	पेंशन योजना जिसके तहत असंगठित क्षेत्र के लोगों द्वारा न्यूनतम अंशदान करने पर सरकार द्वारा उतना ही अंशदान तथा निश्चित पेंशन की गारंटी।	आर्थिक एवं सामाजिक सुरक्षा।

प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना	1985	ग्रामीण निर्धनों को गृह –निर्माण हेतु वित्तीय सहायता का प्रावधान।	आवासीय सुविधा।
समेकित बाल विकास योजना	1975	6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों एवं उनकी मां को कुपोषण एवं स्वास्थ्य समस्याओं से रक्षा।	बाल एवं महिला स्वास्थ्य।
जननी सुरक्षा योजना	2005	गर्भवती महिलाओं को एकमुश्त नकद सहायता ताकि प्रसव, कुशल स्वास्थ्य सहायकों द्वारा अथवा स्वास्थ्य केन्द्रों पर करवा सके।	बाल एवं प्रसव मृत्यु दर में कमी लाना।
जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीनीकरण योजना	2005	शहरों में आधारभूत संरचना एवं जीवन की गुणवत्ता सुधारने हेतु लायी गई योजना।	शहरी आधारभूत संरचना विकास ।
कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय	2004	अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक तथा गरीबी रेखा से नीचे की लड़कियों को शैक्षिक सुविधा उपलब्ध कराना।	विशेष वर्ग को शिक्षित करना ।
महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम	2006	100 दिन के रोजगार गारंटी कार्यक्रम जिसके तहत प्रत्येक परिवार के ईच्छुक वयस्क सदस्य को लोक हित से संबंधित कार्य में 100 दिन की रोजगार गारंटी।	गरीबों को रोजगार गारंटी।
मिड डे मील (मध्याह्न भोजन)	1995	स्वास्थ्य एवं शिक्षा को समर्पित इस योजना के तहत प्राथमिक एवं मध्य विद्यालय में मुफ्त मध्याह्न भोजन की व्यवस्था।	शिक्षा संग स्वास्थ्य में सुधार।
राष्ट्रीय साक्षरता मिशन	1988	15–35 वर्ष उम्र के 8 करोड़ व्यस्कों को शिक्षित करने का लक्ष्य।	शैक्षिक विकास।

राष्ट्रीय सामाजिक सहायता योजना	1995	बेरोज़गारी, वृद्धावस्था, बीमारी, विकलांगता की स्थिति में नागरिकों को लोक सहायता का प्रावधान।	सामाजिक सुरक्षा।
प्रधानमंत्री आदर्श ग्राम योजना	2010	अनुसूचित जाति बहुल गांव के समेकित विकास की योजना।	ग्रामीण विकास।
प्रधानमत्री कौशल विकास योजना	2015	युवाओं में रोजगार योग्य कौशल का विकास हेतु वित्तीय प्रोत्साहन एवं निर्दिष्ट केंद्रों पर प्रशिक्षण की व्यवस्था।	कौशल विकास एवं बेरोजगारी उन्मूलन।
प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना	2015	जीवन बीमा जिसमें 330 रूपये के न्यूनतम वार्षिक प्रीमियम पर दो लाख रूपये की बीमा।	सामाजिक सुरक्षा
प्रधानमंत्री जन धन योजना	2014	वित्तीय समावेशन के उद्देश्यों से लायी गई योजना ताकि, वित्त, बैंकिग, पेंशन, बीमा, सरकारी सहायता की उपलब्धता प्रत्येक नागरिक तक पहुँच सके।	वित्तीय जागरूकता एवं सुरक्षा को बढ़वा।
राजीव आवास योजना	2013	'झुग्गी मुक्त भारत' के उद्देश्यों से लागू की गई योजना जिसमें प्रत्येक शहरी नागरिक को बुनियादी नागरिक सुविधाएं उपलब्ध कराने का लक्ष्य था।	गन्दी बस्ती उन्मूलन।
राजीव गाँधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना	2005	ग्रामीण क्षेत्र में विद्युत् संरचना का विकास ताकि प्रत्येक रहवासी तक विद्युत की उपलब्धता सुनिश्चित हो सके।	ग्रामीण संरचना विकास।
राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना	2008	गरीबी रेखा से नीचे, घरेलू नौकर, मनरेगा, श्रमिक, रिक्शावाला, बिल्डिंग और अन्य निर्माण कार्यों में लगे श्रमिक हेतु लायी गई बीमा योजना जिसके तहत 30,000 रूपये तक का इलाज मुफ्त।	स्वास्थ्य एवं सुरक्षा।

सक्षम	2014	किशोरों के कौशल विकास को समर्पित योजना जिसमें 11 से 18 वर्ष तक के किशोरों के कौशल एवं उनके सर्वांगीण विकास के संग–संग उन्हें आत्म–निर्भर, जागरूक तथा लैंगिक रूप से संवेदनशील बनाने का लक्ष्य	कौशल विकास।
सबला		किशोरियों के सशक्तीकरण को समर्पित योजना जिसमें 11 से 18 वर्ष तक की किशोरियों के स्वास्थ्य, पोषण में सुधार तथा उनके गृह, जीवन तथा व्यावसायिक कौशल के विकास का लक्ष्य।	महिला सशक्तीकरण
स्वाबलंबन	2010	पेंशन योजना जिसके तहत असंगठित क्षेत्रों के ऐसे श्रमिक जो किसी वैधानिक पेंशन योजना के अधीन नहीं हैं द्वारा वार्षिक रूप से 1000 रूपये से 12,000 रूपये तक का अंशदान कर योजना में शामिल हुआ जा सकता है। सरकार की ओर से 1000 रूपये वार्षिक प्रति योजना धारी का अंशदान किए जाने का प्रावधान।	सामाजिक सुरक्षा ।
राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन	2011	योजना का उद्देश्य निर्धन ग्रामीणों को स्वयं सहायता समूहों में संगठित कर उन्हें स्वरोजगार के बेहतर विकल्प उपलब्ध कराना।	ग्रामीण निर्धनों को रोजगार उपलब्ध कराना।

राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन	2013	योजना का उद्देश्य निर्धन शहरी नागरिकों को विशेषकर फेरीवाले (स्ट्रीट वेंडर्स) जो कि शहरी निर्धनता के अहम कारक हैं को कुशल एवं दृढ़ रोजगार हेतु समर्थवान बनाना।	शहरी निर्धनों को रोजगार उपलब्ध कराना।
राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना	1987 / 2005	परियोजना का उद्देश्य खतरनाक उद्योगों में लगे बच्चों की रक्षा।	बाल श्रम उन्मूलन ।
प्रधानमंत्री उज्जवला योजना	2016	गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाली सभी महिलाओं को मुफ्त एल.पी.जी. कनेक्शन उपलब्ध कराना।	निर्धनों को सहायता।
प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना	2016	2022 तक 40 करोड़ लोगों को कौशल विकास हेतु संस्थागत क्षमता उपलब्ध कराना।	कौशल विकास एवं रोजगार सृजन।
अंत्योदय अन्न योजना	2000	योजना के अधीन 01 करोड़ निर्धनतम परिवारों को गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों में से चिह्नित करना। लक्षित जन वितरण प्रणाली के तहत इन्हें अंत्योदय राशन कार्ड प्रदान करना।	निर्धनों को खाद्य सुरक्षा।

उक्त योजनाओं का उद्‌देश्य तथा लक्षित वर्ग पर गौर करने से हमें यह सहज बोध होता है कि ये योजनाएं निर्धनता, उन्मूलन, बाल एवं महिला विकास, बेरोजगारी उन्मूलन, ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विकास, श्रमिक हितों के संरक्षण, युवाओं के कौशल विकास आदि पर केंद्रित हैं, जिसमें मानव अधिकारों की संवेदना का स्पष्ट एवं अनवरत स्पंदन सुनाई देती है।

****

संसार में सबसे बड़ा अधिकार सेवा और त्याग से प्राप्त होता है।

—प्रेमचंद

किशोर को 'वयस्क' मानकर न्याय का प्राविधान : एक समीक्षा

के. पी. सिंह*

बीज शब्द : किशोर–न्याय ,कानून, विसंगति, पुनर्वास

सारांश

किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 3 में उल्लेखित किशोर–न्याय के प्रमुख सिद्धांत 'निर्दोष होने की मान्यता' की मूल भावना के विरुद्ध है। चाइल्ड राइट्स कन्वेंशन, 1992 की मूल भावना में भी यही निहित है कि संगीन अपराधों में लिप्त किशोरों को वयस्क मानकर दंडित न किया जाए। यह प्रवृति उनके सुधार एवं पुनर्वास की दृष्टि से प्रयोजनहीन अवधारणा है। जस्टिस वर्मा आयोग ने अपनी रिपोर्ट में किशोरों को व्यस्क मानने की अवधारणा को सिरे से खारिज किया था। वस्तुतः जुव. ेनाईल वेवर सिस्टम किशोरों के साथ न्याय नहीं कर रहा है। इस पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है ताकि कुछ बहुमूल्य किशोर जिंदगियों को मनुष्य समझकर जीवन जीने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध हो सकें।

किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000[1] (जे.जे. एक्ट 2000) को निरस्त करके नया किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015[2] (जे.जे.एक्ट 2015), 15 जनवरी 2016 को लागू कर दिया गया है। इस विषय पर गठित राज्य सभा की संसदीय समिति[3] ने भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास मन्त्रालय को सूचित किया था कि जे.जे.एक्ट 2000 के लागू होने के बाद इस कानून को लागू करने में कुछ परेशानियां सामने आई थीं। समिति के अनुसार, यह अधिनियम 16 वर्ष से अधिक उम्र के ऐसे किशोरों के साथ न्याय करने के लिए अपर्याप्त है जो ऐसे गम्भीर अपराधों में संलिप्त थे जिनमें 7 वर्ष या इससे अधिक की सज़ा देने का प्रावधान है। महिला एवं बाल विकास मन्त्रालय, भारत सरकार, ने इस संसदीय समिति को किशोर न्याय बिल 2014 के प्रावधानों के बारे में अवगत कराते हुए सूचित किया था कि गम्भीर अपराधों में संलिप्त 16 वर्ष से अधिक आयु के किशोरों के साथ न्याय करने के लिए कुछ विशेष प्रावधान प्रस्तावित हैं, जो ऐसे किशोरों के

***आई.पी.एस., पुलिस महानिदेशक, राज्य मानवाधिकार आयोग, हरियाणा।**

लिए निवारक साबित होंगे। अपने इस प्रस्ताव को उचित ठहराते हुए मंत्रालय ने वर्ष 2010 से लेकर 2013 तक के गम्भीर अपराधों के निम्नलिखित आँकड़े प्रस्तुत किए थे जिनमें 16 वर्ष की आयु से अधिक के किशोर संलिप्त थे।

वर्ष	हत्या	बलात्कार	अपहरण	डकैती
2010	600	651	436	105
2011	781	839	596	142
2012	861	887	704	207
2013	845	1388	933	190

तदनुसार, जे.जे. एक्ट 2015 में गम्भीर अपराधों में संलिप्त 16 वर्ष से अधिक आयु के किशोरों को अलग से वर्गीकृत करते हुए जाँच, दण्ड, अभिरक्षा और पुनर्वास के विशेष प्रावधान किए गए हैं, जो लगभग वयस्कों के प्रावधानों के समान है। इसके बाद् इस प्रकार वर्गीकृत किशोरों को वयस्क मानकर उन पर वयस्कों से सम्बन्धित सभी आपराधिक कानून और प्रक्रियाएं लागू करने का रास्ता साफ हो गया था। किशोरों के इस प्रकार के पृथक वर्गीकरण को गलत बताते हुए बाल अधिकारों से सम्बन्धित अनेक संगठनों और स्वयंसेवी संस्थाओं ने इन प्रावधानों का विरोध किया था। उनका मत था कि किशोरों का उम्र के आधार पर वर्गीकरण करना असंवैधानिक है और किशोरों के समानता के अधिकार का सरासर उल्लंघन है। कानून के जानकार इन प्रावधानों को 'जुवेनाईल वेवर सिस्टम' (जे.एस.ड्ब्ल्यू) की संज्ञा देते है।

समीक्षकों ने जे.एस.ड्ब्ल्यू. को संयुक्त राष्ट्र की बाल अधिकार कंवेन्शन, 1992 (सी.आर.सी) तथा इस प्रकार की अन्य अन्तरराष्ट्रीय संधियों और कन्वेंक्शन, जिनमें 'यूनाइटेड नेशन्स स्टैण्डर्ड मिनिमम रुल्स फॉर दी एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ जुवेनाईल जस्टिस, 1985 (बिजिंग रुल)', 'यूनाइटेड नेशन्स रुल्स फॉर दी प्रोटेक्शन आफ जुवेनाईल डिपईण्ड ऑफ देयर लिबर्टी, 1990', 'दी हेग कन्वेंशन ऑन प्रोटेक्शन ऑफ चिल्डरन एण्ड को–ओपरेशन इन रेस्पेक्ट ऑफ इन्टर कन्ट्री एडोपशन, 1993' और इससे सम्बन्धित अन्य अन्तरराष्ट्रीय प्रावधान शामिल हैं, के विरुद्ध बताया है। अतः यह आवश्यक हो गया है कि जे.एस.ड्ब्ल्यू से सम्बन्धित प्रावधानों को संविधान की कसौटी पर कसा जाए और अन्तरराष्ट्रीय समुदाय को हमारे द्वारा दिए वायदों के प्रकाश में पुनः उनकी समीक्षा की जाएं। यह भी उचित होगा कि इन प्रावधानों की उपयोगिता तथा इन्हें लागू करने में आ रही कठिनाईयों पर भी विचार किया जाए।

जुवेनाईल वेवर सिस्टम

जे.जे.एक्ट 2015 के प्रावधानों के अनुसार सभी अपराधों को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है, छोटे–मोटे अपराध (पेट्टी ऑफेन्सिस)[4], गम्भीर अपराध (सीरियस ऑफेन्सिस)[5] तथा संगीन अपराध (हीनियस ऑफेन्सिस)[6] की संज्ञा दी गई है। पेट्टी ऑफेन्सिस उन अपराधों को कहते हैं जिनमें 3 वर्ष तक की सज़ा का प्रावधान है। सीरियस ऑफेन्सिस में 3 से 7 वर्ष के बीच की सज़ा का प्रावधान होता है। हीनियस ऑफेन्सिस उन अपराधों को कहते है जिनमें 7 वर्ष या उससे अधिक की सज़ा प्रस्तावित है। जे.एस.ड्ब्ल्यू में 16 से 18 वर्ष की उम्र के बीच के किशोरों को जाँच, सज़ा, अभिरक्षा और पुनर्वास के उद्देश्य से अलग से वर्गीकृत किया गया है।

जे.जे. एक्ट 2015 की धारा 14(5)(एफ) के अनुसार 16 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के सभी प्रकार के आपराधिक मामले किशोर न्याय बोर्ड द्वारा आपराधिक दण्ड प्रक्रिया 1973 में दी गई 'समन्स केस' की प्रक्रिया अपनाकर निपटाए जाएंगे। 16 से 18 वर्ष के बीच की उम्र के किशोरों के आपराधिक मामले धारा 15 जे.जे.एक्ट 2015 में दी गई प्रक्रिया के अनुसार बोर्ड द्वारा निपटाए जाएंगे। धारा 15 में किशोरों को वयस्क मानकर आपराधिक न्याय प्रक्रिया चलाने के विस्तृत प्रावधान दिए गए हैं। उम्र की गणना करने के लिए अपराध घटित होने की तिथि को प्रासंगिक माना जाएगा।

धारा 15(1) जे.जे.एक्ट 2015 के अनुसार, यदि 16 वर्ष से अधिक आयु के किसी किशोर की किसी संगीन अपराध में संलिप्तता पाई जाती है तो किशोर न्याय बोर्ड पहले उस किशोर की शारीरिक और मानसिक क्षमता तथा अपराध के परिणामों के बारे में उसकी समझ की परख करने के लिए प्रारम्भिक आकलन (प्रिलिमिनरी एसेस्मेंट) (पी.ए) करेगा। प्रारम्भिक आकलन करने की प्रक्रिया में बोर्ड अनुभवी मनोवैज्ञानिकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और अन्य विशेषज्ञों की मदद ले सकता है। धारा 15(1) में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रारम्भिक आकलन की प्रक्रिया को मुकदमें की प्रक्रिया (ट्रायल) नहीं माना जा सकता। प्रारम्भिक आकलन का उद्देश्य ऐसे किशोर की अपराध करने के पीछे की मंशा और क्षमता की जाँच करना मात्र है।

किशोर न्याय बोर्ड, प्रारम्भिक आकलन के उपरान्त, यह निर्णय करता है कि किशोर को वयस्क मानकर मुकदमा चलाया जाए अथवा नहीं। जहाँ बोर्ड यह निर्णय करता है कि किशोर को वयस्क नहीं माना जा सकता तो ऐसे किशोर का आपराधिक मामला बोर्ड जे.जे.एक्ट 2015 के प्रावधानों के अनुसार निपटा देगा। इस प्रकार के मामले की सुनवाई करते समय बोर्ड दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 में दी गई समन्स केस की प्रक्रिया अपनाएगा।

यदि किशोर न्याय बोर्ड, प्रारम्भिक आकलन के उपरान्त, यह निर्णय करता है कि किशोर को वयस्क मानकर मुकदमा चलाया जाए तो ऐसे किशोर का मुकदमा 'बाल न्यायालय' (चिल्ड्रन्स कोर्ट) में आगे की सुनवाई के लिए भेज दिया जाएगा।[7] जाँच में अवांछित देरी को रोकने के लिए जे.जे.एक्ट 2015 की धारा 15(2) एवं धारा 14(3) में प्रावधान किया गया है कि किशोर के न्यायालय के समक्ष पहली बार पेश होने के 3 माह के अन्दर प्राथमिक आकलन पूरा कर लिया जाना चाहिए। बोर्ड के प्रारंभिक आकलन के सम्बन्ध में दिए गए आदेश धारा 101(2) के अनुसार अपील करने योग्य है।[8] बोर्ड के इन आदेशों के विरुद्ध अपील सत्र न्यायालय में की जा सकती है। सत्र न्यायालय अपील पर निर्णय करते समय कुछ मनोवैज्ञानिकों और चिकित्सकों की मदद ले सकता है, परन्तु ये मनोवैज्ञानिक और चिकित्सक उनसे अलग होने चाहिए जिन्होंने किशोर न्याय बोर्ड को अपनी राय दी थी।[9] सत्र न्यायालय द्वारा अपील में दिए गए निर्णय के विरुद्ध दूसरी अपील नहीं की जा सकती। सत्र न्यायालय का निर्णय अन्तिम होगा। परन्तु सत्र न्यायालय के निर्णय से प्रभावित पक्ष उच्च सक्षम न्यायालय में पुनर्विचार याचिका दायर कर सकता है।

धारा 15 के अन्तर्गत किशोर न्याय बोर्ड द्वारा किए गए प्रारम्भिक आकलन के पश्चात्, बाल न्यायालय प्रारम्भिक आकलन की रिपोर्ट पर नए सिरे से विचार करके यह निर्णय करेगा कि इस प्रकार वयस्क घोषित किए गए किशोर का मुकदमा दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 के प्रावधानों के अनुसार चलाया जाए, अथवा नहीं। यदि बाल न्यायालय यह निर्णय करता है कि वयस्क घोषित किए गए किशोर का मुकदमा जे.जे.एक्ट 2015 के प्रावधानों के अनुसार ही चलना चाहिए तो बाल न्यायालय ऐसा ही करेगा और जे.जे.एक्ट 2015 की धारा 18 में उल्लिखित समुचित दण्ड निर्धारित कर देगा।[10] यदि बाल न्यायालय यह निर्णय करता है कि वयस्क घोषित किए गए किशोर का मुकदमा दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 के प्रावधानों के अनुसार चलाना चाहिए तो वह ऐसा ही करेगा तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 में दी गई प्रक्रिया अपनाते हुए भारतीय दण्ड संहिता 1861 में अपराध के लिए उल्लिखित सज़ा देने के आदेश पारित करेगा। परन्तु, धारा 21 जे.जे.एक्ट 2015 के अनुसार, ऐसे वयस्क घोषित किए गए किशोर को मृत्यु दण्ड और आजीवन कारावास, जिसमें रिहाई की गुंजाइश न हो, जैसी सज़ा नहीं दी जा सकती।

ऐसा किशोर, जिसे वयस्क मानकर सज़ा दी गई हो, को पुनर्वास के लिए 21 वर्ष की उम्र होने तक 'पलेस ऑफ सेफ्टी' नामक किशोर देखभाल संस्था (चाइल्ड केयर इंस्टीट्यूशन) में भेज दिया जाएगा। 21 वर्ष की उम्र पूरी होने के बाद, उसे बाकी बची सज़ा काटने के लिए न्यायालय से आदेश लेकर पलेस ऑफ सेफ्टी से जेल में

स्थानान्त्रित किया जा सकता है। पलेस ऑफ सेफ्टी में सुधार एवं पुनर्वास की सभी सुविधाएं, जैसे शिक्षा पाने और कौशल विकास के अवसर तथा व्यवहार में परिवर्तन के लिए मनोवैज्ञानिक मदद और परामर्श की व्यवस्था उपलब्ध कराई जाएंगी।'[11] इस प्रकार सज़ा काट रहे किशोर–वयस्क पर परिवीक्षा अधिकारी या सामाजिक कार्यकर्ता या जिला बाल संरक्षण इकाई के माध्यम से लगातार निगरानी रखी जाएगी और उसमें आए सुधार और परिवर्तन की समय–समय पर समीक्षा की जाएगी। 21 वर्ष की उम्र पूरी हो जाने पर बाल न्यायालय उपरोक्त समीक्षा के आधार पर यह निर्णय करेगा कि किशोर–वयस्क को बाकी सज़ा काटने के लिए प्लेस ऑफ सेफ्टी से जेल भेजा जाए अथवा, उसमें आए सुधार को देखते हुए, उसकी बाकी सज़ा माफ करके उसे, निगरानी में, वापिस समाज में रहने के लिए भेज दिया जाए।'[12]

जुवेनाईल वेवर सिस्टम की समालोचना

जुवेनाईल वेवर सिस्टम की उपरोक्त प्रक्रिया का अध्ययन करने तथा अन्तरराष्ट्रीय मानकों तथा संविधान और कानून के सभी पहलुओं पर विचार करने के उपरान्त निम्नलिखित बिन्दु स्पष्ट हो जाते हैं:–

1. जुवेनाईल वेवर सिस्टम में उल्लिखित प्रावधान यह इंगित करते हैं कि किशोर–न्याय की अवधारणा का शरीर उसकी आत्मा से विद्रोह कर रहा है। जे.जे.एक्ट 2015 की प्रस्तावना में कहा गया है कि यह अधिनियम बच्चों की मूलभूत जरूरतों, संरक्षण, विकास और समाज में उनके पुनर्वास को बाल–सुलभ तरीकों से सुनिश्चित करेगा। जुवेनाईल वेवर सिस्टम प्रस्तावना के इस आदर्श उद्‌घोष को सार्थक बनाने में किसी भी प्रकार मददगार दिखाई नहीं पड़ रहा है।

2. भारत ने कन्वेंशन ऑन राईटस ऑफ चाईल्ड कन्वेंशन तथा बच्चों के अधिकार से सम्बन्धित अनेक अन्तरराष्ट्रीय संधियों और कन्वेंशन पर हस्ताक्षर किए हुए है। इन सभी अन्तरराष्ट्रीय संधियों और कन्वेंशन के प्रावधानों को मानने के लिए भारत सरकार नैतिक और कानूनी रूप से बाध्य है। उच्चतम न्यायालय ने विशाखा बनाम राजस्थान सरकार प्रकरण[13] में ऐसी ही व्यवस्था दी थी। इन संधियों में यह प्रावधान है कि प्रत्येक सरकार किशोरों को आपराधिकता के दायरे में लाने के लिए न्यूनतम आयु निर्धारित करेगी जो 18 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए। भारत का जुवेनाईल वेवर सिस्टम इस अन्तरराष्ट्रीय मापदण्ड़ पर ख़रा नहीं उतरता है। कन्वेंशन में यह भी व्यवस्था है कि किशोरों के

आपराधिक मामले, जहाँ तक सम्भव हो, न्यायिक प्रक्रिया के बिना ही हल कर लिए जाएं तथा उनके मानवाधिकारों की रक्षा की जाएं। जुवेनाईल वेवर सिस्टम इस व्यवस्था की अवहेलना करता है।

3. चाइल्ड राईट कन्वेंशन से सम्बन्धित कमेटी[14] ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि कंवेन्शन पर हस्ताक्षर करने वाले सभी राष्ट्रों की यह नैतिक और कानूनी जिम्मेदारी है कि वे बच्चों से सम्बन्धित कानून बनाते समय निम्नलिखित मापदण्ड़ों का पालन करेंगे।

(क) अन्तरराष्ट्रीय कानूनों में यह स्थापित है कि वयस्क होने की उम्र 18 वर्ष ही मानी जाएगी और 18 वर्ष से कम उम्र के बच्चों पर किशोर न्याय अधिनियम ही लागू होगा। कन्वेंशन के अनुच्छेद 40 के अनुसार 18 वर्ष से कम उम्र के किशोरों के आपराधिक मामलों पर किशोर न्याय के सिद्धान्तों के अनुसार ही विचार किया जाना चाहिए।

(ख) कमेटी का मानना है कि नागरिकों की सुरक्षा करना सरकार का दायित्व है। सरकारें इस दायित्व को भली–भाँति निभा सकती है यदि वें कंवेन्शन में उल्लिखित बाल न्याय के सिद्धान्तों का पालन करें।

(ग) अपराध में शामिल किशोरों का यह अधिकार है कि उन्हें समाज की मुख्यधारा में पुनः शामिल होने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध हो।[15] जुवेनाईल वेवर सिस्टम इस प्रावधान की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है।

(घ) अपराध में संलिप्त किशोरों को आपराधिक न्याय व्यवस्था की बजाए न्याय वैकल्पिक व्यवस्था के माध्यम से समाज की मुख्य धारा में लाया जाए। (अनुच्छेद 40(3))

(ड़) बदले की भावना (रेट्रीब्यूशन) का किशोर न्याय प्रणाली में कोई स्थान नहीं है। श्री थोमस हैमबरगर, यूरोपीय कौंसिल के मानवाधिकार कमिश्नर ने यह कहा था कि अब समय आ गया है जब हम किशोरों का आपराधीकरण करना बन्द कर दें।[16] उन्होंने जोर देकर कहा था कि 18 वर्ष की उम्र से पहले बच्चों को अपराध के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। कमेटी ने विशेष रूप से यह स्पष्ट किया था कि वह संगीन अपराधों में लिप्त 18 वर्ष से कम उम्र के किशोरों पर आपराधिक जिम्मेदारी डालने के विरुद्ध है। कमेटी ने मजबूती के साथ यह सिफारिश की है कि, अपवाद स्वरूप भी, संगीन अपराधों में लिप्त 18 वर्ष से कम उम्र के किशारों पर आपराधिकता न लादी जाए।[17]

(च) किशोरों से सम्बन्धित प्रत्येक आपराधिक मामले को एक अलग मामला मानकर उस पर निर्णय किया जाए, क्योंकि प्रत्येक किशोर की जरुरतें अलग–अलग होती हैं। कानूनी प्रक्रिया में किशोर के पक्ष को सुना जाए और उसकी उम्र के अनुसार उस पर विचार किया जाए।[18] किशोर के माता–पिता, संरक्षक और परिवार के सदस्यों की राय भी ली जाए।[19] परन्तु प्रत्येक मामले को अलग मामला मानकर निर्णय करने का अभिप्राय यह कतई नहीं है कि किशोर आपराधिकता की उम्र को 18 वर्ष से कम कर दिया जाए।

(छ) कमेटी ने इस बात पर चिन्ता व्यक्त की है कि कुछ सरकारों ने किशोर आपराधिकता की दो न्यूनतम उम्र निर्धारित कर दी है। इन दो न्यूनतम उम्र के बीच आने वाले किशोरों को परिपक्व मानकर उन्हें आपराधिकता के दायरे में ले लिया गया है। कमेटी ने माना है कि इस प्रकार के प्रावधान भयानक है और न्यायालयों को बहुत अधिक अधिकार दे देते हैं, जिसके कारण किशोर भेद–भाव पूर्ण कानूनी प्रक्रिया का शिकार हो जाते हैं।[20] कमेटी ने सरकारों को संगीन अपराधों में किशोर आपराधिकता की उम्र को 18 वर्ष से घटाने की प्रवृत्ति पर लगाम लगाने की नसीहत दी है।[21]

उपरोक्त सभी बिन्दुओं के प्रकाश में यह स्पष्ट हो जाता है कि जुवेनाईल वेवर सिस्टम ऊपर दिए गए मानकों और मापदण्ड़ों की कसौटी पर ख़रा नहीं उतरता है। जुवेनाईल वेवर सिस्टम किशोर न्याय की अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था की मूल भावना को निराधर करता प्रतीत होता है।

4. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15(3), 39 (इ और एफ), 45 और 47 में सरकार पर यह जिम्मेदारी डाली गई है कि वह बच्चों के मानवाधिकारों का संरक्षण करेगी और उनकी सभी प्रकार की जरूरतों को पूरा करेगी। जुवेनाईल वेवर सिस्टम संविधान में उल्लिखित उपरोक्त प्रावधानों की कसौटी पर सच्चा साबित नहीं होता है।

5. जे.जे.एक्ट 2015, जनवरी 2016 में लागू हो गया था। राष्ट्रीय स्तर पर अभी तक ऐसे आँकड़े उपलब्ध नहीं है जिनसे यह साबित किया जा सके कि संगीन अपराधों में लिप्त 16 से 18 वर्ष की उम्र के बीच के ऐसे किशोरों की संख्या कितनी है जिन्हें वयस्क मानकर दण्डित किया गया है। परन्तु एक पुलिस अधिकारी होने के नाते लेखक की जानकारी है कि ऐसे लगभग सभी मामलों में अभियोजन पक्ष किशोर को वयस्क मानकर दण्ड दिलाने की दलील दे रहा है। बलात्कार, बलात्कार के साथ हत्या तथा इसी प्रकार के अन्य संगीन अपराधों में लिप्त लगभग सभी किशोरों को वयस्क मानकर दण्ड़ित करने की

प्रवृत्ति लगातार बढ़ती जा रही है। कोई भी न्यायालय ऐसे किशोरों को किशोर के रूप में स्वीकार करने का पक्षधर नहीं रहा है क्योंकि उन्हें ऐसे किशोर को वयस्क मानकर मुकदमा चलाने का सरल विकल्प कानून ने उपलब्ध करा दिया है। इस प्रकार किशोर एक अघोषित भेदभाव और दोषपूर्ण मन्तव्यों का शिकार हो रहे हैं। इस सम्बन्ध में आंकड़े एकत्र करके जुवेनाईल वेवर सिस्टम की सार्थकता पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।

6. संगीन अपराधों में अधिकतर किशोर समाज के वंचित समाज से आते हैं जिनका आर्थिक और सामाजिक विकास अधूरा होता है। अभाव में मनुष्य बहुत जल्दी परिपक्व नजर आने लगता है जबकि शारीरिक और मनोवैज्ञानिक तथ्य इस निष्कर्ष के विपरीत स्थापित करते हैं। प्रारम्भिक आकलन करने की प्रक्रिया के लिए कोई मापदंड, सिद्धान्त अथवा नियमाक निर्धारित नहीं किए गए हैं। इस प्रक्रिया की वस्तुनिष्ठा पर सन्देह है और ऐसे में व्यक्तिगत दुराव और मत महत्वपूर्ण हो जाता है। इन परिस्थितियों में यह मान लेना ठीक नहीं होगा कि प्रारम्भिक आकलन करने की प्रक्रिया सदैव पारदर्शी, वैज्ञानिक और किशोर के पक्ष में होगी। इस प्रक्रिया में किशोर—न्याय के प्रमुख सिद्धान्त 'किशोर का हित सर्वोपरि हो' की अवहेलना होने की अधिक संभावना दिखाई देती है।

7. किसी भी संगीन अपराध की घटना घटित होने के पश्चात् मीडिया में तरह—तरह के विश्लेषण और सनसनीखेज समाचार प्रकाशित और प्रचारित होते हैं। इस प्रचार से न्याय—व्यवस्था में बैठा कोई भी व्यक्ति अछूता नहीं रह पाता है। अतः इसकी संभावना न के बराबर होगी कि जुवेनाईल वेवर सिस्टम में कोई न्यायालय किशोर के हितों की रक्षा कर पाएगा। सार्वजनिक आक्रोश और निंदा से बचने के लिए न्यायालय अपराधी को कठोर से कठोर दन्ड देने के लिए तत्पर होगा।

8. यदि किशोर को वयस्क मानकर दण्डित किया जाता है तो उसे सुधार और पुनर्वास के उतने अवसर प्राप्त नहीं होते हैं जिनका वह एक किशोर के रूप में हक़दार है। जेल में भेजे जाने के बाद तो इसकी गुंज़ाइश कतई नहीं बचती है। जेलों में जिस प्रकार का वातावरण है उसमें किसी भी युवा अपराधी के सुधरने की सम्भावना समाप्त हो जाती है।

9. जुवेनाईल वेवर सिस्टम में किशोर को वयस्क मानकर दण्डित करके प्लेस ऑफ सेफ्टी में भेजने के पीछे यह मन्तव्य था कि वहाँ उसे सुधरने और समाज की मुख्य धारा में लौटने में सहायक सुविधाएं जैसे— शिक्षा, मनोरंजन, कौशल विकास तथा व्यवहारिकता सीखने की व्यवस्था इत्यादि, उपलब्ध होंगी।

वस्तुस्थिति यह है कि अभी तक एक–दो जगह को छोड़कर प्लेस ऑफ सेफ्टी नाम की संस्था ही उपलब्ध ही नहीं है और जहाँ सरकारों ने प्लेस ऑफ सेफ्टी बनाए हैं वहाँ भी किशोरों को सुधारने के लिए आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध नहीं कराई गई हैं। फिर हम ऐसे किशोरों के सुधरने की कल्पना कैसे कर सकते हैं?

निष्कर्ष

जुवेनाईल वेवर सिस्टम, किशोर न्याय अधिनियम 2015 की धारा 3 में उल्लिखित किशोर–न्याय के प्रमुख सिद्धान्त 'निर्दोष होने की मान्यता' की मूल भावना के विरुद्ध है। इस सिद्धान्त में स्पष्ट किया गया है कि किशोर आपराधिकता की उम्र को 18 वर्ष की उम्र से कम न रखा जाए। चाइल्ड राईट कन्वेंशन 1992 की मूल भावना में भी यही निहित है कि संगीन अपराधों में लिप्त किशोरों को वयस्क मानकर दण्डित न किया जाए। किशोरों को वयस्क मानकर दण्डित करना, विशेषकर तब जब उनके सुधार और पुनर्वास के समुचित साधन उपलब्ध न हो, प्रयोजनहीन अवधारणा है। यह अवधारणा दिल्ली के बहुचर्चित निर्भया बलात्कार एवं हत्या प्रकरण के बाद नागरिकों के रोष के फलस्वरुप कानून में स्थापित हुई है। उल्लेखनीय है कि निर्भया प्रकरण के बाद गठित जस्टिस वर्मा आयोग ने अपनी रिपोर्ट में किशोरों को वयस्क मानकर दण्डित करने की अवधारणा को सिरे से ख़ारिज कर दिया था। यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि नीति–निर्धारकों ने दण्ड़ विधानों को कठोर बनाकर अपराध और अपराधियों पर नियन्त्रण करने का सरल और सुलभ उपाय ढूँढ लिया है। दण्ड के कठोर प्रावधान दण्ड प्रक्रिया को पुनः 18वीं और 19वीं सदी की व्यवस्था की ओर ढकेल रहे है जहाँ अपराधियों को कठोर से कठोर दण्ड देकर समाज में व्यवस्था स्थापित करने की अवधारणा प्रचलित थी। यह एक नकारात्मक प्रवृत्ति का परिचायक है। प्रत्येक मनुष्य की जिन्दगी महत्त्वपूर्ण है। बचपन में अज्ञानता और संरक्षण के अभाव में किसी से भी गलती हो सकती है। बचपन को सुधरने का एक अवसर जरूर मिलना चाहिए। यह अवधारणा ठीक नहीं है कि कुछ किशोर 16 वर्ष की उम्र में ही शारीरिक और मानसिक रूप से परिपक्व हो जाते हैं। इस अवधारणा के पोषक यह समझने में विफल है कि किसी विषय के बारे में जानकारी होने का मतलब यह बिल्कुल नहीं हो सकता कि ऐसे व्यक्ति का विवेक भी परिपक्व हो चुका है। 18 वर्ष की उम्र से पहले किसी भी किशोर का विवेक विकसित होना असंभव है चाहे उसे किसी विषय की कितनी भी जानकारी क्यों न हो। वस्तुतः 16 वर्ष की उम्र में तो शारीरिक विकास भी पूर्ण नहीं होता है, विवेक के पूर्णतया विकसित होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। विश्वास और विवेक समय और अनुभव के साथ ही विकसित होते हैं। जुवेनाईल वेवर सिस्टम किशोरों के साथ न्याय नहीं कर रहा है। इस सिस्टम पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है ताकि कुछ बहुमूल्य किशोर

जिंदगियों को मनुष्य जीवन के महत्त्व को समझकर जीवन जीने के पूरे अवसर मिल सके। यही सम्पूर्ण न्याय होगा। जुवेनाईल वेवर सिस्टम अधूरा न्याय है।

संदर्भ

1. अधिनियम संख्या 56, वर्ष 2000
2. अधिनियम संख्या 2, वर्ष 2016
3. यह संसदीय समिति किशोर बाल न्याय बिल 2014 का परीक्षण करने के लिए श्री जगत प्रसाद नड्डा की अध्यक्षता में 1 सितम्बर 2014 को गठित की गई थी। बाद में डा. सत्यप्रकाश जटिया इस समिति के अध्यक्ष बने थे। इस समिति ने रिपोर्ट संख्या 264, 16 फरवरी 2015 को प्रस्तुत की थी।
4. धारा 2(34), जे.जे.एक्ट 2015
5. धारा 2(54), जे.जे.एक्ट 2015
6. धारा 2(33), जे.जे.एक्ट 2015
7. धारा 18(3), जे.जे. एक्ट 2015
8. अपवाद (प्रोविजो), धारा 15(2), जे.जे.एक्ट 2015
9. धारा 101(2), जे.जे.एक्ट 2015
10. धारा 19, जे.जे.एक्ट 2015
11. धारा 19(3), जे.जे.एक्ट 2015
12. धारा 20(1), जे.जे.एक्ट 2015
13. विशाखा व अन्य बनाम राजस्थान, सी.आर.डबल्यू पी. न. 666–70 ऑफ 1997 एस.सी. 241
14. अनुच्छेद 40(3), चाइल्ड राईट कन्वेंशन 1992
15. कमेटी ऑन राईट्स ऑफ दि चाईल्ड, जनरल कमेंट नं0 10, चिल्डरन राईट्स इन जुवेनाईल जस्टिस, सीआरसी/सी/ जीसी/10, 25 अप्रैल 2007, पैरा 36 और 37
16. अनुच्छेद 40(3), कन्वेंशन ऑन चाइल्ड राईट 1992
17. थौमस हेमबरगर, कमिशन ऑफ ह्यूमन राईटस फॉर दि कौंसिल ऑफ यूरोप, views at HTTP://www.coe.int/t/commissioner/Viewpoints/07011-en.esp
18. कमेटी ऑन राईट्स ऑफ दि चाईल्ड, जनरल कमेंट नं0 10, चिल्डरन राईट्स इन जुवेनाईल जस्टिस, सीआरसी/सी/ जीसी/10, 25 अप्रैल 2007, पैरा 34
19. उपरोक्त, 20 जुलाई 2009 पैरा 29 एवं 59
20. उपरोक्त, 25 अप्रैल 2007 पैरा 43 से 45
21. उपरोक्त, पैरा 30
22. उपरोक्त, पैरा 34

****

विस्थापित कश्मीरी पंडित : मानवाधिकार के सरोकार

राम शरण तिवारी*

बीज शब्द : मानवाधिकार, अलगाववादी आंदोलन, कश्मीरी पंडित, यंत्रणा, योजनाएं

सारांश

मानवाधिकारों की आदर्श संकल्पना भारतीय संविधान द्वारा नागरिकों को प्रदत्त मौलिक अधिकारों में परिलक्षित होती है। देश की स्वतंत्रता के बाद राज्य की नीतियों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष एवं अलगाववादी आंदोलन इनके लिए बड़ी चुनौती प्रस्तुत करते हैं जो जम्मू–कश्मीर, पूर्वोत्तर के कुछ राज्यों में तथा मध्य–पूर्वी राज्यों में उभरे हैं। विशेष तौर पर जम्मू–कश्मीर में लगातार बढ रही आतंकी गतिविधियों के कारण वहां रह रहे कश्मीरी पंडितों के मानवाधिकारों का हनन लगातार जारी है। इतिहास क्रम में वे पूर्व में सम्मानजनक स्थिति में थे और वर्तमान में वे अनेक तरह की यंत्रणा झेल रहे हैं। आज के उनके हालात चिंताजनक स्थिति को व्यक्त करते हैं। भारत सरकार द्वारा उनकी सुरक्षा के लिए लगातार प्रयास हो रहे हैं। इन प्रयासों के विश्लेषण से पता चलता है कि उपलब्ध की जाने वाली वित्तीय सहायताओं एवं विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन के बीच एक लम्बी खाई है। प्रभावी व्यवस्था के लिए इस खाई को पाटना आवश्यक है।

देश में सशस्त्र संघर्ष वाले क्षेत्रों में आतंकी गतिविधियों व हिंसा से प्रभावित होने के कारण अपने मूल स्थानों से देश के अन्य भागों में विस्थापित हुए लोग भी सभी प्रकार के मानवाधिकारों के हकदार हैं। वर्तमान में, भारत में आंतरिक सशस्त्र संघर्ष वाले तीन प्रमुख क्षेत्र हैं – जम्मू–कश्मीर, पूर्वोत्तर राज्य और मध्य व पूर्वी भारत। जम्मू–कश्मीर में तो आजादी के समय से ही बड़ी संख्या में पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवादी व अलगाववादी सक्रिय हैं जो कि जम्मू–कश्मीर राज्य का पाकिस्तान में विलय अथवा अलग स्वतंत्र इस्लामिक राष्ट्र बनाने के लिए राज्य में हिंसक गतिविधियों को अंजाम दे रहे हैं। जबकि पूर्वोत्तर राज्यों और मध्य व पूर्वी भारत में माओवादी तथा नक्सली विद्रोही अधिक स्वायत्तता अथवा सत्ता प्राप्ति के लिए सशस्त्र संघर्ष का रास्ता अपना रखे हैं। उत्तर–पूर्वी राज्यों (विशेष रूप से असम, मणिपुर, मिजोरम और नागालैंड) ने

***एस.जी.टी. यूनिवर्सिटी, गुरुग्राम (हरियाणा) में मेडिकल सोशल वर्कर**

अलगाववादी समूहों के सशस्त्र विद्रोह के साथ ही साथ जातीय हिंसा का भी अनुभव किया है। आजादी के बाद से अब तक बहुत बड़ी संख्या में लोग इस प्रकार की प्रायोजित हिंसा के शिकार हुए हैं तथा अपनी जमीन–जायदाद व व्यवसाय आदि को छोड़कर देश में अन्यत्र शरण लेने को विवश हुए हैं। यहाँ पर हम जम्मू–कश्मीर राज्य में आतंकवादियों द्वारा किए जा रहे हिंसक रक्तपात के कारण वहाँ से पलायन को विवश किए गए कश्मीर के अल्पसंख्यक नागरिकों विशेषकर कश्मीरी पंडितों के मानवाधिकारों की स्थिति व इनके प्रति शासन की नीतियों का अवलोकन करेंगे।

कश्मीरी पंडितों के मानवाधिकारों का हनन

ऐतिहासिक स्रोतों से पता चलता है कि घाटी में कश्मीरी पण्डितों का इतिहास बहुत पुराना है। वहाँ रहने वाले हिन्दुओं को कश्मीरी पण्डित कहा जाता है। इनमें से अधिकतर हिन्दू ब्राह्मण थे और इनका मुख्य पेशा शिक्षा देना होता था। इसी वजह से इनके नाम के साथ पण्डित जुड़ा हुआ है। ब्राह्मणों के अलावा कश्मीर में अन्य हिन्दू जातियां भी रहती थीं। 1947 में आजादी मिलने के तुरंत बाद ही पठान जातियों ने पाकिस्तानी सेना के सहयोग से कश्मीर पर हमला कर दिया और कश्मीर के एक तिहाई भूभाग पर पकिस्तान ने कब्जा जमा लिया। इस क्षेत्र में रहने वाले बहुत से कश्मीरी हिंदुओं, जिसमें बच्चे व महिलाएं भी शामिल हैं, को बर्बरतापूर्वक मौत के घाट उतार दिया गया और इस क्षेत्र को पूरी तरह से हिंदू विहीन बनाने का प्रयास किया गया। बचे हुए लोग अपनी जान बचाकर भारत के हिस्से वाले कश्मीर के अन्य भागों में जाकर बस गए और अपना जीवन–यापन करने लगे। तभी से राज्य में पाकिस्तान समर्थित अलगाववादी व आतंकवादी गतिविधियाँ जारी रहीं। राज्य में हिंदू–मुस्लिमों के बीच सांप्रदायिकता का जहर घोला जाता रहा व वहाँ के बहुसंख्यकों को इस्लामिक राष्ट्र स्थापित करने के सपने दिखाये जाते रहे। फलस्वरूप, नब्बे के दशक में एक बार पुनः घाटी में कश्मीरी अल्पसंख्यकों (पण्डितों) के प्रति अत्याचार बढ़ने लगा। पाकिस्तान समर्थित आतंकवादियों व अलगाववादियों द्वारा भारत के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष में कश्मीरी पण्डितों को अपने साथ शामिल होने तथा सरकार के खिलाफ हथियार उठाने को कहा गया। किंतु शांतिप्रिय तथा भारतीय संप्रभुता, एकता व अखंडता में विश्वास रखने वाले कश्मीरी नागरिकों विशेषकर कश्मीरी हिंदुओं द्वारा अलगाववादियों के इस प्रस्ताव को मानने से इंकार करने पर राज्य में इनका कत्लेआम शुरू हो गया। इनके घरों को आग लगा दी गई। इलाके के पूजा घरों को भी नष्ट किया गया। हिन्दू कश्मीरियों को रातों रात घाटी छोड़कर भागना पड़ा था। यह पलायन कश्मीरी पंडितों के लिए एथनिक क्लींजिंग जैसा था... यानी लगभग पूरी कौम का घाटी से सफाया। बीबीसी रिपोर्टर जुबैर अहमद के अनुसार, "वे ऐसे भागे थे घर से, जैसे भूकंप आ गया हो... घरों में सामान बिखरा पड़ा था...गैस स्टोव पर देगचियां और रसोई में बर्तन इधर

उधर फेंके हुए थे। घरों के दरवाजे खुले थे। हर घर में ऐसा ही समां था। ऐसा लगता था कि भूकंप के कारण घर वाले अचानक अपने घरों से भाग खड़े हुए हों ... हुआ भी ऐसा ही था। फर्क केवल इतना था कि ... ये प्राकृतिक आपदा का नतीजा नहीं था।"

इसकी शुरुआत 14 सितम्बर, 1989 को हुई थी जब भाजपा की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य और पेशे से वकील पण्डित तिलक लाल तप्लू की हत्या कर दी गई। इसके बाद एक अलगाववादी नेता को फांसी की सजा सुनाने वाले जस्टिस नील कान्त गंजू की गोली मारकर हत्या कर दी गई। एक–एक करके सभी कश्मीरी पण्डित नेताओं की हत्या कर दी गई और आम जनता को भी निशाना बनाया जाने लगा। 300 से अधिक कश्मीरी पण्डितों का कत्लेआम किया गया और उन्हें अपना घरबार छोड़ घाटी से बाहर जाने को विवश किया गया। इतने गंभीर विषय पर भी तत्कालीन राज्य और केंद्र सरकारें अपनी सियासी रोटी सेंकती रही और कश्मीरी पण्डितों के पलायन को रोकने के लिए कोई प्रभावी कदम नहीं उठाया गया। समाचार माध्यमों से भी समुदाय विशेष को घाटी छोड़ चले जाने की हिदायत मिलने लगी।

कश्मीरी पण्डितों के लगातार हो रहे कत्लेआम के बाद घाटी में असुरक्षा का माहौल बन गया था। सभी कश्मीरी पण्डितों के दरवाजों पर यह चेतावनी चस्पा दी गई थी "या तो अपना धर्म परिवर्तन कर ले या घाटी छोड़कर भाग जाओ, नहीं तो मरने के लिए तैयार रहो।" पाकिस्तान के प्रभाव में घाटी में भारत और दूसरे समुदाय विशेष विरोधी जहर उगल रही थी। और धार्मिक स्थलें एक सम्प्रदाय को दूसरे सम्प्रदाय के खिलाफ भड़काया जा रहा था। तत्कालीन पाकिस्तानी प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो ने टीवी पर कश्मीरी मुस्लिमों को आजादी के लिए भड़काना शुरू कर दिया था। घाटी में बिगड़ते हालातों को देख 19 जनवरी, 1990 की रात को घाटी से तकरीबन 2,00,000 कश्मीरी पण्डित पलायन कर गए। कश्मीरी पण्डित संघर्ष समिति के अनुसार, वर्ष 1989 में घाटी में कश्मीरी पण्डितों की संख्या 3,75,000 थी। 90 के दशक में अलगाववादी और आतंकवादी हमलों के चलते वर्ष 1992 तक घटकर मात्र 32,000 रह गई। वर्तमान समय में तकरीबन 7,50,000 कश्मीरी पण्डित अपने ही देश में शरणार्थी बन जी रहे हैं। जम्मू और दिल्ली के शरणार्थी शिविरों में ये नरक सी जिंदगी काट रहे हैं।संपन्न घरों के बच्चे–बच्चियाँ टेण्टों में ही रहने, खाने व पढ़ने को विवश हो गए।

मानवाधिकारों का हनन रोकने के लिए शासन के प्रयास

भारत सरकार द्वारा घोषित आंकड़ों के अनुसार, 1990 के दशक की शुरुआत में जम्मू–कश्मीर राज्य में आतंकवादियों द्वारा शुरू हिंसक वारदातों के कारण, अधिकांश कश्मीरी पंडित परिवारों के साथ–साथ कुछ सिख और मुस्लिम परिवार कश्मीर घाटी से जम्मू, दिल्ली और देश के अन्य हिस्सों में पलायन कर गए। वर्तमान में पंजीकृत

कश्मीरी प्रवासी परिवारों की संख्या लगभग 62,000 है। जिसमें से जम्मू में लगभग 40,668 पंजीकृत कश्मीरी प्रवासी परिवार रह रहे हैं लगभग 19,338 पंजीकृत कश्मीरी प्रवासी परिवार दिल्ली में हैं तथा लगभग 2,000 परिवार अन्य राज्यों में बस गए हैं।

कश्मीर से विस्थापित परिवारों को केन्द्र सरकार द्वारा वित्तीय सहायता की राहत प्रदान की जा रही है। इनकी पुनः घाटी में वापसी के लिए कई कदम उठाए गये हैं जिसके तहत योजनाएं क्रियान्वित की जा रही हैं। दिल्ली एनसीआर, जम्मू तथा देश के अन्य भागों में रहने वाले इन कश्मीरी प्रवासियों को उन राज्य की सरकारों द्वारा प्रति माह प्रति व्यक्ति 1650 रूपये की दर (अधिकतम 6,600 रूपये प्रति परिवार प्रति माह) से नकद राहत राशि प्रदान की जा रही थी जिसे 1 मई 2015 से बढ़ाकर प्रति माह प्रति व्यक्ति 2,500 रूपये (अधिकतम 10,000 रूपये प्रति परिवार प्रति माह) कर दिया गया है। इसके साथ ही सूखा राशन– 9 किलो चावल, 2 किलो आटा प्रति व्यक्ति प्रति माह और 1 किलो चीनी प्रति परिवार प्रति माह दिया जाता है। इसका लाभ जम्मू में रहने वाले 18,250 तथा दिल्ली में रहने वाले 3,385 योग्य परिवारों को मिल रहा है। इस संबंध में जम्मू कश्मीर सरकार द्वारा व्यय की गई राशि भारत सरकार के गृह मंत्रालय द्वारा प्रतिपूर्ति की जाती है।

कश्मीरी प्रवासियों के पुनर्वास के लिए केंद्र सरकार द्वारा विगत वर्षों में अनेक उपाय किए गए हैं। प्रधानमंत्री पैकेज–2004 के अंतर्गत, जम्मू में 4 स्थानों पुरखू, मुठी, नगरोटा और जगती में दो कमरे के 5242 मकानों का और बडगांव जिला में शेखपुरा कश्मीर घाटी में 200 फ्लैटों का निर्माण करके उन्हें प्रवासियों को आबंटित किया गया है। कश्मीरी प्रवासियों की वापसी एवं पुनर्वास के लिए सरकार द्वारा वर्ष 2008 में 1618.40 करोड़ रू० की राशि के एक व्यापक पैकेज की घोषणा की गई थी, जिसमें राज्य सरकार के 3000 रोजगार, मकानों की खरीद, निर्माण के लिए वित्तीय सहायता, ट्रांजिट आवासों के निर्माण, प्रवासियों को नकदी राहत जारी रख, छात्रों के लिए छात्रवृत्ति, स्वरोजगार के लिए सहायता, किसानों एवं बागवानों के लिए सहायता, नहीं चुकाए जा सके ऋणों पर ब्याज की माफी आदि का प्रावधान शामिल है। इस पैकेज का क्रियान्वयन जम्मू एवं कश्मीर राज्य सरकार द्वारा किया जा रहा है। अभी तक 1963 प्रवासी युवाओं को सरकारी रोजगार का प्रस्ताव दिया गया है, जिसमें से 1719 युवकों ने कार्यभार ग्रहण कर लिया है। इस पैकेज के अंतर्गत कश्मीर घाटी में 505 ट्रांजिट आवासों का निर्माण किया गया है और उन्हें प्रवासी कर्मचारियों को आबंटित कर दिया गया है। इसके अलावा, सरकार ने दिनांक 18 नवंबर, 2015 को एक अन्य पैकेज अनुमोदित किया है जिसमें कश्मीरी प्रवासियों को राज्य सरकार के 3000 अतिरिक्त रोजगार के लिए और कश्मीर घाटी में 6000 ट्रांजिट आवासों के निर्माण के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने हेतु 2000 करोड़ रुपये का अनुमानित व्यय शामिल है।

इसके साथ ही साथ विस्थापित कश्मीरियों के घाटी में पुनर्वास के लिए भारत सरकार राज्य सरकार के साथ मिलकर 'संयुक्त नगरक्षेत्र' स्थापित करने की दिशा में कार्य कर रही है। इसके लिए जम्मू–कश्मीर की प्रदेश सरकार से कश्मीर घाटी में उपयुक्त भूमि की पहचान करने का अनुरोध किया गया है, जहां कि कश्मीरी प्रवासियों को पुनः बसाया जा सके।

कश्मीरी पंडितों की वर्तमान स्थिति

यद्यपि सरकारी तंत्र यह दावा करता है कि विस्थापितों के लिए आवश्यक सभी बुनियादी सुविधाएं पर्याप्त रूप से उपलब्ध करवाई जा रही हैं, परंतु जमीनी हकीकत इसके उलट है। विस्थापन कैम्पों में रहने वाले लोगों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। बुनियादी सुविधाओं जैसे रहने के लिए पर्याप्त जगह, पीने का स्वच्छ व पर्याप्त पानी, सैनिटेशन, चारों ओर की साफ सफाई आदि का नितांत अभाव है।

इन विस्थापित कश्मीरियों की स्थिति किसी झुग्गीवासी से ज्यादा अच्छी नहीं कह सकते। अपने मूल स्थान से विस्थापित होने के बाद इनका जीवन अत्यंत ही बदतर स्थिति में पहुँच गया है। विभिन्न समाचार एजेंसियों व स्वयंसेवी संगठनों द्वारा इन क्षेत्रों का समय समय पर किए गए सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि विस्थापन कैम्पों में रहने वाले इन लोगों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इनके जीवन की बुनियादी सुविधाएं जैसे रहने के लिए पर्याप्त जगह, पीने का स्वच्छ व पर्याप्त पानी, सैनिटेशन, साफ–सफाई, बच्चों के लिए पर्याप्त शिक्षा व्यवस्था, स्वास्थ्य सुविधाओं की सहज उपलब्धता आदि, जो कि इनका मानवाधिकार भी है, का नितांत अभाव है। एक न्यूज चैनल जी–मीडिया द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट 'जी जानकारी : जाने न कोई कश्मीरी पंडितों का दर्द' इनकी स्थिति को और स्पष्ट कर देता है।

"आज की तस्वीर यही है...कि कश्मीरी पंडित अभी भी ...अपने ही देश में तिनकों की तरह इधरउधर बिखर कर रह गए हैं...और उन्हें पूछने वाला कोई नहीं है ...कश्मीरी पंडितों की कुल आबादी 4 लाख से 7 लाख के बीच मानी जाती है। कश्मीर घाटी से पलायन करने वाले कश्मीरी पंडित जम्मू और देश के अन्य इलाकों में शरणार्थी शिविरों में रहते हैं जहां उनका जीवन मुश्किलों से भरा हुआ है। जिसके कारण इनकी आबादी लगातार कम होती जा रही है। एक गैर सरकारी संगठन की रिपोर्ट के मुताबिक, वर्ष 1990 से 2014 के दौरान कश्मीर से पलायन करने वाले करीब 4 लाख परिवारों में सिर्फ 10 हजार बच्चों ने जन्म लिया है। जबकि इसी दौरान 23 हजार 708 कश्मीरी पंडितों की मौत हुई है। यानी कश्मीरी पंडितों की जन्म दर और मृत्यु दर में दोगुने से भी ज्यादा का अंतर है। अगर ऐसे ही चलता रहा तो अगले कुछ वर्षों में कश्मीरी पंडितों का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाएगा। देश में कश्मीरी पंडितों की घटती आबादी की

कई वजहें हैं। एक रिपोर्ट के मुताबिक कश्मीरी पंडितों की युवा पीढ़ी में नौकरियां न मिल पाने के कारण शादी को लम्बे समय तक टालने की प्रवृत्ति बढ़ी है। बुजुर्ग कश्मीरी पंडित पलायन की त्रासदी को दिलोदिमाग में बैठाए हुए हैं...ये सोच... उन्हें समय से पहले बूढ़ा कर रही है...और उनकी मौत समय से पहले हो रही है।"

ये विस्थापित कश्मीरी नागरिक अपने जन्मस्थान से दूर सामाजिक–आर्थिक समस्याओं से जूझने के साथ ही साथ मानसिक समस्याओं से भी गुजर रहे हैं। आज, विस्थापन का दर्द प्रत्येक कश्मीरी पंडितों की बातों में साफ झलकता है, जिसका स्पष्ट प्रमाण एबीपी न्यूज द्वारा की गई पड़ताल के बाद प्रकाशित रिपोर्ट '26 वर्षों से विस्थापित कश्मीरी पंडितों की सच्ची कहानी : मैं कश्मीरी पंडित' में मिल जाता है–

"दिल्ली में रह रहे 'विजय' का परिवार... जेहादियों के विरोध के बाद किसी तरह जान बचाकर दिल्ली चला आया। 38 साल की उम्र में इन्हें अपनी बसी बसायी जिंदगी छोड़ने को मजबूर कर दिया गया। विजय की उम्र अब 63 साल हो चुकी है। अपनी बर्बादी के इनके पास लंबी दास्तां है। 'कमल'..... श्रीनगर के लाल चौक से करीब 4 किलोमीटर की दूरी पर इनका राइनवारी में घर था। 21 अप्रैल को ये दिल्ली चले आए। तीन दिन तक इन्हें दिल्ली में फुटपाथ पर सोना पड़ा। मुश्किल से नौकरी मिली। श्रीनगर की बसी बसाई जिंदगी को छोड़ने के बाद कमल को दिल्ली में नए सिरे से सब कुछ शुरू करना पड़ा। 'अजय'... पनुन कश्मीर के चेयरमैन हैं। पनुन कश्मीर कश्मीरी पंडितों की संस्था है जिसका मकसद वापस कश्मीर लौटना है। 26 साल बाद आज भी इन्हें याद है कि किस तरह उन्हें अपने ही घर से निकाल दिया गया था। 'अग्निशेखर'... (आज 60 साल के) को 34 साल की उम्र में इन्हें अपनी वादी छोड़ कर दिल्ली भागना पड़ा। जेहादी इनकी जान के पीछे पड़ गए थे। इनकी आंखों के सामने ही लोगों को जिंदा जला दिया गया था। यह जम्मू से करीब 30 किलोमीटर दूर राज्य सरकार की बनाई गई विशेष जगती कॉलोनी। इस कॉलोनी में करीब 4200 कश्मीरी पंडित अपने परिवारों के साथ विस्थापितों की जिंदगी जीने को मजबूर हैं। 'रोशन' ने जवानी के दिनों में कश्मीर का आतंकवाद और उसके बाद विस्थापन का दर्द झेला है। 26 साल बाद भी रोशन अपनी घर वापसी का सपना देख रहे हैं। 'रविंदर' ने अपनी जिंदगी विस्थापन में काटी है। इनका आरोप है कि सरकार ने इनके लिए कुछ भी नहीं किया। रविंदर को एक परेशानी यह भी सता रही है कि उन्होंने तो जैसे–तैसे अपनी उम्र काट ली लेकिन अब उनके बच्चों का क्या होगा।

कश्मीर से विस्थापित हो चुके पंडित आज 28वां ''विस्थापन दिवस'' मना रहे हैं। वहीं वो कश्मीरी पंडित जो खराब हालात के बावजूद कश्मीर घाटी में ही रहे... आज अपने आप को ठगा महसूस कर रहे हैं। इन कश्मीरी पंडितों की शिकायत ये है कि

सरकार इन्हें भूल गयी है। श्रीनगर के पुराने शहर का हब्बा कदल का इलाका। संकरी गलियों वाले इस इलाके में 1990 तक सबसे ज्यादा कश्मीरी पंडित रहते थे। आज भी चुनाव आयोग के मुताबिक इस चुनाव क्षेत्र में 30 हजार से ज्यादा कश्मीरी पंडित वोटर हैं लेकिन सब के सब विस्थापित हैं। हब्बा कदल में आज रह रहे दस परिवारों में से एक है 'भूषण' का परिवार। 65 साल के भूषण का कहना है कि इनका परिवार आज सरकार की अनदेखी का शिकार बन कर रह गया है। परिवार का आरोप है कि केंद्र और राज्य सरकार की प्राथमिकता सिर्फ कश्मीर से पलायन कर चुके कश्मीरी पंडितों के पुनर्वास पर टिकी है। घाटी में रह रहे पंडित उपेक्षित महसूस कर रहे हैं।

कश्मीरी पंडित परिवारों की पूरी कश्मीर घाटी में यही कहानी है। शिक्षा विभाग में लेक्चरर रह चुके 'मोती' का परिवार भी पिछले 26 सालों में कश्मीर घाटी में घटी हर घटना को अपनी आंखों से देखा और दिल से महसूस किया है। श्रीनगर के गावकदल में रह रहे इस परिवार की कहानी भी सभी कश्मीरियों की तरह ही संघर्ष भरी है। 'रूपा' 26 साल के खून खराबे और हिंसा के बावजूद कश्मीर में अपने पति और परिवार के साथ रह रही हैं। इन्हें कभी अपने से भिन्न समुदाय के पड़ोसियों से परेशानी नहीं हुई। कश्मीरी विस्थापितों के पुनर्वास के नाम पर भी कुछ अच्छा सलूक नहीं हुआ ये शिकायत भी है उन लोगों की जो सरकारी पुनर्वास पैकेज पर वापस लौटे। श्रीनगर से 22 किलोमीटर दूर शेखपूरा में जम्मू और बाकी देश में बसे विस्थापितों के पुनर्वास के लिए कॉलोनी बनायी गयी। सैकडों की संख्या में पुनर्वास के नाम पर कश्मीरी पंडितों को सरकारी नौकरी दी गयी। कॉलोनी में रहने के लिए घर दिया गया लेकिन पुनर्वास नहीं हुआ। 37 साल के 'साहिल' सरकारी पैकेज के तहत पांच साल पहले घाटी में वापस आए। आज इनके पास नौकरी है, घर है लेकिन अकेले रहने पर ये मजबूर हैं। आज भी साहिल अपने घर में नहीं रह सकते हैं और ना ही अपने पड़ोसियों के साथ मेल मिलाप बढ़ा सकते हैं। ये कहानी साहिल की ही नहीं इस कॉलोनी में रहने वाले सभी पुनर्वासित विस्थापितों की है जो आज भी सामान्य जीवन को तरस रहे हैं।"

कश्मीरी पंडितों का पलायन आजादी के समय देश के बंटवारे के बाद हुआ सबसे बड़ा पलायन था। 11 जून 1999 को राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने अपने एक फैसले में कश्मीर पंडितों पर हुए अत्याचारों को जनसंहार की श्रेणी में बताया था। परंतु, इतनी बड़ी घटना के लगभग 28 वर्ष बाद भी आज कश्मीरी पंडित अपने ही देश में तिनकों की तरह इधर–उधर बिखर कर रह गए हैं। पिछले वर्ष जम्मू–कश्मीर विधानसभा ने कश्मीरी पंडित और दूसरे विस्थापितों की कश्मीर घाटी में वापसी के लिए एक संकल्प पारित किया था। जिसमें कहा गया था कि घाटी में लोगों की वापसी हो, इसके लिए बेहतर माहौल तैयार करने की जरूरत है। तब थोड़ी आशा की किरण दिखाई पड़ी थी। किन्तु, आतंकवादी बुरहान वानी के एंकाउण्टर पर कश्मीर घाटी में

घटित हिंसा व कटु राजनैतिक प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप लगभग 600 कश्मीरी पंडित परिवारों को घाटी छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। ऐसे में पुर्नवापसी की आस लगाए विस्थापितों के दिलों में न्याय की आस और धुंधली पड़ने लगती है।

आज, आजादी के सत्तर वर्ष बीत जाने के बाद भी सवाल ये है कि ...देश के बुद्धिजीवी और खुद को आम जनता का हमदर्द बताने वाले राजनेता... इतने पत्थरदिल कैसे हो सकते हैं ... कि ... उन्हें इतने वर्षों तक कश्मीरी पंडितों का दर्द ही दिखाई ना दे...? अगर कश्मीरी पंडितों की ऐसी ही स्थिति बनी रही, तो एक दिन उनका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा और इसके जिम्मेदार हम सब होंगे।

संदर्भ

1. भारत का संविधान, भारत सरकार
2. कराह रही है घाटी : अपने ही देश में शरणार्थी बन जीने को मजबूर हैं कश्मीरी पण्डित, श्री हिमांशु पांडेय, द इंडियन वायर, दिनांक 02 अक्टूबर, 2017
3. लोक सभा में सदस्यों श्री पी। नागार्जन।।। आदि के अतारांकित प्रश्न संख्या 6382 का गृह मंत्रालय, भारत सरकार में राज्य मंत्री श्री हरिभाई परथीभाई चौधरी द्वारा दिनांक 05 मई, 2016 को दिया गया उत्तर
4. राज्य सभा में सदस्य श्री संजय राउत के अतारांकित प्रश्न संख्या 706 का गृह मंत्रालय, भारत सरकार में राज्य मंत्री श्री हरिभाई परथीभाई चौधरी द्वारा दिनांक 02 मार्च, 2016 को दिया गया उत्तर
5. जी जानकारी : जाने न कोई कश्मीरी पंडितों का दर्द, जी न्यूज, दिनांक 19 जनवरी, 2017
6. 26 वर्षों से विस्थापित कश्मीरी पंडितों की सच्ची कहानी – मैं कश्मीरी पंडित, श्री अंकित गुप्ता, एबीपी न्यूज, दिनांक 19 जनवरी, 2016

****

खण्ड VI

मीडिया और मानव अधिकार पर केन्द्रित आलेख

मेरी नज़र में एक मेमने का जीवन किसी इंसान के जीवन जितना ही मूल्यवान है

—महात्मा गांधी

मानवाधिकार और मीडिया

डॉ. विश्वास पटेल*
डॉ. तुहिना जौहरी#

बीज शब्द : मानवाधिकार हनन, मीडिया, अंतर्संबंध, समग्रता

सारांश

वर्तमान समय में भारतीय लोकतंत्र के चतुर्थ स्तंभ के रूप में मीडिया जगत ने मानवाधिकारों के उल्लंघन को रोकने एवं उसके प्रति आम जनता में जनजागृति पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। मीडिया द्वारा मानवाधिकारों के हनन के मुद्दों पर की गई कवरेज,संपादकीय लेखों तथा महत्वपूर्ण केसों जैसे रामचंद्र शानबाग केस, जेसिका लाल केस, भोपाल गैस कांड में उसकी सराहनीय भूमिका गौरतलब है। साथ ही, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग एवं मीडिया के गहरे रिश्तों एवं आपसी समझ से वास्तविक स्थिति को सामने ला पाने की सफलता सराहनीय है। मानवाधिकारों को समग्रता से समझने और वृहत्तर समुदाय के समक्ष प्रस्तुत करने में मीडिया की भूमिका को नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता है।

मानव अधिकार, मनुष्य को प्राप्त ऐसे अधिकार हैं जिनसे मनुष्य को राष्ट्रीयता, जन्म–स्थान, लिंग, राष्ट्रीय अथवा सांस्कृतिक आविर्भाव, रंग, धर्म, भाषा या अन्य किसी कारक के आधार पर वंचित नहीं किया जा सकता है। मानवाधिकार पूरे मानव समाज की धुरी होते हैं। ये ऐसे अधिकार हैं जो जीवन के लिए और सामान्य मानव अस्तित्व के लिए है। मानव अधिकारों का विकास द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अंतरराष्ट्रीय चार्टरों और अभिसमयों से हुआ। मानव अधिकार समाज में ऐसा वातावरण उत्पन्न करते हैं जिसमें सभी व्यक्ति समानता के साथ निर्भीक रूप से मानवगरिमा के साथ जीवन व्यतीत कर पाते हैं। मानव अधिकारों से अभिप्राय, "मौलिक अधिकारों एवं स्वतंत्रता से है जिसके सभी हकदार होते हैं। अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं के उदाहरण के रूप में जिनकी गणना की जाती है, उनमें नागरिक और राजनीतिक अधिकार सम्मिलित हैं जैसे कि जीवन जीने और आजाद रहने का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और कानून के सामने समानता एवं आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के

***सहायक प्राध्यापक, संत अलॉयसियस महाविद्यालय, जबलपुर**
#सहायक प्राध्यापक, संत अलॉयसियस महाविद्यालय, जबलपुर

साथ ही साथ सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार, भोजन का अधिकार, काम करने का अधिकार और शिक्षा का अधिकार।"

लोकतांत्रिक समाज में मानवाधिकार के संरक्षण एवं संवर्द्धन के साथ ही उनका उल्लंघन हमेशा विचारणीय प्रश्न रहा है और इसके लिए नागरिक समाज में प्रयास किए जाते रहे हैं। वर्तमान समय में लोकतंत्र के चतुर्थ स्तम्भ मीडिया के प्रसार ने मानवाधिकार के उल्लंघन को रोकने एवं उनसे संबंधित विषयों पर जनजागरूकता फैलाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। आज एक नई संस्कृति विकसित हो रही है, सशक्तीकरण की संस्कृति जिसमें मीडिया की भूमिका शक्तिशाली है। मीडिया एक संवाद सेतु है, जो मानवाधिकारों के संरक्षण में एक सक्रिय भूमिका का निर्वाह करता है। मीडिया की सक्रियता के चलते समाज में व्याप्त विसंगतियों और मानवाधिकार का क्षरण भी द्रुत गति से रोका जा सकता है। भारत जैसे देश में जहां गरीबी व अज्ञानता ने समाज के एक बड़े हिस्से को अंधकार में रखा है, वहां मानवाधिकारों के बारे में जागरूकता में, उनकी रक्षा में तथा आम आदमी को सचेत करने में मीडिया महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। एक विकासशील देश में जहां मानवाधिकारों का दायरा व्यापक है, वहां मीडिया के सहयोग के बिना सामाजिक बोध जगाना लगभग असंभव है।

मानवाधिकार और मीडिया

लोकतांत्रिक समाज में स्वतंत्र मीडिया मानवाधिकार की रक्षा और संवर्द्धन का एक शक्तिशाली माध्यम है, जो मानवाधिकार के हनन और दुरूपयोग को रोकने के लिए जनता को जागरूक करता है। मीडिया एक ओर जहॉं मानवीय सरोकारों के संरक्षण का माध्यम बनता है, वहीं वह मानवाधिकारों के प्रति जनचेतना जागृत करने की ताकत भी रखता है। आज जितने भी विकासात्मक संवाद, घटनाओं की जानकारी और मानवाधिकार के हनन के मुद्दे जिस तेजी से प्रसारित हो रहे हैं क्या वे इतनी तत्परता से सभी तक पहुंच पाते? मानवाधिकारों के प्रति सतत् जागरूकता तभी तक बनी रह सकती है जब तक कि मीडिया अपनी भूमिका सार्थक ढंग से निभाता रहेगा। सन् 1978 में मेनका गांधी बनाम भारत संघ के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह कानून लागू किया कि आपात स्थिति में भी अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार को निलंबित नहीं किया जा सकता। इसी समय जम्मू कश्मीर जन सुरक्षा अधिनियम, 1978 प्रकाश में आया। इसके पांच साल बाद 1984 में ऑपरेशन ब्लू स्टार और उसके तत्काल बाद देश की तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या किए जाने से एक समुदाय विशेष विरोधी दंगे चहुं ओर भड़क उठे थे। इस समय मीडिया ने अपना संवेदनात्मक कवरेज़ किया और उस समुदाय के कई परिवारों को बचाने, उनके मानवाधिकारों

को सुरक्षित रख पाने में अपना योगदान दिया। आज पूरी दुनिया के लोगों के समक्ष मानवाधिकार एक समस्या के रूप में विद्यमान है। मनुष्य अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए दुनिया भर में प्रयत्नशील है। बात चाहे श्रीलंका में तमिलों पर हुए लिट्टे के अत्याचार या भारत में नक्सली हिंसा की बात हो। मानवाधिकारों की चीत्कार समाचार पत्रों के कॉलम से लेकर टेलीविज़न और रेडियो पर अक्सर देखी सुनी जा सकती है। मानवाधिकारों की समग्रता की पृष्ठभूमि और प्रतिष्ठा को जनव्यापी बनाने में मीडिया की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता।

आधुनिक युग में मीडिया जनमानस की वैचारिक अभिव्यक्ति के सशक्त उपकरण के रूप में उभरकर सामने आया है। राष्ट्र, समाज और जनहित के मुद्दों को मीडिया में प्रभावशाली ढंग से उठाया जाता रहा है। भारत में नारी सशक्तीकरण, बालिका शिक्षा, पर्यावरण, दहेज उन्मूलन, स्वच्छता अभियान, अपराध, भ्रष्टाचार का विरोध और अन्य मानवाधिकार से संबंधित मुद्दे मीडिया में प्रखरता से उठाए जाते रहे हैं जिससे लोकतंत्र को मजबूती मिल रही है। मीडिया ने हर व्यक्ति को अपने विचार जनमानस और शासन तक पहुंचाने का अधिकार प्रदान कर दिया है। सूचना के आदान–प्रदान, जनमत तैयार करने, जनचेतना जागृत करने, विभिन्न क्षेत्रों और संस्कृतियों के लोगों को आपस में जोड़ने, विविध मुद्दों और आंदोलनों में भागीदार बनाने की दृष्टि से मीडिया एक सशक्त उपकरण है। इसने सभी को खुलकर बोलने का और हर मुद्दे पर अपनी राय रखने का मौका दिया है। मीडिया के दबाव के कारण ही दिल्ली के निर्भया कांड, मुजफ्फरनगर में दंगे की घटना, समाजसेवी अन्नाहजारे का आंदोलन, आरूषि हत्याकांड और नीरा राडिया कांड को मुख्यधारा की मीडिया का विषय बनाया गया और इस पर व्यापक जनसमूह ने विचार विमर्श किया। 1984 में इलाहाबाद जिले में पुलिस द्वारा आदिवासियों के साथ उत्पीड़न की ख़बर को जनसत्ता ने प्रकाशित किया। जनसत्ता में छपी इस ख़बर से विधानसभा में खलबली मच गई और सभी दोषियों को सजा मिली। मीडिया आज एक मुखर आवाज़ है और सभी के मानवाधिकारों को रोकने में अपनी कारगर भूमिका अदा कर रहा है।

मानवाधिकार हनन के मुद्दे और मीडिया कवरेज

भारत में मानवाधिकार हनन संबंधी कुछ महत्वपूर्ण मामले जिन्हें मीडिया में कवरेज मिला है, ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब मीडिया ने मानव अधिकारों के न्यायशास्त्र की सीमा के भीतर रहकर संरचनात्मक परिवर्तन एवं उल्लेखनीय विकास हेतु एक एजेण्ट के रूप में कार्य किया।

◆ भोपाल गैस कांड

भारतीय इतिहास में 26 साल पहले भोपाल में सबसे बड़ी औद्योगिक त्रासदी हुई थी, जिसे दुनिया 'भोपाल गैस त्रासदी' के नाम से जानती है। 2–3 दिसम्बर, 1984 की रात में भोपाल शहर में 'यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड' नामक कंपनी के कारखाने में बेहद जहरीली मिथाइल आइसोसाइनेट गैस का रिसाव हुआ, जिससे लगभग 20,000 लोगों को अपनी जान गवांनी पड़ी। इस सूचना को अख़बारों में ख़बर की तरह भिन्न–भिन्न शीर्षकों के अंतर्गत प्रकाशित किया गया। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है–

दैनिक भास्कर –	भोपाल लाशों से पटा
नवभारत –	भोपाल में गैस से मौत का तांडव : पांच सौ मरे
स्वदेश –	भोपाल मौत की खंदक में जहरीली गैस से सैकड़ों मरे, हज़ारों पीड़ित, भारी भगदड़
नईदुनिया –	'भागो– भागो मौत आ रही है', पांच सौ से अधिक मरे, दो लाख लोग प्रभावित, चारों तरफ भगदड़
जनसत्ता –	'जहरीली गैस से 500 का दम घुटा' भोपाल में यूनियन कार्बाइड कारखाना ज्वालामुखी बना

दैनिक भास्कर ने 4 दिसम्बर 1984 को विशेष संपादकीय में लिखा – 'ऐसा नहीं है कि कारखाने को लेकर लोगों ने कभी शंकाएं जाहिर नहीं की हों। वहीं नवभारत के संपादकीय के अनुसार, 'भोपाल में आखिरकार उस जहरीले संयंत्र ने सैकड़ों लोगों की बलि ले ही ली। जिसके बारे में अनेक संगठन इस बात की चेतावनी दे चुके थे कि किसी दिन वह उनके शहर के लिए बहुत बड़ी विपदा का कारण बन सकता है।' स्वदेश समाचार पत्र में छपी रिपोर्ट शीर्षक था, 'गैस कैसे लीक हुई, यह प्रबंधक भी नहीं जानते।' नवभारत ने लिखा 'यहां रविवार की रात को हुई जहरीले गैस कांड में मरने वालों की संख्या 1000 से अधिक पहुंच गई है।' भोपाल गैस त्रासदी में हुए सामूहिक नरसंहार के आरोप में यूनियन कार्बाइड के चेयरमैन वारेन एंडरसन समेत नौ लोगों को पुलिस ने गिरफ्तार किया। लेकिन एंडरसन को 5 हजार डॉलर का जुर्माना भरने के पश्चात् जमानत पर रिहा कर दिया गया।

इतनी बड़ी संख्या में लोगों के प्रभावित होने के बावजूद तत्कालीन प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री ने मृतकों और हताहतों के लिए सिर्फ 15,000 और 5,000 रूपए हर्जाना स्वीकार करके वारेन एंडरसन को सुरक्षित उसके देश जाने दिया। मीडिया

में प्रकाशित सी.आई.ए. के जो दस्तावेज प्रकाशित हुए, उनसे यह खुलासा होता है कि तत्कालीन केन्द्र सरकार के कुछ सलाहकारों–मंत्रियों को यह आदेश दिया गया था कि यूनियन कार्बाइड जैसी बड़ी कम्पनी पर यदि कार्रवाई करेंगे तो अमेरिकी निवेश पर असर पड़ेगा जिस कारण एंडरसन को छोड़ दिया गया। भोपाल में हुई यह त्रासदी मानवाधिकार का सबसे बड़ा हनन है। मीडिया के प्रभावी कवरेज के कारण इसे संज्ञान में लेते हुए नवम्बर 1999 को यूनियन कार्बाइड और उसके पूर्व सी.ई.ओ. के खिलाफ़ अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार उल्लंघन का मामला दर्ज किया गया।

◆ निठारी कांड

दिनांक 29 दिसम्बर, 2006 को नोएडा सेक्टर 31 में स्थित एक मकान के बाहर एक नाली से आठ बच्चों के कंकाल बरामद हुए। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने मीडिया रिर्पोट के आधार पर उत्तर प्रदेश सरकार को नोटिस जारी किया। आयोग के अनुसार निठारी में पिछले 30 महीनों में 38 बच्चे लापता हुए है, और पुलिस ने सिर्फ 10 बच्चों की रिर्पाट दर्ज की।

दिनांक 10 जनवरी, 2007 को सरकार द्वारा पूरा मामले को गंभीरता से लेते हुए मामला सी.बी.आई को सौंप दिया। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा उत्तर प्रदेश सरकार से मांगी गई रिर्पोट को उत्तर प्रदेश सरकार ने 20 जनवरी, 2007 को मानवाधिकार आयोग को सौंपी। आयोग ने इस मामले की पूरी जॉच के लिए एक कमेटी का गठन किया। सी.बी.आई ने मोनिन्दर और सुरिन्दर को 14 दिन की न्यायिक हिरासत में भेज दिया। विशेष सी.बी.आई कोर्ट ने मोनिन्दर और सुरेन्दर के खिलाफ़ दुष्कृत्य व हत्या के 19 मामले दर्ज किए, जिसमें से दो मामलों में मोनिन्दर को दोषी पाया गया। अंततः दोनों आरोपियों को फॉसी की सजा दी गई। मीडिया की अहम् भूमिका के कारण ही राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने उत्तर प्रदेश सरकार को नोटिस जारी किया और रिपोर्ट प्रस्तुत करने को कहा। मीडिया की रिपोर्ट के आधार पर मानव अधिकार आयोग ने स्वीकार किया कि उत्तर प्रदेश सरकार की पुलिस व्यवस्था लचर रवैया अपनाती है और प्राथमिकी दर्ज करने में भी कतराती है।

अरूणा रामचन्द्र शानबाग केस

अरूणा शानबाग वह महिला है, जिसने लोगों की देखभाल के लिए 1966 में के.ई.एम. अस्पताल में नर्स के पेशे को चुना। उसी अस्पताल में कार्यरत एक सफाई कर्मी सोहन लाल वाल्मिकी, ने 27 नवम्बर, 1973 को अरूणा पर हमला कर उसके साथ बलात्कार की घटना को अंजाम दिया। घटना के दौरान बलात्कारी ने अरूणा के गले को कुत्ता बांधने वाली जंजीर से बांध दिया और उसे पकड़कर खींचने की वजह

से अरूणा के मस्तिष्क से ऑक्सीजन की आपूर्ति रूक गई तथा कार्टेक्स को क्षति पहुंची जिसके कारण वह कोमा में चली गई। अरूणा शानबाग 37 वर्षों से कोमा में थी जिसकी विगत वर्षों में मौत हो गई और उसका आरोपी सोहन लाल वाल्मिकी 7 साल की सजा काटने के बाद रिहा कर दिया गया।लेकिन मीडिया ने जिस प्रभावी तरीके से इस मुद्दे को उठाया उसने आम जनमानस और नीति निर्माताओं के विचार मंथन के लिये कुछ प्रश्न छोड़े हैं–

1. क्या बलात्कारी के लिए 7 साल की सज़ा काफी है? क्या उसे मृत्यु दंड दिया जाना चाहिए?

2. क्या कोमा में पड़ी अरूणा को मरने का अधिकार मिलना चाहिए?

इसी केस के बाद इच्छा मृत्यु जैसे विषय पर देश भर में गहन विचार विमर्श शुरू हो चुका है।

जेसिका लाल हत्या कांड

29 अप्रैल, 1999 को एक भीड़ भरी उच्चवर्गीय पार्टी में बार मेड का काम कर रही जेसिका की गोली मारकर हत्या कर दी गयी। दर्जनों गवाहों ने कातिल के रूप में हरियाणा के एक धनी कांग्रेसी नेता विनोद शर्मा के पुत्र सिद्धार्थ वशिष्ठ उर्फ मनु शर्मा की पहचान की। लगभग 7 साल तक चले इस मुकदमें में 21 फरवरी 2006 को मनु शर्मा और आरोपी कई लोगों को बरी कर दिया गया।

निचली अदालत द्वारा सुनाये गये फैसले पर एक जबरदस्त हंगामे के साथ सैकड़ों– हजारों लोगों ने ई–मेल और एस.एम.एस के द्वारा फैसले पर रोष व्यक्त किया। मीडिया चैनलों और समाचारपत्रों ने इस संबंध में एक ज्ञापन राष्ट्रपति को भेज दिया। 25 मार्च 2006 को दिल्ली उच्च न्यायालय ने जेसिका लाल हत्या आरोप मुक्ति के खिलाफ़ पुलिस की एक अपील स्वीकार की। 18 अप्रैल 2006 को न्यायमूर्ति मनमोहन सरीन व न्यायमूर्ति जे.एम.मलिक की डिविजनल बैंक ने मनु शर्मा को 1 लाख रूपये की जमानत पर रिहा कर दिया। इसी क्रम में समाचार पत्रिका 'तहलका' के माध्यम से सितम्बर 2006 को एक स्टिंग ऑपरेशन टीवी चैनल 'स्टार न्यूज' पर दिखाया गया, जिसमें यह बताया गया कि किस प्रकार गवाहों को रिश्वत देकर दबाव बनाकर उनकी पहली गवाही को वापस लेने के लिए मजबूर किया गया था। इस खुलासे में विनोद शर्मा का नाम सामने आया। परिणामस्वरूप विनोद शर्मा को हरियाणा मंत्रिमंडल से इस्तीफा देना पड़ा।

मनु शर्मा और उसके दोस्तों को जमानत पर बरी करने के कारण आम जनता

में रोष व मीडिया द्वारा प्रसारित ख़बरों के परिणाम स्वरूप न्यायालय में पुनः अपील दर्ज हुई। कालांतर में, मीडिया और जनता के जबरदस्त दबाव के चलते अभियोजन पक्ष ने दिल्ली उच्च न्यायालय में अपील की। अपील पर दिल्ली उच्च न्यायालय ने कार्रवाई का आयोजन फास्ट ट्रैक पर दैनिक सुनवाई के साथ 25 दिनों तक किया, और निचली अदालत के फैसले को कानूनन दोष पूर्ण मानते हुए मनु शर्मा को जेसिका लाल की हत्या करने के जुर्म में 20 दिसम्बर 2006 को आजीवन कारावास की सजा सुनाई। इसके बाद मनु शर्मा के वकील ने हाईकोर्ट के इस फैसले को चुनौती देने के लिए 19 अप्रैल 2010 को सुप्रीम कोर्ट में अपील की। सुप्रीम कोर्ट ने जेसिका लाल की हत्या के मामले में हाई कोर्ट के फैसले को सही ठहराया और आजीवन कारावास की सज़ा के लिए मंजूरी दे दी।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग और मीडिया

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के गठन के बाद आयोग और मीडिया के बीच एक गहरा रिश्ता बन गया है। आयोग ने मानव अधिकारों के संरक्षण व संवर्द्धन में मीडिया को बराबर का साझेदार माना है। आयोग मीडिया की रिपोर्ट के आधार पर ही देश के दूर–दराज़ इलाके में मानव अधिकार उल्लंघनों के बारे में स्वतः संज्ञान ले पाता है। अभी तक हजारों मामले देश में मानवाधिकार हनन के ऐसे उजागर हुए हैं जो मीडिया की सक्रियता के कारण सभी के समक्ष आ सके और जिन्हें स्वतः संज्ञान में लेकर उन पर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने अपनी ओर से कड़ी कार्रवाही की है। उदाहरणस्वरूप कुछ मामले प्रस्तुत किए जा रहे हैं–

- **दलित लड़की का कथित बलात्कार एवं कत्ल (मामला संख्या 1221/25/10/2014–डब्ल्यू सी) :**

जलपाईगुड़ी जिला, पश्चिम बंगाल में अनुसूचित जाति से संबंधित एक 15 वर्षीय लड़की का कथित तौर पर सामूहिक बलात्कार किया गया एवं कंगारू न्यायालय में उसके परिवार के प्रति की गई प्रताड़ना का विरोध करने पर उसका कत्ल कर दिया गया।उसका निर्वस्त्र शरीर धुपगुड़ी के रेलवे पटरियों के पास पाया गया। 1 सितम्बर 2014 को धुपगुड़ी में आयोजित ''सलिशी सभा'' स्वयं नियुक्त गांव न्यायालय में विद्युत् स्तम्भ के भुगतान के लिए थोड़ा समय देने के निवेदन पर गांव वालों द्वारा उन्हें पीटे जाने पर पीड़िता ने उन्हें न पीटने की गुहार लगाई थी। लड़की के पिता ने धुपगुड़ी पुलिस थाने में मृतक लड़की के बलात्कार, कत्ल एवं अपहरण के मामले में 13 लोगों के खिलाफ़ एफ.आई. आर. दर्ज करवाई। आयोग ने इस मामले में जलपाईगुड़ी जिला के जिला मजिस्ट्रेट एवं पुलिस अधिक्षक को नोटिस जारी कर उनसे रिपोर्ट मांगी।

- **अवैध न्यायिक हिरासत (मामला संख्या 6707/30/0/2014):**

केन्द्रीय दिल्ली जिले के कोतवाली पुलिस थाने द्वारा अपहरण के मामले में इरफान नामक एक युवक को गिरफ्तार किया गया। उन्हें 15 जून, 2014 को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया, लेकिन उसकी न्यायिक हिरासत को बढ़ाने की परवाह किए बिना पुलिस ने उन्हें जेल भेज दिया, जहां परवह अवैध तरीके से दो महीने तक हिरासत में रहा। आयोग ने इस मामले में पुलिस आयुक्त, दिल्ली को नोटिस जारी कर उनसे रिपोर्ट मांगी है।

- **दलितों के विरुद्ध अत्याचार (मामला संख्या 10506/7/6/2015):**

मीडिया की रिपोर्टानुसार दिनांक 23 नवम्बर 2915 को जिला हिसार, हरियाणा के मुजादपुर गांव में कुछ प्रभावशाली लोगों ने दलित के घर में जबरन घुसकर उसको एवं उसकी बेटी को गाय का गोबर खाने के लिए विवश कर दिया व शारीरिक हमला कर उन्हें घायल कर दिया। जब वह अस्पताल में इलाज करवाने गए, तब उनपर दोबारा हमला कर बुरी तरह पीटा गया। रिपोर्टानुसार, कुछ गांव वालों द्वारा विरोध करने के बावजूद गांव में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर की मूर्ति स्थापित करने के बाद पीड़ित एवं उनकी बेटी पर हमला किया गया। आयोग ने इस संबंध में, मुख्य सचिव, हरियाण ा सरकार को नोटिस जारी कर उनसे रिपोर्ट मांगी।

- **एक मुठभेड़ में 8 विचाराधीन कैदियों की हत्या (मामला संख्या 2284/12/8/8/2016–ए.एफ.ई.):**

मीडिया ने रिपोर्ट की कि दिनांक 21 अक्टूबर, 2016 को भोपाल, मध्य प्रदेश में भोपाल केन्द्रीय कारागार से फरार हुए 8 विचाराधीन कैदियों की पुलिस द्वारा एक मुठभेड़ में हत्या कर दी गई। आयोग ने इस संबंध में मुख्य सचिव, पुलिस महानिदेशक एवं डी.जी. एवं आई.जी., कारागार, मध्यप्रदेश शासन को नोटिस जारी कर उनसे रिपोर्ट तलब की है।

- **देश में क्रेचेज/शिशु केन्द्रों की दशाएं (मामला संख्या 2365/13/20/2016)**

मीडिया ने नवी मुम्बई, महाराष्ट्र के खारगर क्षेत्र में 10 महीने के बच्चे पर उस क्रेश के संरक्षक द्वारा अमानवीय एवं बर्बर व्यवहार के विषय में रिपोर्ट किया था, जहां उसके अभिभावक उसे छोड़ते थे। इस संदर्भ में आयोग ने एक समाचार पत्र में संपादकीय टिप्पणी पर भी ध्यान दिया, जहां विशेषज्ञों ने लिखा था, कि शिशु सदनों में छोड़े जाने वाले बच्चों को खतरा है क्योंकि सरकार के पास इस क्षेत्र के लिए कोई

विनियमन नहीं है। आयोग का मानना है कि हालांकि महाराष्ट्र सरकार ने तत्परता से कार्रवाई की तथा क्रेश/शिशु सदनों एवं प्ले स्कूलों में सी.सी.टी.वी. कैमरे लगवाने का आदेश दिया, फिर भी कार्यरत् अभिभावकों, चाहे वे निजी क्षेत्र में कार्यरत् हों अथवा सरकारी क्षेत्र में, के बच्चों की सुरक्षा एवं सुरक्षित देखभाल के लिए इनकी मॉनिटरिंग एवं विनियमन हेतु व्यापक राष्ट्रव्यापी दिशा–निर्देश आवश्यक हैं। यदि प्राधिकारियों के ध्यान में कोई दुर्भाग्यपूर्ण घटना आती है तो पीड़ित बच्चे को तत्काल उचित परामर्श दिया जाना चाहिए तथा यदि आवश्यक हो, सदन के दोषी स्टाफ/मालिक के विरूद्ध कानूनी कार्रवाई करने के अलावा बच्चे को मनोवैज्ञानिक परामर्श भी दिया जाना चाहिए।

- **पुलिस द्वारा उत्पीड़न (मामला संख्या 111/18/1/2014)**

4 जुलाई, 2017 को मीडिया ने राजस्थान के झालावाड़ जिले में कुछ पुलिस कर्मिकों द्वारा एक किसान की शारीरिक उत्पीड़न के संबंध में रिपोर्ट की। रिपोर्ट के अनुसार, देवडूंगरी जिले में दो पड़ोसियों के बीच कहा सुनी हुई। एक पक्ष द्वारा पुलिस में इस मामले की रिपोर्ट की गई।

फिर भी, पुलिस ने दोनों पक्षों को थाने में समझौता के दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने के लिए बुलाया। रिपोर्टानुसार, पीड़ित, घनश्याम लोढ़ा को थाने में आने में देर हो गई। पुलिसवालों ने घनश्याम को रास्ते में पकड़ लिया एवं अपनी गाड़ी में बिठाने से पहले बुरी तरह पीटा। इसके पश्चात्, उसे पेड़ से बांधकर दोबारा बुरी तरह पीटा गया। जब उसकी हालत नाजुक होने लगी, तब उसे प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र ले जाया गया जहां से उसे जवाहर जिला अस्पताल स्थानान्तरित कर दिया गया।

आयोग ने यह महसूस किया कि समाचार रिपोर्ट की विषय वस्तु गरीब किसान के मानव अधिकार उल्लंघन का एक गंभीर मुद्दा उजागर करता है तथा आयोग ने प्रेस कतरनों को मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार राजस्थान राज्य मानव अधिकार आयोग के पास इस मामले पर उपयुक्त कार्रवाई हेतु स्थानान्तरित कर दिया गया।

- **सिर पर मैला ढोने वालों की दुर्दशा (मामला संख्या 17237/24/54/2017):**

जून 15, 2017 को मीडिया ने उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले में मवाना के रधाना इनायतपुर गांव में सिर पर मैला ढोने वाली 30 महिलाओं की दुदर्शा के बारे में रिपोर्ट की। सूखे शौचालयों को साफ करने के लिए, उन्हें मात्र दस से पचास रूपये प्रति महिने ही दिए जाते हैं। कभी–कभी बोनस के रूप में उन्हें बासी भोजन तथा पुराने कपड़े दिए जाते हैं। गंदगी के संपर्क में रहने की वजह से, उन्हें कई स्वास्थ्य संबंधी परेशानियां रहती हैं। इस वर्ष जनवरी में सरकार द्वारा संसद में यह खुलासा किया गया कि 13

राज्य एवं केन्द्रशासित प्रदेशों में 12,737 ऐसे लोगों की पहचान की गई है।

सिर पर मैला ढोने को जीवन, गरिमा, समानता एवं स्वास्थ्य देख–रेख के उल्लंघन का निकृष्टतम उदाहरण मानते हुए, आयोग ने सचिव, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय तथा मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश को नोटिस जारी की है। उन्हें इस तरह की स्थिति से निपटने हेतु की गई कार्रवाई के साथ–साथ पीड़ितों की राहत तथा पुनर्वास हेतु किए गए उपायों के बारे में विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत करने को कहा गया है।

मीडिया लोकतंत्र और मानव अधिकारों का सशक्त प्रहरी है, एक सशक्त रक्षक है जो देश में कानूनी व्यवस्था को बनाये रखने तथा राष्ट्रीय एकता व अखण्डता को बनाये रखने में अपनी प्रमुख भूमिका निभाता है।मीडिया का प्रमुख कार्य है आम जनता तक सही सूचनाएं सही समय तक पहुंचाना ताकि वे अपना निर्णय स्वयं कर सकें। मीडिया से निर्भीकता और सत्यनिष्ठा की जो उम्मीदें की जाती हैं, वे इस कारण कि वह जनसामान्य के प्रति अपनी प्रतिबद्धता से विचलित न हो। मीडिया लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ के रूप में समाज को मजबूत दशा और दिशा प्रदान कर रही है। मानवाधिकारों की समग्रता की पृष्ठभूमि और प्रतिष्ठा को जनव्यापी बनाने में मीडिया की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता।

संदर्भ

- दैनिक भास्कर, 2009
- द पत्रिका 2013
- डॉ. सुनील एक्का, 'लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका' इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस एजुकेशन एंड रिसर्च 2016 खंड 1 अंक 7 पृ.सं. 97–98.
- एक मॉडल की हत्या, इंडिया टुडे, 17 मई, 1999.
- दैनिक ट्रिब्यून, मार्च 2011.
- मानव अधिकार समाचार पत्र, अक्टूबर 2014
- मानव अधिकार समाचार पत्र, दिसम्बर 2015
- मानव अधिकार समाचार पत्र, नवम्बर 2016
- मानव अधिकार समाचार पत्र, दिसम्बर 2016
- मानव अधिकार समाचार पत्र, जुलाई 2017
- मानव अधिकार समाचार पत्र, अगस्त 2017

****

वैश्विक परिवेश, मीडिया एवं मानव अधिकार

डॉ. अर्चना मिश्रा*

बीज शब्द : भूमंडलीकरण, मानवाधिकार, असहिष्णुता, मीडिया, स्वायत्तता

सारांश

भूमण्डलीकृत वैश्विक दौर में मानवाधिकारों के हनन की प्रक्रिया सतत जारी है। स्पष्ट रूप से दो भिन्न वर्गों में बंटा समाज आमजन के प्रति दिन–प्रति–दिन हिंसक एवं असहिष्णु होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में मीडिया की सकारात्मक भूमिका के महत्वपूर्ण पक्षों पर चर्चा अत्यंत प्रासंगिक है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक अवधारणा को मीडिया के माध्यम से पूर्णता प्राप्त होती है। भारतीय संविधान में वर्णित अनुच्छेद 21 समाज में प्रत्येक मनुष्य को गरिमामय जीवन जीने के अधिकार की ही पैरवी नहीं करता है, बल्कि कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के दायित्वों को भी निर्धारित करता है। मीडिया की स्वायत्तता राज्य सरकारों द्वारा लगातार उनपर नियंत्रण किए जाने के कारण प्रभावित होती है एवं मीडिया कर्मी स्वयं कई प्रकार की हिंसा का शिकार होते हैं। बावजूद इसके, सोशल मीडिया ने हाल के दिनों में सामान्य जन के मानवाधिकारों के हनन की भयावह स्थितियों को अत्यंत गंभीरता तथा पारदर्शिता के साथ प्रस्तुत किया है।

वैश्वीकरण के इस दौर में विकास की आड़ में मानवाधिकार को दबाने तथा कुचलने के हर संभव षडयंत्र रचे जा रहे हैं। तात्कालिक परिस्थितियों में मीडिया ही एक मात्र ऐसा माध्यम नजर आता है जो मानवाधिकार के विरूद्ध किए जा रहे ऐसे अर्थहीन षडयंत्रों को बखूबी उजागर कर सकता है तथा सम्पूर्ण मानव जाति के मानवाधिकार के रक्षार्थ लड़ाई लड़ सकता है। मानव जाति को जन्म के साथ ही जो अधिकार मिलते हैं, उनकी रक्षा हर हाल में की जानी चाहिए। मानवाधिकार की सार्वभौमिक अवधारणा को मीडिया के माध्यम से पूर्णता प्रदान की जा सकती है। आज सम्पूर्ण विश्व मीडिया के ही इर्द–गिर्द दिखाई देता है। इसका कारण मीडिया द्वारा परोसी जा रही यथार्थ सच्चाई एवं पारदर्शिता है। हालांकि यह सच है कि समय के साथ मीडिया में भी कई बुराइयां प्रवेश कर गई हैं। मीडिया ने आतंकवाद, युद्ध, व्यापार, भूमण्डलीकरण,

*प्राचार्य, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सैक्टर–1, पंचकूला

वैश्विक राजनीति जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर ही अपना तथा लोगों का ध्यान केन्द्रित किया है। बावजूद इसके मीडिया ही वह माध्यम है जिसके बदौलत जन सामान्य के अधिकारों को सुनिश्चित किया जा सकता है। मीडिया उस प्रकाश पुंज की तरह है, जिसके प्रकाश में हर व्यक्ति मनुष्य बनने तथा मनुष्य होने के लिए अपने अधिकारों के लिए सजग दिखाई देने लगा है।

मीडिया सामाजिक नियंत्रण का सबसे बड़ा हथियार है जिसके माध्यम से मानवाधिकार की स्थापना सुनिश्चित की जा सकती है। समय के साथ मानवाधिकार के प्रति जागरूकता बढ़ी है। मीडिया, मनुष्यों को उसके अधिकारों के प्रति सजग करने में सफल हुआ है। मीडिया के अभूतपूर्व विस्तार और इसके निरन्तर बढ़ते प्रभाव और पहुँच ने मानवाधिकारों के प्रति जन चेतना पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। विश्व के विभिन्न देशों के मध्य मैत्री सम्बन्धों की स्थापना में मीडिया का सराहनीय योगदान रहा है। आज किसी भी देश का नागरिक न केवल अपने ही देश से सरोकार रखता है बल्कि अन्य देशों में हो रही विभिन्न गतिविधियों पर भी अपने विचार रखता है। मनुष्य की यह वैश्विक छवि मीडिया जैसे सफल और सुगम मंच के जरिये ही संभव हो पायी है। जरूरी नहीं कि विश्व को बचाने की मुहिम में हर मानव संलग्न हो, जैसा कि ईराक के प्रकरण में सिर्फ अमेरिका के कहने भर से यह नही मान लिया गया कि ईराक के पास जैविक हथियार थे और वह विश्व के लिए खतरा है। वैश्विक स्तर पर मीडिया की कोशिशों की वजह से ही 'वाशिंगटन पोस्ट' एवं 'न्यूयार्क टाइम्स' के माध्यम से ही पूरा विश्व यह जान पाया कि अमेरिका का ईराक पर हमला एक कृत्रिम प्रयास था। जिसमें मानवाधिकारों की अनदेखी हर स्तर पर कर दी गई और लाखों की संख्या में जीवित मनुष्यों से उनके 'जीवन के अधिकार' को ही छीन लिया गया।

भारतीय संविधान का 'अनुच्छेद 21' हर भारतीय को जीवन का अधिकार, गरिमापूर्ण जीवन जीने का मूल अधिकार देता है। चाहे नैना साहनी हत्याकांड हो या जेसिका लाल हत्याकांड, नीतीश कटारा हत्याकांड हो या आरूषि हत्याकांड इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि मीडिया ने मानव जीवन को संरक्षण प्रदान करने के लिए तथा प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के मूलभूत अधिकार के लिए जन समूह को संगठित एवं जागरूक कर चैतन्य का संचार किया है। मीडिया की कार्यप्रणाली हमेशा से ही विवाद और संवाद के बीच संपन्न होती आयी है। किसी भी प्रजातांत्रिक देश में मीडिया के होते हुए, पद और सत्ता के आधार पर इंसानों में भेद करना लगभग नामुमकिन है। हर मनुष्य को समान रूप से जीवन जीने का अधिकार है। महाराष्ट्र में सरकार और सेना के लोगों के कारनामों को उजागर कर मीडिया ने वहां के लोगों के मानवाधिकार को स्थापित करवाने में खुद को मील का पत्थर साबित किया है। इतना सब होने के

बावजूद भी समस्या सुरसा के मुंह की भांति बढ़ती ही जा रही है। इस बात में कोई गुरेज नहीं कि मीडिया ने ज्यादातर सिर्फ बड़े प्रकरणों को ही तवज्जो दी है। गांवों, मोहल्लों की बुनियादी समस्याओं, जातिगत वैमनस्य, बिखरता सामाजिक ताना–बाना, क्षेत्रवाद, सांप्रदायिकता और विचारधारा का मनुष्यता से भी बड़ा हो जाना जैसे विषयों को मीडिया पूरी निष्ठा से सामने नहीं ला पा रहा है। ग्रामीण जीवन को जहां आर्थिक स्वावलम्बन की ओर अग्रसर करने की बात की जा रही है, वहीं देश के कई प्रान्त आज भी पिछड़े हुए हैं, वजह जो भी रही हो, भारतीय मीडिया भारत के इस हिस्से को रोशनी में लाने से कहीं न कहीं चूक रही है।

मीडिया ने समाज को वह तोहफ़ा दिया है जिससे हर व्यक्ति कमरे में बैठकर किसी भी अन्य व्यक्ति, समूह, संस्था, समाज या देश के बारे में समाचार पत्र, टीवी, इंटरनेट आदि के माध्यम से आसानी से सूचनाएं पा सकता है। मीडिया ही वह उपक्रम है जो विभिन्न राष्ट्रीय तथा अतरराष्ट्रीय मुद्दों से हम सभी को रूबरू कराता है। हालांकि मीडिया भी व्यक्तियों से चलने वाला एक उपक्रम है जिस पर यह आरोप भी लगते रहे हैं कि मीडिया ने एक ओर जहाँ जनाधिकार को बचाने तथा लोगों की आवाज़ को मातहतों तक पहुंचाने का काम किया है वहीं लाभ के लिए कई कृत्रिम स्थितियां भी उत्पन्न करने की भी कोशिश की है जो मानवाधिकारों के उद्देश्यों के विपरीत है। इस तरह कई बार मीडिया निष्पक्षता न बरतने की वजह से मानवाधिकार से बहुत ही विमुख दिखता है। आज जरूरत है समाज के लोगों की समस्याएं तथा उनसे जुड़े हुए विभिन्न पहलुओं को उजागर करने की। हालांकि मीडिया ने जन अधिकारों एवं कानून के लिए एक लम्बी बहस आरम्भ की है, जिस पर विमर्श की जरूरत है। सामान्य तौर पर जनता में यह डर रहता है कि अगर पुलिस चाह ले तो किसी को भी अपना शिकार बना सकती है। इस नज़रिये से स्पष्ट है कि पुलिस का समाज से कोई सकारात्मक संबंध नही है। 'बाटला हाउस मुठभेड़' जैसी घटनाओं ने इस संशय को और भी बढ़ा दिया था। मीडिया मानवाधिकार के संरक्षण के निहितार्थ इस तरह के फर्जी मामलों को समय– समय उजागर करती रहती है ताकि लोगों में यह विश्वास बना रहे कि प्रशासन द्वारा गलत कार्य–व्यवहार करने पर उनके विरुद्ध भी कठोर कार्रवाई हो सकती है।

भारत में मानवाधिकार कानून के कार्यान्वयन की जिम्मेदारी कार्यपालिका एवं न्यायपालिका पर है। वस्तुतः सारे मानवाधिकार कानूनों के अनुपालन का दायित्व व्यक्ति सहित सरकारी एजेंसियों का होता है। उल्लेखनीय है कि देश के विभिन्न राज्यों में पुलिस द्वारा भी लोगों के मानवाधिकारों का हनन होता है। यही कारण है कि देश में स्थापित राजनीतिक–प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत न्यायपालिका को मानवाधिकार के हनन से संबंधित मामलों को देखने – सुनने का अधिकार दिया गया है जो अपने निष्पक्ष

न्यायिक निर्णयों द्वारा लोगों के मूल अधिकारों को संरक्षण प्रदान करती है। वर्ष 1993 में देश में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया जो मानवाधिकार विषयक समस्त नीतियों एवं कार्यक्रमों का संचालन करती है। इसके अलावा व्यक्तिगत या राज्य एजेंसियों द्वारा लोगों के मानवाधिकार के हनन को रोकने के लिए देश में उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय न्यायिक व्यवस्था के सर्वोच्च शिखर पर स्थापित हैं।

देश में स्थापित राजनैतिक–प्रशासनिक व्यवस्था ने मानवाधिकार के हनन की स्थिति में मानवाधिकारों के संरक्षण तथा प्रोत्साहन हेतु संयुक्त राष्ट्र द्वारा पारित प्रस्ताव को समुचित रूप से लागू करने में असफल होने के कारण सरकार ने देश में मानवाधिकारों के मामलों से संबंधित एक मुख्य एजेंसी के रूप में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना का निर्णय लिया। यह आयोग लोगों के मानवाधिकार के हनन संबंधी मामले की जांच करता है। वर्ष 1993 में देश में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना के बाद मानवाधिकार प्रशासन के क्षेत्र में एक नए युग का सूत्रपात हुआ, जिसने देश के लोगों के मानवाधिकार के संरक्षण तथा प्रोत्साहन के क्षेत्र में कार्य करना शुरू किया। देश में मानवाधिकार के संरक्षण तथा प्रोत्साहन की दिशा में संस्थागत व्यवस्था के अंतर्गत एक वैधानिक इकाइ के रूप में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना ने देश में एक नई प्रक्रिया को बढ़ावा दिया है। यह सच है कि पिछले कुछ वर्षों से आयोग ने कइ सरकारी एजेंसियों की कमजोरियों को उजागर किया है किंतु देश में मानवाधिकार हनन के सभी मामलों पर कार्रवाई करने में यह सक्षम नहीं है। आयोग केवल उन्हीं मानवाधिकारों के हनन संबंधी मामले को उठा सकता है जो सामाजिक ताकतों या व्यक्तियों द्वारा गलत तरीके से किया जाता है। किंतु सरकारी तंत्र और सुरक्षा एजेंसियों द्वारा पीड़ितों के मानवाधिकार हनन का उपयुक्त एवं समुचित समाधान निकालने में यह संस्था बहुत कारगर नहीं हो पाती है।

राज्यों के स्तर पर स्थिति तब और भयावह हो जाती है जब राज्यों में मानवाधिकार आयोग की स्थापना ही न हुइ हो। जिन राज्यों में इनकी स्थापना हुइ है वहां भी आयोग मानवाधिकार के संरक्षण तथा प्रोत्साहन के लिए समुचित बल और प्रशासनिक व्यवस्था के अभाव में प्रभावी रूप में कार्य नहीं कर पा रहा है। यह आवश्यक है कि केंद्र सहित सभी राज्यों में मानव अधिकार आयोग की स्थापना हो। तभी आयोग की स्थापना के लिए निर्धारित मौलिक उद्देश्यों के सफल परिणाम सामने आ सकते हैं। इसके साथ ही आयोग के पास मानवाधिकार के उल्लंघन के मामले में प्रभावी और उपयुक्त कदम उठाने की पर्याप्त आज़ादी के साथ ही ऐसे निकायों में उत्तरदायित्व की भावना हो जिससे ऐसा न लगे कि वह सिर्फ सरकारी एजेंसी की तरह काम कर रहे हैं। बल्कि अधिकार को पाने, देने और दिलाने के प्रति लगन हो, जज्बा हो। वहीं इन आयोगों को ऐसे वैधानिक निकाय के रूप में हम सबके सामने आना होगा, जो देश के

उन असहाय नागरिकों जिनके मानवाधिकार हनन किया गया हो, का समुचित समाधान ढूँढ़ उनके मानवाधिकरों की रक्षा कर सके।

मीडिया का मानवाधिकार

अमेरिकी विदेश मंत्रालय ने 2017 की अपनी वार्षिक मानवाधिकार रिपोर्ट में भारत के संबंध में यह जिक्र किया है कि भारतीय संविधान ने जहां अपने नागरिकों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी है वहीं प्रेस की आजादी का स्पष्ट रूप से कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है। भारत सरकार एक ओर जहाँ ऐसे मानवाधिकारों का सम्मान करती है वहीं कई ऐसे मामले भी देखने को मिले हैं, जिनमें सरकार ने अपने आलोचक मीडिया संस्थानों को कथित रूप से परेशान किया तथा उन पर कई तरीके से दबाव बनाया। विदेश मंत्रालय की इस सालाना रिपोर्ट में दुनिया के लगभग सभी देशों में मानवाधिकार की स्थिति बताई जाती है। रिपोर्ट में यह भी बताया गया कि दूसरे देशों के मुकाबले भारत में मानवाधिकार की स्थिति कहीं बेहतर है लेकिन इसमें उन प्रमुख घटनाओं को भी शामिल किया गया, जिन्हें भारत में प्रेस की आजादी पर हमले के रूप में देखा गया। मजेदार बात यह है कि यह रिपोर्ट ऐसे वक्त आई है जब खुद ट्रंप प्रशासन पर प्रेस की आजादी पर हमले के आरोप लग रहे हैं।

अमेरिकी प्रशासन की इस रिपोर्ट में 'एनडीटीवी' पर सीबीआई के छापे, अंग्रेजी अखबार 'हिंदुस्तान टाइम्स' के संपादक पद से बॉबी घोष की विदाई, कार्टूनिस्ट जी. बाला की गिरफ्तारी का जिक्र है। रिपोर्ट में उल्लेख है कि 2017 में कुछ पत्रकारों और मीडियाकर्मियों को न्यूज कवरेज के वक्त कथित रूप से न केवल हिंसा का सामना करना पड़ा है बल्कि उन्हें परेशान भी किया गया। रिपोर्ट में पत्रकार गौरी लंकेश व शांतनु भौमिक की हत्या का भी जिक्र किया गया है। वर्ष 1992 से लेकर अब तक बड़ी संख्या में भारतीय पत्रकारों की हत्या हो चुकी है और बीते 10 सालों में ऐसा केवल एक मामला ही सामने आया है जिसमें दोषी को सज़ा मिली। ऐसी घटनाओं के शिकार अधिकतर पत्रकार छोटे शहरों–कस्बों से आते हैं जो अकसर खबर के हिसाब से अनुबंध पर काम करते हैं। मुख्यधारा का मीडिया बिना किसी औपचारिक कानूनी अनुबंध के ऐसी खबरों को करने की उन्हें मंजूरी देता है जहां पारिश्रमिक से लेकर हादसे में मुआवजे या जीवन बीमा आदि का कोई प्रावधान नहीं होता है। यहां तक कि बुनियादी कानूनी मदद तक तो दूर मीडिया केंद्रित संगठनों, यूनियनों और संस्थागत सहयोग के अभाव में सर्वाधिक अनुकूल हालात के रहते हुए भी अभिव्यतक्ति की आज़ादी जैसे अधिकारों की पुष्टि करने के लिए पर्याप्त संस्थागत समर्थन नहीं मिल पाता है। ऐसी स्थिति तब और चिंताजनक हो जाती है जब खबरों के मुद्दे नेता और कॉरपोरेट की मिली भगत से तय हो रहे हों। अकसर होता यही है कि या तो सच्ची खबर की हत्या

कर दी जाती है या उस कलमकार की और कई बार तो दोनों को ही रास्ते से हटा दिया जाता है। कानों–कान किसी को खबर तक भी नहीं हो पाती है। असंवैधानिक तौर पर पत्रकारों को धमकाया जाना और उनके ऊपर जानलेवा हमले करना अथवा करवाया जाना अब सामान्य हो चुका है।

ऐसे कई मामलें हैं जो इस बात को प्रमाणित करते हैं कि मीडियाकर्मियों का जीवन खतरों से भरा है। ऐसे में अगर मीडिया अपनी जान पर खेल कर अगर जन मानवाधिकार की बात खुले मंच पर निर्भीकता से कहने की हिम्मत रखता है तो उसके अधिकारों और सम्मान की रक्षा करना भी आवश्यक है। ऐसे कई उदहारण है जहाँ अधिकारों के हित में उठते स्वर को या तो दबा दिया गया या हमेशा के लिए बंद कर दिया गया। बतौर उदाहरण स्वतंत्र पत्रकार नेहा दीक्षित आउटलुक पत्रिका में 'ऑपरेशन बेबी लिफ्ट' के नाम से एक स्टोरी लिखती हैं जो कि आदिवासी लड़कियों की तस्करी के बारे में थी। जिसमें कई नेताओं की भी भूमिका थी। सच लिखने के बदले में नेहा दीक्षित को न केवल मानसिक रूप से प्रताड़ित किया गया, बल्कि एक आधिकारिक बयान में तो उसके 'विकृत दिमाग' का हवाला देते हुए उसकी खबर पर ही सवाल उठाये गए। आउटलुक पत्रिका के संपादक के खिलाफ शिकायत दर्ज हुई, लिहाजा संपादक ने उस खबर को पत्रिका में जगह ही नहीं दी। दूसरी ओर नेहा दीक्षित की निजी तस्वीरों को सोशल मीडिया पर अभद्रता के साथ उछाला गया। ऐसे में कोई पत्रकार मानवाधिकार के लिए कैसे लड़ेगा? जब उनके खुद के अधिकार ही रसूखदारों द्वारा ही कुचल दिए जा रहे हो । वर्ष 1992 से लेकर अब तक कुल 72 से ज्यादा पत्रकारों की हत्या हो चुकी है। महज एक साल (2015–2016) के आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि 182 बार पत्रकारों पर हमले हुए हैं। ऐसे में बड़ा प्रश्न उठता है कि कोई कैसे मानवाधिकार का रक्षक बने जब उनकी खुद की जिन्दगी ही दाव पर लगी हो।

सोशल मीडिया से मानवाधिकार को मिलते नए पंख

वर्तमान में इंटरनेट मानवीय अभिव्यक्ति का सबसे स्वतंत्र एवं आसान माध्यम है। संचार के नजरिये से देखा जाए तो इंटरनेट आज के समय की एक बड़ी आवश्यकता के रूप में उभर रहा है। फिर चाहे वह भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठाने के लिए हो या कार्यपालिका में पारदर्शिता लाने की बात हो या फिर सामाजिक क्रांति का मसला हो, समय–समय पर इंटरनेट ने अपना अहम् भूमिका अदा करके यह साबित कर दिया है कि अब 'सूचना समाज' की संकल्पना इंटरनेट के बिना संभव ही नहीं है। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट के मुताबिक इंटरनेट सेवा से लोगों को वंचित करना और ऑनलाइन सूचनाओं के मुक्त प्रसार में बाधा पहुँचाना भी मानवाधिकारों के उल्लघंन की श्रेणी में माना जाएगा। संयुक्त राष्ट्र के विशेष प्रतिनिधि फ्रैंक लारू ने ये रिपोर्ट विचारों

और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के प्रसार और संरक्षण के तहत तैयार की है। रिपोर्ट के मुताबिक इंटरनेट का उपयोग कर पाने को भी मानवाधिकारों में सम्मिलित किया जाना चाहिए। विश्व के कई देश ऐसे हैं जहां आज इंटरनेट के स्वतंत्र उपयोग पर प्रतिबंध लगाए जाते हैं। यह निश्चित तौर पर मानवाधिकार के हनन की श्रेणी में आना चाहिए। इसके साथ ही इस बात का खास ख्याल रखना होगा कि इंटरनेट उपयोग करने के इस अधिकार का दुरुपयोग न हो। इंटरनेट का उपयोग व्यक्ति की स्वतंत्रता और निजता को भंग करने के लिए भी खूब हो रहा है। यह निश्चित ही खेद जनक है, क्योंकि व्यक्ति की निजता भी एक महत्वपूर्ण मानवाधिकार है। उम्मीद है कि इंटरनेट आने वाले समय में संविधान सम्मत तथा मानवीय अधिकारों का प्रतिनिधि बन करके उभरेगा। फिनलैंड विश्व के सभी देशों के लिए एक नजीर है जिसने इंटरनेट को अपने नागरिकों के मूलभूत कानूनी अधिकार में स्थान दिया है। वर्ष 1980 में यूनेस्को ने तीसरी दुनिया के देशों के संचार तंत्र और सूचना साम्राज्यवाद को समझने के लिए शीन मैकब्राइड की अध्यक्षता में एक आयोग गठन किया गया, जिसने अपनी रिपोर्ट में पाया कि तत्कालीन सूचना व्यवस्था विकसित और धनी देशोन्मुख है। धनी देशों का सूचना तंत्र पर वर्चस्व है, जिसका वे अपने हितों के लिए इस्तेमाल करते हैं। परिणामतः इस असंतुलन को दूर करने के लिए आयोग ने एक 'नई विश्व सूचना व्यवस्था' की सिफारिश की। इस रिपोर्ट को आए हुए दशकों बीत चुके हैं लेकिन सूचना के स्वतंत्र तथा निष्पक्ष प्रभाव की जमीनी हकीकत चिंताजनक बनी हुई है।

भारत में कंप्यूटर तथा इंटरनेट को बेशक झिझक के साथ स्वीकार किया गया हो लेकिन आज इंटरनेट ने जिस तरह से देश और दुनिया को बदल दिया है अब इसके बगैर जीवन की कल्पना करना असंभव सा जान पड़ता है। एक दौर था जब इंसान की मूलभूत आवश्यकताओं में रोटी, कपड़ा और मकान जैसी आवश्यकताएं शुमार थी लेकिन अब इसमें इंटरनेट को भी मूलभूत आवश्यकताओं के रूप में जगह मिलने लगी है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस ओर एक प्रगतिशील कदम उठाकर इस धारणा को पुष्ट किया है कि मानवाधिकार एक गतिशील अवधारणा है। जैसे जैसे दुनिया बदलेगी मानवाधिकारों का दायरा भी बढ़ेगा पर इसमें इंटरनेट का शामिल होना इंटरनेट की व्यापकता और इसकी शक्ति को दर्शाता है। जापान में आयी सुनामी के समय लोगों तक मदद पहुँचाना या मिस्र (इजिप्ट) में हुए सत्ता परिवर्तन में इंटरनेट ने अपनी व्यापकता को सिद्ध तो किया है साथ ही एक जनमाध्यम के रूप में अपनी पहचान को स्थापित किया है। इंटरनेट, रेडियो, अखबार और टेलीविजन की तरह एकतरफा नहीं बल्कि यह बहुआयामी माध्यम है। इस माध्यम में विचारों का प्रवाह रोकना या उन्हें प्रभावित करना उतना आसान नहीं होता जितना पहले संभव था। आज स्वतंत्र विचारों का संप्रेषण इसके द्वारा अधिक सरलता से होता है। 'सिटीजन जर्नलिस्ट' की अवधारणा को पुष्ट करने

में इंटरनेट का सबसे बड़ा योगदान है। अब कोई भी व्यक्ति बिना किसी रोक–टोक के बड़ी आसानी से न केवल अपनी अभिव्यक्ति दुनिया के साथ साझा कर सकता है बल्कि अपने मानवाधिकारों के रक्षार्थ हर संभव मदद की गुहार लगा सकता है।

विकासशील देशों में इंटरनेट ने अपने पैर बहुत तेजी से पसारे हैं हालांकि उसकी गति विकसित देशों के मुकाबले अभी भी कम है। आईटीयू के आंकड़ों के अनुसार जब विकसित देशों में हर तीसरा व्यक्ति इंटरनेट से जुड़ा है वहीं विकासशील देशों में पांच में से चार व्यक्ति अब भी इंटरनेट से दूर हैं। भारत जैसे देश में रोटी, कपड़ा और मकान जैसी जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं में अब इंटरनेट सेवा को सम्मलित करना सरकार की प्राथमिकता रहेगी और जैसे–जैसे सरकारें जनता को बेहतर जीवन उपलब्ध कराती जाएंगी इंटरनेट का विस्तार अपने आप होता जाएगा। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि इससे देश–दुनिया की तस्वीर बदल जायेगी, जिसकी शुरुआत हो चुकी है।

****

खण्ड VII

मानव अधिकार कुछ अन्य संदर्भों में

गांधी जी का ताबीज़

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ:

जो सबसे गरीब और कमज़ोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे, उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे, वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानी क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा, जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

—मोहनदास करमचंद गांधी

बहुसंस्कृतिवाद और मानवाधिकार : एक अवलोकन

आलोक चान्टिया*

बीज शब्द : बहुसंस्कृतिवाद, विविधता, सुरक्षा, समावेशी

सारांश

भारत जैसे देश में सांस्कृतिक, भाषाई, धार्मिक विविधताएं इसकी विशिष्ट पहचान रही हैं। कुल 4635 समुदायों वाला यह देश छठी ईसा पूर्व से ही उपनिषदों के माध्यम से वसुधैव कुटुम्बकम का संदेश पूरे विश्व को देता रहा है। एक सिद्धांत के रूप में बहुसंस्कृतिवाद 1970 के आस–पास की परिघटना है जब ऑस्ट्रेलिया के मूल निवासियों ने अपने साथ–साथ दूसरी संस्कृतियों से भी समन्वय स्थापित करने की आवश्यकता महसूस की। मानवाधिकारों को वैश्विक परिप्रेक्ष्य में रेखांकित करने की आवश्यकता है। मानव समुदाय के सार्वभौमिक अधिकारों के घोषणापत्र के अनुसरण में नागरिकों की संवैधानिक, भाषाई, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विविधता की सुरक्षा जैसे महत्वपूर्ण पहलूओं पर भी सजग नागरिक के रूप में विचार करने की आवश्यकता है एवं बहुलतावादी संस्कृति को समावेशी मानवाधिकार के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

प्रस्तावना

'बहुसंस्कृतिवाद' से तात्पर्य एक ऐसे समाज से है, जहाँ बहुत से सांस्कृतिक समूह स्वयं की विशेषताओं को बरकरार रखते हुए एक साथ निवास करते हैं। ऐसे समाज को 'विविधता में एकता' (Unity in Diversity) वाला समाज माना जाता है। भारतीय समाज को बहुसंस्कृतिवाद का उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है, क्योंकि भारत में यह प्रवृत्ति प्राचीनकाल से मौजूद रही है।

1960 के दशक में पहली बार न्यूयार्क में इसकी उत्पत्ति को संदर्भित किया जा सकता है। जिसके बाद 70 के दशक में आस्ट्रेलिया में बहुलतावाद का स्पष्ट प्रभाव दिखाई दिया और 1980 के दशक में यह पूरे पश्चिमी यूरोप में फैल गया एवं 1990 के दशक की समाप्ति तक अमेरिका के प्रवासी और गैर प्रवासी से पूर्ण रूप से बहुसंस्कृतिवाद को स्वीकार कर लिया था और अमेरिकी विद्वान नाथन ग्लेजर ने ये

*मानवशास्त्री, लखनऊ यूनिवर्सिटी, लखनऊ

घोषणा की कि अब हम सभी बहुसंस्कृतिवादी हैं, क्योंकि वहां पर अपने देश के मूल निवासियों से ज्यादा दूसरे देशों से आकर बसने वालो की संख्या हो गयी और ऐसी स्थिति ने कई बदलाव की ओर प्रेरित किया। कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, अर्जेंटीना आदि कई पश्चिमी देशों में बहुसंस्कृतिवाद को आधिकारिक नीति के रूप में अपनाया गया, जिसका तर्क अलग–अलग देशों में अलग था। पश्चिमी दुनिया के बड़े शहरों में तेजी से संस्कृति के मोजेक बने।

बहुसंस्कृतिकवाद भारत जैसे देश की आरम्भ से ही एक पहचान रही है। भारत का नृविज्ञानी सर्वेक्षण 'पीपुल ऑफ इंडिया' में भारत की कुल 4635 समुदायों का उल्लेख किया गया है जो इस देश की विविधता को प्रदर्शित करती है। **'जिओ और जीने दो'** जैसे सिद्धांत यहाँ पर छठी ईसवी पूर्व से ही प्रचलित है, जिसमें अनेकता में एकता का सार है, जो हमें आज से नहीं 3000 ईसवी पूर्व से ही **उपनिषद** के माध्यम से **'वसुधैव कुटुम्बकम'** का सन्देश दे रहा है। बहुसंस्कृतिवाद की अवधारणा काफी बाद की है, जब 70 के दशक में आस्ट्रेलिया में ये महसूस किया गया कि देश में मूल लोगों के अलावा दूसरे देशों के लोगों का भी प्रतिशत बढ़ा है और इसलिए उनके साथ समन्वय एक अवश्य तथ्य था। लेकिन भारत जैसे देश में जहा पर बाहरी आक्रमणकारियों ने इस देश की मूल संस्कृति को ईसा पूर्व चौथी शताब्दी से ही प्रभावित करना आरंभ कर दिया था वहां पर हूण, शक, कुषाण, मुस्लिम, ईसाई के निवास स्थान भी बन गए थे और इसीलिए भारत जैसे देश में 'जिओ और जीने दो' की परम्परा में सभी को जीने का अवसर मिलने लगा। परन्तु 1948 में सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा पत्र के आने के बाद ये भी कालांतर में महसूस किया जाने लगा कि किसी भी देश में कोई भी संस्कृति के लोग निवास कर रहे हो, लेकिन उनके जीवन और जीवनयापन के अधिकार को सुरक्षित और सुनिश्चित किया जाये और इसी कारण से विश्व के ज्यादातर देशों में उस देश की मूल संस्कृति और मूल निवासियों के साथ अन्य प्रवासी लोगों की संस्कृति को बहुलतावादी संस्कृति के संदर्भ में समझने और उसको स्थापित करने मानवाधिकार के आयाम ज्यादा मुखर हो गए जिन्होंने बहुलतावादी संस्कृति को एक विमर्श का केंद्र बना दिया।

धार्मिक रूप से भारत में हिंदू बहुसंख्यक हैं और दूसरे स्थान पर मुसलमान हैं। आंकड़ों के स्तर पर हिन्दू (80.5%), मुस्लिम (13.4%), ईसाई (2.3%), सिख (2.1%), बौद्ध (0.8:%, जैन (0.4%) तथा शेष पारसी, यहूदी, बहाई, अहमदी आदि की आबादी है। भारत गणतंत्र के राज्यों की सीमा को सर्वप्रथम 1956 में विभाजित किया गया। इस फैसले के बाद स्थानीय जातीय–भाषाई संस्कृति का संरक्षण और निरंतरता हो रही है।

बहुलतावादी संस्कृति को स्थिरता और समानता देने के लिए ये एक स्पष्ट प्रयास था, जो आज भी अन्य क्षेत्रों में जारी है।

भारत जैसे विविधता वाले देश में स्वंत्रता के बाद भारतीय संविधान में इस तथ्य को विशेष रूप से ध्यान में रखा गया कि देश में निवास करने वाले सभी लोगो के धर्म और संस्कृति के स्वरुप को उनकी मूल स्थिति में बनाये रखने के लिए ऐसे उपाए किए जाएं जो मौलिक अधिकार के रूप में समाहित किए गए।

संवैधानिक सुरक्षा

व्यक्ति की भावना और अभिव्यक्ति को ध्यान में रखते हुए इस बात का प्रावधान किया गया कि कोई भी धर्म का व्यक्ति अपनी इच्छा अनुसार अपने धर्म के साथ जी सके और इसीलिए अनुच्छेद–25 के अनुसार देश के प्रत्येक नागरिक को किसी भी धर्म को मानने व आचरण करने और प्रचार करने का अधिकार है। लेकिन सार्वजनिक व्यवस्था व समाज कल्याण एवं सुधार आदि के अंतर्गत इस पर रोक लगाई जा सकती है।

सभी संस्कृतियों और धर्म को अपने विकास की स्वतंत्रता हो इसके लिए भी मौलिक अधिकार के रूप में व्यवस्था की गयी। अनुच्छेद–26 के अनुसार धार्मिक प्रयोजन के लिए संस्था बनाने, उसका पोषण करने और धार्मिक कार्यों के प्रबन्ध के लिये संपत्ति अर्जित करने का अधिकार है।

भारत में काफी समय तक धर्म के नाम पर कर लेने की व्यवस्था स्वतंत्रता के पूर्व के शासकों ने की थी, पर गणतंत्र भारत में ऐसे किसी भी कर के लिए प्रतिबन्ध लगाकर संस्कृति के आधारस्तम्भ धर्म को मौलिक स्वतंत्रता दी गयी। अनुच्छेद–27 के अनुसार किसी भी व्यक्ति को किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष के पोषण हेतु कर देने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।

वर्ष 1976 में भारतीय संविधान के प्रस्तावना में धर्म निरपेक्षता शब्द को अधिवेशित करने से पूर्व ही मौलिक अधिकार के रूप में ये व्यवस्था शिक्षण संस्थाओं के लिए कर दी गयी थी, ताकि कोई भी संस्कृति की उपेक्षा न हो सके। अनुच्छेद–28 के अनुसार राज्य निधि से वित्त पोषित या आर्थिक सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी और न ही किसी व्यक्ति को धार्मिक शिक्षा या धार्मिक अनुष्ठान में भाग लेने के लिए बाध्य किया जा सकता।

1956 में भाषा को प्रमुखता देते हुए सभी भाषाओं के संरक्षण के अंतर्गत राज्य का पुनर्गठन ही नहीं किया गया बल्कि देश में 22 भाषाओं को मान्यता भी दी गयी

क्योकि किसी भी संस्कृति की भाषा को बचाने का अर्थ उस संस्कृति को संरक्षित करने का प्रयास ही है। अनुच्छेद–29 के अनुसार देश के प्रत्येक नागरिक को अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति को सुरक्षित रखने का पूर्ण अधिकार होगा। राज्य द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षण संस्था में किसी भी नागरिक को धर्म, मूलवंश व जाति और भाषा आदि के आधार पर प्रवेश लेने से वंचित नहीं किया जा सकता।

बहुलतावादी संस्कृति की सबसे बड़ी बात ये है कि वो अपने तरह से अपनी संस्कृति के अनुरूप संस्थाओं की स्थपाना कर सके और इसी लिए अनुच्छेद–30 के अनुसार धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्प संख्यक वर्गों को अपनी पसंद की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करने और प्रशासन का अधिकार होगा और राज्य इस आधार पर शिक्षा संस्थाओं को आर्थिक सहायता देने के लिए कोई भेदभाव नहीं करेगा।

सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणापत्र 1948

भारतीय संविधान का अनुच्छेद–14, सार्वभौमिक घोषणापत्र के अनुच्छेद–6 : "हर किसी को हर जगह कानून की निगाह में व्यक्ति के रूप में स्वीकृति–प्राप्ति का अधिकार है" के अनुरूप इसीलिए बनाया गया ताकि किसी व्यक्ति को किसी धर्म या संस्कृति के आधार पर न देख कर एक सामान्य व्यक्ति के रूप में देखा जाए।

संविधान ने सभी को विधि के समक्ष समान माने जाने के मौलिक अधिकार को अनुच्छेद–14 में स्पष्ट करते हुए उसको और भी स्पष्ट करने के लिए सभी संस्कृति के लोगों को वास्तविक स्वतंत्रता का अधिकार दिया जो सार्वभौमिक घोषणा पत्र 1948 के अनुच्छेद 18–21 के अनुरूप है और इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अंतरात्मा और धर्म की आजादी का अधिकार है। इस अधिकार के अंतर्गत अपना धर्म या आस्था बदलने और अकेले या दूसरों के साथ मिलकर तथा सार्वजनिक रूप में अथवा निजी तौर पर अपने धर्म या आस्था को शिक्षा, क्रिया, उपासना, तथा व्यवहार के द्वारा प्रकट करने की स्वतंत्रता है।

बहुलतावादी संस्कृति को समानता के स्तर पर रखने के लिए सार्वभौमिक घोषणा पत्र की धारा अनुच्छेद–22 के अनुसार समाज के एक सदस्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के उस स्वतंत्र विकास तथा गौरव के लिए – जो राष्ट्रीय प्रयत्न या अंतरराष्ट्रीय सहयोग तथा प्रत्येक राज्य के संगठन एवं साधनों के अनुकूल हो – अनिवार्यतः आवश्यक आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की प्राप्ति का हक है और भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में इसको समाहित किया गया है।

बहुलतावादी संस्कृति के कारण ही भारतीय संविधान को किसी एक संस्कृति

से संदर्भित करने के बजाय एक निरपेक्ष शब्द हम भारत के लोग का प्रयोग करते हुए प्रस्तावना का लेखन किया गया जो हम भारतीयों की संस्कृति के संरक्षण का ही प्रतिबिंब है और ये सार्वभौमिक घोषणापत्र 1948 के अनुच्छेद 28 के अनुरूप है जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी सामाजिक और अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था की प्राप्ति का अधिकार है जिसमें उस घोषणा में उल्लिखित अधिकारों और स्वतंत्रताओं का पूर्णतः प्राप्त किया जा सके।

उपरोक्त मौलिक अधिकारों की प्रतिध्वनि सावर्जनिक घोषणापत्र 1948 के अनुच्छेद 27 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रतापूर्वक समाज के सांस्कृतिक जीवन में हिस्सा लेने, कलाओं का आनंद लेने तथा वैज्ञानिक उन्नति में भाग लेने का हक है, सुनी जा सकती है।

बहुलतावादी संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण कवच सार्वभौमिक घोषणापत्र 1948 की धारा–30 है, जो विश्व के समस्त देशों को मानवाधिकार संरक्षण के वास्तविक अर्थ की ओर इंगित करती है और इसी के प्रकाश में भारत जैसे बहुलतावादी संस्कृति वाले देश में संविधान में इस तथ्य का विशेष ध्यान रखा गया कि घोषणा पत्र के अनुसार ही कार्य हो। इस घोषणा पत्र के अनुसार घोषणा में उल्लिखित किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए जिससे ये प्रतीत हो कि किसी भी राज्य, समूह या व्यक्ति को किसी ऐसे प्रयत्न में संलग्न होने या ऐसा कार्य करने का अधिकार है, जिसका उद्देश्य यहां बताए गए अधिकारों और स्वतंत्रताओं में से किसी का भी विनाश करना हो।

भाषाई विविधता को सुरक्षा.

बहुलतावादी संस्कृति का सबसे बड़ा आधार भाषाओं की विविधता और उनका समान रूप से प्रभाव का होना है। भारत दुनिया के उन देशों में से एक है जहां भाषाओं में विविधता की विरासत है। भारत के संविधान ने 22 आधिकारिक भाषाओं को मान्यता दी है। संविधान के द्वारा मान्यता प्राप्त बाईस भाषाओं में असमिया, बंगाली, बोडो, डोगरी, गुजराती, हिन्दी, कश्मीरी, कन्नड़, कोंकणी, मैथिली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उडिया, पंजाबी, संस्कृत, संथाली, सिंधी, तमिल, तेलुगू और उर्दू को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया है। भारत के संविधान में अल्पसंख्यक भाषाओं के संरक्षण के लिए मौलिक अधिकार के रूप में एक अनुच्छेद को शामिल किया गया है। इसमें कहा गया है कि भारत के किसी भी क्षेत्र और किसी भी भाग में रहने वाले नागरिकों के किसी भी वर्ग की विशिष्ट भाषा, लिपि या अपनी स्वयं की संस्कृति को संरक्षित करने का अधिकार होगा। भारत की भाषा नीति भाषाई अल्पसंख्यकों की रक्षा की गारंटी प्रदान करती है। संविधान के प्रावधान के तहत अल्पसंख्यक समूहों द्वारा बोली जाने वाली भाषा के हितों की रक्षा की एकमात्र जिम्मेदारियों के लिए भाषाई अल्पसंख्यक समुदाय

हेतु विशेष अधिकारी की नियुक्ति की जाती है। 1991 में भारत की जनगणना में अलग व्याकरण की संरचना के साथ 1576 सूचीबद्ध मातृभाषाएँ और 1796 भाषिक विविधता को अन्य मातृभाषाओं के रूप में वर्गीकृत किया गया है। भारत की एक और अनूठी विशेषता अपनी मातृभाषा में ही बुनियादी शिक्षा प्राप्त करने के लिए बच्चों के हितों की रक्षा करने की अवधारणा है। इसके लिए संविधान में भाषाई अल्पसंख्यक समूहों के बच्चों के लिए प्राथमिक स्तर पर शिक्षा प्रदान करने के लिए मातृभाषा में शिक्षण की पर्याप्त सुविधाएं प्रदान करने के लिए हर राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी अधिकारी के द्वारा इसका प्रयास किए जाने का प्रावधान किया गया है। इस प्रकार, संयुक्त राष्ट्र के द्वारा (21 फरवरी) को अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस घोषित करने से पूर्व ही भारतीय संविधान के संस्थापकों ने मातृभाषाओं में शिक्षण से बच्चे को अपनी पूरी क्षमता के साथ सक्षम बनाने और विकसित करने को शीर्ष प्राथमिकता दी है।

यह अवधारणा संयुक्त राष्ट्र के विश्व मातृभाषा दिवस—2017 के विषय के साथ पूरी तरह से साम्यता रखती है, जिसके अंतर्गत शिक्षा, प्रशासनिक व्यवस्था, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति और साइबर स्पेस में स्वीकार किए जाने के लिए बहुभाषी शिक्षा की क्षमता विकसित करना आवश्यक है। 1956 में भारत में राज्यों के पुनर्गठन में भाषाई सीमाओं का अपना महत्व था। भारत की भाषा नीति बहुलतावादी रही है जिसमें प्रशासन, शिक्षा और जन संचार के अन्य क्षेत्रों में मातृभाषा के उपयोग को प्राथमिकता दी गई है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के भाषा ब्यूरो का गठन भाषा नीति को लागू करने और इसपर नजर रखने के लिए किया गया है। भारत सरकार ने डिजिटल भारत की अभिकल्पना के तहत जुलाई 2017 से बेचे जाने वाले सभी मोबाइल फोनों में भारतीय भाषाओं की सुविधा को अनिवार्य कर दिया है। इससे न सिर्फ डिजिटल अंतर को समाप्त किया जा सकेगा बल्कि भारत के ऐसे एक अरब लोग, जो अपनी भाषाओं में संपर्क करने में अंग्रेजी नहीं बोलते, को सशक्त बनाने की दिशा में मार्ग प्रशस्त होगा। इससे बड़ी संख्या में लोगों के ई—गवर्नेंस और ई—कॉमर्स का हिस्सा बनने से क्षमता में वृद्धि भी होगी।

राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विविधता को सुरक्षा.

भारत सदैव से ही विविधाताओं का देश रहा है और स्वयं इस देश की मूल धर्म और जाति हिन्दू में भी सभी लोगों को राष्ट्र राज्य की संकल्पना में समान रूप से स्थान देने के लिए एक ऐसी व्यवस्था की गयी जिसके कारण देश में कोई भी विधि बनायी जाए तो देश सभी जाति धर्म के लोगों का प्रतिनिधत्व कर सके और इसीलिए दलित, अनुसूचित जाति, जनजाति के लोगों के बारे में बात रखने वाले पर्याप्त लोगों का प्रतिनिधित्व संसद में रहे इसीलिए लोकसभा में अनुसूचित जाति और जनजातियों

के लिए 131 सीटें आरक्षित हैं। इसके अतिरिक्त उच्च सदन में सीधे तौर में दो एंग्लो इंडियन सदस्यों को नामित करने का अधिकार भी राष्ट्रपति को है ताकि सभी का प्रतिनिधित्व हो सके।

विभिन्न संस्कृतियों के लोगों को अपने समाज समुदाय के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए अपनी संस्कृति के अनुरूप ही विवाह करने की स्वतंत्रता विधिक रूप से दी गयी है। हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 बनाकर हिंदुओं के विवाह को वैधानिकता दी गयी। स्पेशल मैरिज एक्ट 1954 के तहत ये भी व्यवस्था की गयी कि कोई भी संस्कृति का व्यक्ति दूसरी संस्कृति के व्यक्ति के साथ विवाह करने का अधिकार प्राप्त कर सके। इस बात का ध्यान रखा गया कि जो जिस संस्कृति का है वो अपनी संस्कृति के अनुसार ही विवाह विच्छेद भी कर सके पर इन सब में संविधान के अनुच्छेद–21 के अनुरूप व्यक्ति की गरिमा और जीवन जीने का अधिकार बाधित न हो। डिस्योलूशन ऑफ मुस्लिम मैरिज एक्ट 1939 के तहत मुस्लिम पत्नी किसी भी उचित न्यायालय में तलाक के लिए पति पर मुकदमा चला सकती है। मुस्लिम विवाह–विच्छेद अधिनियम 1939 के मुताबिक मुसलमान पत्नी नौ वजहों से अपने पति को तलाक दे सकती हैं। भारत में ईसाई विवाह भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम के प्रावधानों के मुताबिक संपन्न होते हैं। इंडियन क्रिश्चियन मैरिज एक्ट 1872 के तहत ईसाई किसी गैर–ईसाई से विवाह कर सकती या सकता है।

भारत जैसे देश में जहां हर धर्म जाति के लोग एक साथ रहते हैं वहां पर सभी की जीविकोपार्जन को सुनिश्चित करते हुए संविधान के अनुच्छेद–21 के अनुसार जीवन जीने के अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए आरक्षण जैसी व्यवस्था की गयी ताकि समाज में किसी एक ही समूह के हाथ में शासन सत्ता नौकरी का केन्द्रीकरण न रहे और इसी लिए आरक्षण में ये व्यवस्था की गयी कि अगर अनुसूचित जाति, जनजाति को आरक्षण का लाभ मिले तो अन्य अल्पसंख्यकों को भी अनुपातिक रूप से देश में लाभ मिले और इसीलिए उनको भी 27 प्रतिशत का आरक्षण प्रदान किया गया।

भारत में बहुलतावादी संस्कृति के साथ मानवाधिकार सदैव ही परिलक्षित होता रहा है क्योंकि संविधान के अनुच्छेद–15 के अनुसार लिंग, जाति, धर्म, रंग के आधार पर किसी भी तरह के भेद का निषेध करते हुए देश में निवास करने वाले सभी लोगों को सार्वजनिक जगहों पर आने जाने की अनुमति दी गयी है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद–16 में सभी को अवसर में समानता मिले इसकी भी व्यवस्था की गयी है। अनुच्छेद–14 में विधि के समक्ष सभी समान हैं, इसीलिए रखा गया है ताकि एक साथ कई संस्कृति के लोगों के रहने से किसी भी तरह का भेद भाव न हो जाए और ये सभी मूल अधिकार है, जिनके उल्लंघन पर

संविधान के अनुच्छेद ३२ के प्रकाश में सीधे सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया जा सकता है।

सारांश

मानव के उद्विकास के क्रम में ये भी प्रमाणित है कि मानव ने अपनी नस्ल को बचाने के लिए अपने ही समान दूसरी मानव की नस्ल को समाप्त करने का निरंतर प्रयास किया है, फिर चाहे वो नियंडरथल और क्रोमैग्नान के बीच में संघर्ष हो या फिर दूसरे विश्व युद्ध में नस्ल की शुद्धता को लेकर किए जाने वाला नरसंहार रहा हो पर 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ के अस्तित्व में आने से राष्ट्र–राज्य की संकल्पना में पूरे विश्व में मानव को समान माने जाने के आधार पर 1948 में मानवाधिकार चार्टर लाया गया। जिसके प्रकाश में न सिर्फ मानव एक देश से दूसरे देश में जाने के लिए स्वतंत्र हुआ बल्कि निर्वासन के समय भी वो दूसरे देश में रहने के लिए अधिकार पा गया पर इन सबके बीच भारत जैसे विविधता पूर्ण संस्कृति वाले देश में हमेशा से ही बंधुत्व की भावना का समावेश रहा और इसीलिए जो भी यहाँ आक्रमणकारी के रूप में भी आया वो इस देश में आत्मसात कर लिया गया।

उपरोक्त तथ्यों के प्रकाश में ये स्पष्ट है कि भारत में लगातार आक्रमण के कारण संस्कृति में विविधता एक सामान्य लक्षण है, जो स्वतंत्र भारत के संविधान में स्पष्ट है, जो भारत जैसे देश में रहने वाले समस्त लोगों को सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा पत्र 1948 की धारा–1 के अनुरूप सभी को समान और जन्म से स्वतंत्र मानते हुए हर संस्कृति के लोगों की गरिमा अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिए बहुलतावादी संस्कृति की अवधारणा में मानवाधिकार को स्थापित किया है।

मानवीय सिद्धान्तों को अपने अंदर समेटे हुए "जिओ और जीने दो" का नारा भारतीय जनमानस में प्राचीन काल से ही लोकप्रिय रहा है। यह नारा जैन धर्म के 24 वें तीर्थंकर महावीर स्वामी की मानवीय सीखों का मूल है। महावीर स्वामी द्वारा दिए गए इस नारे में छिपी सीख का अनुसरण आज भी सभी धर्मों के लोगों द्वारा बिना किसी भेदभाव के किया जाता है। जैन सभाओं तथा धार्मिक क्रियाओं में यह नारा अक्सर गूँजता हुआ सुना जाता है। अपने जीवनकाल में महावीर स्वामी ने मानवीय मूल्यों और जीवन की रक्षा हेतु लोगों को इस नारे से प्रेरित किया था। मानवीय जीवन को श्रेष्ठ बनाने, स्वयं जीने व दूसरों को जीने देने की सीख देता ''जिओ और जीने दो'' का नारा रूपी यह नियम प्राचीन काल से ही आम जनों में दोहराया जाता रहा है। उपनिषद् ही समस्त भारतीय दर्शनों के मूल स्रोत हैं, चाहे वो वेदान्त हो या सांख्य या जैन धर्म या बौद्ध धर्म। उपनिषदों के काल के विषय मे निश्चित मत नहीं है पर उपनिषदों का काल

3000 ईसा पूर्व से 3500 ई0 पू0 माना गया।

संदर्भ

1. वसुधैव कुटुम्बकम्।। (महोपनिषद्, अध्याय 4, श्लोक 71) : उदारचरितानांतु वसुधैव कुटुम्बकम। अर्थ – यह अपना बन्धु है और यह अपना बन्धु नहीं है, इस तरह की गणना छोटे चित्त वाले लोग करते हैं। उदार हृदय वाले लोगों की तो (सम्पूर्ण) धरती...ही परिवार के सामान है।
2. एंड्रयू जैकोबोविक्स : मल्टीकल्चरिज्म इन ऑस्ट्रेलिया : एपोजी एंड नाडिर।
3. पोलिसी पेपर न.4 – मल्टीकल्चरलिज्मः न्यू पोलिसी रेसपोंसेस टू डाइवरसिटी।
4. कनाडा में बहुसंस्कृतिवाद।
5. आव्रजन और बहुसंस्कृतिवाद।
6. बहुसंस्कृतिवाद और आधुनिक सभ्यताओं की गतिशीलता।

****

हमें मानवता को उन नैतिक जड़ों तक वापस ले जाना चाहिए जहाँ से अनुशासन और स्वतंत्रता दोनों का उद्गम हो

—सर्वपल्ली राधाकृष्णन

सांस्कृतिक बहुलता की संकल्पना तथा प्रासंगिकता

प्रतिभा*

बीज शब्द : बहुसंस्कृतिवाद, मानवाधिकार, परंपरा, वैश्वीकरण, सामूहिक चेतना, चुनौती

सारांश

बहुसंस्कृतिवाद भिन्न संस्कृतियों के स्वीकार और उनके प्रोत्साहन से संबंधित है। अन्य संस्कृतियों के सहर्ष स्वीकार्य, उनके साथ एकरूपता तथा उन्हें आत्मसात करने की प्रक्रिया ही बहुसंस्कृतिवाद की अवधारणा का पोषण करती है। अतः स्पष्ट रूप से भारतीय संदर्भ में यह भिन्न विचारों के स्वीकार्य की स्वस्थ परंपरा का संकेत है जो ऐतिहासिक घटनाक्रम के रूप में संस्कृतियों के निर्माण के क्रम में विभिन्न अस्मिताओं का सम्मिलन हुआ परंतु ऐसा करते हुए भी उनके पृथक अस्तित्व को अक्षुण्ण रखा गया। औपनिवेशिक दौर में भी भारत की सांस्कृतिक बहुलता बहुविध परीक्षाओं से और परिष्कृत हुई। परंतु बहुलतावाद के समक्ष कई बाह्य एवं आंतरिक चुनौतियां विद्यमान हैं, जिसमें सबसे प्रमुख वैश्वीकरण एवं उससे उत्पन्न हुई बाजार व्यवस्था है। आंतरिक चुनौतियों में स्वीकार्यता तथा सहिष्णुता का संकट सबसे प्रमुख है। साथ ही, यह भी सत्य है कि हमारी सामूहिक चेतना में बहुलतावाद विद्यमान है जिसे जागृत कर नया आकार देने की आवश्यकता है।

पांच हज़ार वर्षों से अधिक की ऐतिहासिक निरंतरता के साथ भारत विश्व की एक प्राचीन, विशाल और बहुआयामी सभ्यता के रुप में ज्ञात है। अपनी जटिल सामाजिक व्यापकताओं और सांस्कृतिक विविधताओं के कारण भारत को मानवीय इतिहास में अद्वितीय 'लघु–विश्व' की संज्ञा प्रदान की गई है। लगभग डेढ़ दर्जन भाषाओं, 2000 बोलियों, अनगिनत सम्प्रदायों, जातियों और उपजातियों में बंधे कुल 8 प्रमुख धार्मिक समुदाय इसके 50 से अधिक सामाजिक–सांस्कृतिक उपक्षेत्रों में बसते हैं।

स्पष्ट रूप से यहां भारतीय मानस के लचीलेपन और भिन्न विचारों के स्वीकार की एक स्वस्थ परम्परा की ओर संकेत मिलता है, जिसका निचोड़ हमें 'जिओ और जीने दो' के उद्घोष में प्राप्त होता है। रहन–सहन तथा वैचारिक

*आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, मो.ला.सु. विश्वविद्यालय, उदयपुर

दृष्टि से भिन्न समूहों में पारस्परिक तथा नवागंतुक समूहों के साथ संघर्ष अवश्य हुए होंगे परंतु कालान्तर में समन्वय और सहिष्णुता को अंगीकार करते हुए विविध रंग के फूलों से युक्त एक गुलदस्ते के रुप में भारत की कल्पना की गई, जिसे 'अविभक्तं विभक्तेषु' और सरलीकृत रुप में 'अनेकता में एकता' का सैद्धान्तिक रूप मिला। दूसरे शब्दों में कहें तो राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माण की क्रमिक प्रक्रिया में विभिन्न अस्मिताओं का सम्मिलिन हुआ। परंतु ऐसा करने में उनके पृथक् अस्तित्व और भिन्न पहचान को अक्षुण्ण बनाए रखा गया।

ऐसा ही एक बड़ा प्रयास ईसा से कोई 2000 वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ, जिसकी परिणति 1000 वर्षो के दीर्घकाल के पश्चात् हुई। इसमें प्राग्वैदिक और वैदिक संस्कृति की दो धाराओं का मिलन महानायक अगस्त्य ऋषि की अगुवाई में हुआ। इसकी पुष्टि उत्तर और दक्षिण भारत में शास्त्रीय साहित्य के साथ–साथ लोक मानस में प्रचलित गाथाओं से भी होती है, जहां अगस्त्य उत्तर–दक्षिण सेतु के रूप में प्रसिद्ध हैं।

अपने काल की विविध मान्यताओं को अंगीकार करते हुए उनमें सामंजस्य की नींव ऋग्वैदिक ऋषियों ने ही रख दी थी, यह कहते हुए कि –

इद्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

(ऋग्वेद 1/164/46)

इसी प्रकार अथर्व वेद का 'पृथिवीसूक्त' यदि पृथिवी पर स्थित ग्राम और अरण्य, सभाओं और समितियों तथा सार्वजनिक सम्मेलनों में पृथिवी के लिए सुन्दर भाषण की कामना द्वारा तो 'सामनस्य सूक्त' उत्तम ज्ञान की कामना द्वारा इस दृष्टिकोण की पुष्टि करता है।

''जिस ज्ञान को पाकर विद्वान लोग एक दूसरे का विरोध नहीं करते और आपस में भी द्वेष नहीं रखते, उस ब्रह्म विधा को तुम सबके घरों में हम पहुंचाते हो जो सबसे उत्तम ज्ञान प्राप्त करने वाली है।''

यहीं नहीं, वरुण देवता को जितना अपनी भूमि का, उतना ही विदेशियों को भी देवता घोषित किया जाता है–

यः सदेश्यो वरुणो यो विदेश्यः (अथर्ववेद)

आगे चलकर ऐतरेय ब्राह्मण में आर्यो, दासों, द्रविद्वों के अतिरिक्त पुण्ड्र, शबर, आन्ध्र, पुलिन्द आदि की स्वतंत्र सत्ता का उल्लेख प्राप्त होता है।

महाकाव्य काल में जहां रामायण में विन्ध्य पर्वत के दक्षिण के पूरे क्षेत्र के आर्येतर जातियों और वनों से भरे होने का उल्लेख है, वहीं महाभारत में यवन, किरात, दरद, चीनी, शक, पहलव, शबर आदि का भी उल्लेख किया गया है।

सभी प्राचीन भारतीय धार्मिक सम्प्रदाय स्वीकार और समाहार की इस परम्परा की पुष्टि करते हैं। जैन दर्शन में अनेकान्तवाद द्वारा अनेक मतों के स्वीकार्य को आमंत्रण दिया गया है। भारतीय दार्शनिक और सांस्कृतिक परम्परा की अनूठी उपलब्धि 'भक्ति' तो भारत के सभी भागों की पोषित सन्तान है। 'पद्म पुराण' और 'श्रीमद्भागवत' दोनों में इस तथ्य की उद्घोषणा है–

उत्पन्ना द्राविड़े चाहं कर्णाटे वृद्धिमागता।
स्थिता किंचिंमहाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतागता।।

संवेदनशीलता और अंगीकार की इस परम्परा के कारण ही आगे चलकर भारत ने यहूदी, ईसाई, इस्लाम और पारसी जैसे भारत–भूमि से बाहर उत्पन्न विभिन्न संप्रदायों को खुले दिल से स्वीकार किया। शर्ली आइजनबर्ग अपनी पुस्तक 'India's Ben Izrael' में कहती हैं–

"ये सारे धर्म भारत में इसलिए आ सके क्योंकि यह देश इन सबके प्रति सहृदय रहा।" वे कहती हैं – "विश्व के अन्य बहुत से देशों से अलग यहूदी धर्म को कई सदियों तक शान्ति और सद्भाव के साथ यहां रहने की अनुमति दी गई।"

ईसाई धर्म का भी यहां सद्भावपूर्ण स्वागत हुआ। कहा जाता है सेण्ट थॉमस समुद्री मार्ग से प्रथम शती ई. में भारत आए और चर्चो की स्थापना और ईसाइयत का प्रसार कार्य किया। बाद में अरब व्यापारियों के द्वारा दक्षिण में इस्लाम का प्रसार किया गया।

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद यद्यपि सुल्तानों ने अपनी बहुसंख्य प्रजा का हृदय जीतने के लिए विशेष प्रयास नहीं किए, तथापि साहचर्य ने सामंजस्य और तत्पश्चात् सौमनस्य का पथ प्रशस्त किया। भक्त कवियों, सूफी सन्तों और उनसे प्रभावित अमीर खुसरो जैसे साहित्यकारों ने भारत की सांस्कृतिक बहुलता को बनाए रखने में अप्रतिम योगदान दिया। खुसरो की मसनवी 'नूहे–सिपह' में जन्मभूमि के रुप में भारत–भूमि की वन्दना उन्हें श्रेष्ठतम भारतीयों की श्रेणी में ला खड़ा करती है। खुसरो कहते थे–

"संभव है कोई मुझसे पूछे कि भारत के प्रति मैं इतनी श्रद्धा क्यों रखता हूं? मेरा उत्तर यह है कि केवल इसलिए कि भारत मेरी जन्मभूमि है, भारत मेरा अपना देश

है। खुद नबी ने कहा है कि अपने देश का प्रेम आदमी के धर्म–प्रेम में सम्मिलित होता है।''

धार्मिक पूर्वाग्रहों से मुक्त जैनुल अबादीन की अगुआई में बंगाल, दक्खिन और कश्मीर के स्वतंत्र मुस्लिम शासकों ने राजनैतिक के साथ–साथ सांस्कृतिक निकटता का सूत्रपात किया।

शैनः शनैः तूरानी, फारसी और इस्लामी परम्पराओं से भारतीय परम्पराओं का मेल प्रारम्भ हुआ। मुगल सम्राट अकबर को तत्कालीन धार्मिक कट्रता से जूझते हुए सहिष्णु शासन की मिसाल कायम करने और उसके सहारे बहुल संस्कृति को बढ़ावा देने का श्रेय दिया जा सकता है। अकबर ने एक ओर मदरसों में व्यावहारिक पाठ्यक्रम अपनाते हुए इस्लामी शिक्षा के साथ ही आधुनिक शिक्षा का सूत्रपात किया ताकि दीने–इस्लाम के साथ–साथ मुसलमान लोग भी गणित, ज्यामिति, शिष्टाचार, खेती–बाड़ी, सामाजिक संबंध, चिकित्सा, इतिहास तथा संस्कृत आदि भी सीख सकें। यहां तक कि वेदान्त की अनिवार्य शिक्षा भी उन्हें दी गई। दूसरी ओर आइने–अकबरी के रूप में वृहत इतिहास ग्रन्थ और बड़े पैमाने पर अनुवाद कार्यों के द्वारा भारत के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन के अध्ययन के प्रयास प्रारम्भ किए गए। निस्संदेह अब हिन्दू और मुस्लिम प्रजा ने पूर्वाग्रहों को त्याग एक दूसरे का वास्तविक परिचय प्राप्त किया।

यहीं नहीं, राजधानी आगरा के निकट स्थित कृष्ण भूमि मथुरा–वृन्दावन को सहायता दी गई। 1565 ई. में अकबर ने 200 बीघा भूमि ज्यों गोसाईं को मौजा वृन्दावन में दी और इसी वर्ष इतनी ही भूमि मदद–ए–माश के रुप में मदन मोहन मंदिर के सेवक गोपाल दास को भी दी। 1598 में जारी एक फरमान में अकबर द्वारा मथुरा–वृन्दावन के 35 मंदिरों की स्थापना का वर्णन मिलता है। यहां तक कि मथुरा और वृन्दावन के महत्व को देखते हुए अकबर ने उनके इर्द–गिर्द बसने वाले गांवों को पूर्ण रुप से कर मुक्त क्षेत्र घोषित कर दिया।

भारत की बहुल संस्कृति के संरक्षण हेतु अकबर ने और आगे जाते हुए पूर्व के नियमों के विपरीत मुस्लिम बहुल क्षेत्रों के गैर मुस्लिमों को इबादतगाह की स्थापना का अधिकार भी दिया। न केवल अधिकार, बल्कि चर्च आदि के लिए जमीनें भी दीं। जजिया की समाप्ति के बाद 1580 ई. में अकबर ने पूर्ण रुप से 'सुलह कुल' (सर्व सम्मान और सहिष्णुता) की नीति की घोषणा करते हुए उदारवाद की नींव डाली।

औपनिवेशिक दौर में भी भारत की सांस्कृतिक बहुलता बहुविध परीक्षाओं से और निखरकर उभरी। शिकागो में धार्मिक बहुलता की रक्षा के लिए दिया गया स्वामी

विवेकानन्द का वक्तृत्व भारतीय दृष्टिकोण की स्पष्ट अभिव्यक्ति करता है। उन्होंने कहा– "यदि कोई व्यक्ति यह समझता हो कि धार्मिक एकता का मार्ग एक धर्म की विजय और बाकी धर्मों का विनाश है, तो मैं उससे निवेदन करूंगा कि बन्धु! तुम्हारी आशा पूरी नहीं होगी। क्या मैं यह चाहता हूं कि सभी ईसाई हिन्दू हो जाए? भगवान करे कि ऐसा न हो। क्या मैं यह चाहता हूँ कि सभी हिन्दू और बौद्ध ईसाई हो जाएं? ईश्वर न करे कि ऐसा हो। ईसाई को हिन्दू या बौद्ध अथवा बौद्ध को ईसाई नहीं होना है किन्तु इनमें से प्रत्येक का कर्तव्य है कि वह अन्य धर्मों का सार अपने भीतर पचा ले और अपनी वैयक्तिकता की पूर्ण रूप से रक्षा करते हुए उन नियमों के अनुसार अपना विकास खोजे, जो उसके अपने नियम रहे हैं।"

वस्तुतः इस विचार का उत्स राजा राजा राम मोहन राय के हिन्दू धर्म विषयक तात्विक चिंतन में खोजा जा सकता है, जब उन्होंने कहा था मुक्त चिंतन, वैयक्तिक स्वातंत्र्य और प्रत्येक प्रकार का विश्वास रखकर भी धर्मच्युत नहीं होने की योग्यता, हिन्दू धर्म के पुराने लक्षण रहे हैं। हिन्दू नास्तिक भी रहा है और आस्तिक भी, साकारवादी भी रहा है और निराकारवादी भी। उसने महावीर का भी आदर किया और बुद्ध का भी। उसने वेदों को अपौरुषेय माना है और पौरुषेय भी। विश्वासों में यह जो प्रचण्ड भिन्नता है, उससे हिन्दू का हिन्दुत्व दूषित नहीं होता है।

इस सुदृढ़ पारम्परिक भावभूमि पर स्थित भारतीय सांस्कृतिक बहुलता को आज अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। आज हमारी सांस्कृतिक बहुलता को बाध्य और आन्तरिक दोनों ही स्तरों पर चुनौतियाँ मिल रही हैं।

बहुलता के लिए सर्वप्रमुख बाह्य चुनौती है वैश्वीकरण और उससे उपजे बाजारवाद से। वैश्वीकरण वस्तुतः वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं और संस्कृतियों का मेल और एकरूपीकरण है। विश्व सिमट कर 'विश्व ग्राम' हो गया और मुक्त बाजार के वर्चस्व में संस्कृति भी उद्योग बन गई। वैश्वीकरण की बयार ने भावनाओं को गौण बनाते हुए उत्पादनों के विक्रय को ही अपना ध्येय बनाया। परिणाम यह हुआ कि आवभगत की सनातन संस्कृति पर आधारित पर्यटन उत्पाद में परिणत हुआ और पारम्परिक बहुलता का स्थान एकरूपता ने ले लिया। भारत की विविधरंगी संस्कृति आज एकरस हो जाने को विवश है। जाने–पहचाने वैश्विक ब्रांडों से भरे एक जैसे मॉल, एक से उत्पाद और अपनी पूर्व विलक्षणता को खोते शहरों की भी विशिष्ट पहचान धूमिल होती जा रही है। विकासशील देशों की स्थानीय सांस्कृतिक अस्मिताएं पाश्चात्य चकाचौंध में लुप्त होने को बाध्य हैं तो अंग्रेजी के वर्चस्व में भारत जैसे देशों की समृद्ध भाषाई बहुलता अतीत हो जाने को विवश है।

आन्तरिक चुनौतियों में स्वीकार्यता और सहिष्णुता का संकट सबसे प्रमुख है।

स्वीकार्यता व्यक्तियों, परिस्थितियों अथवा विचारों को यथातथ्य स्वीकार अथवा सहन करने का एक स्वभाव है। स्वीकार का यह संस्कार अपने से भिन्न दूसरों में विश्वास और उसके प्रति संवेदनशीलता से आता है लेकिन वर्तमान परिस्थितियों में व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों स्तरों पर भिन्न मत—मतान्तरों, जातियों—सम्प्रदायों और मान्यताओं प्रथाओं की स्वीकार्यता में स्वाभाविक गिरावट आई है। संवेदनशीलता स्वेतर की बजाय 'स्व' में केन्द्रित होती जा रही है। इस स्वकेन्द्रिता और अधैर्यता के लिए परम्परागत पारिवारिक—सामाजिक ढांचे में परिवर्तन, भौतिकवादिता की आपाधापी, पद प्रतिष्ठा की होड़, बाजार के दबाव और राजनैतिक माहौल भी उत्तरदायी हैं।

स्पष्ट रुप से बहुलता और भिन्नरसता जीवन की गुणवत्ता और आनन्द के लिए आवश्यक तत्व हैं और भारत की तो पहचान ही बहुलता है। उसकी सार—संभाल का दायित्व हमें व्यक्तिगत और सामूहिक सभी रूप स्वीकार करना होगा। वैश्वीकरण को स्वीकारें, परन्तु अपनी निजता, स्थानीयता और भिन्नरूपा संस्कृति को ध्यान में रखते हुए। इस प्रकार की स्वीकार्यता के लिए विविध स्तरों पर प्रयास करना होगा। हमारी पहचान यदि सांस्कृतिक बहुलता रही है तो हमारी शक्ति सहिष्णुता। सहमत होना, असहमत होना हमारा अधिकार है, परन्तु विभिन्न विचारों—विचारधाराओं की उपस्थिति को स्वीकारना हमारी प्रकृति, हमारी परम्परा है। इसके अभाव में हमारी वैचारिक—सरणि का मूल स्वरूप नष्ट हो जाएगा। जिस सांस्कृतिक बहुलता का निर्माण सदियों से विविध विचारों को आत्मसात कर हुआ है, उसे बनाए रखने के लिए परिवार और समाज के स्तर पर शिक्षा देनी होगी, यह शिक्षा भी जरूरी होगी कि राष्ट्र हित हेतु व्यक्तिगत हित को त्यागना तथा दूसरे की आस्था, प्रथा, विश्वास का सम्मान करना चाहिए। हमारी सामूहिक चेतना में तो बहुलता विद्यमान है ही, आवश्यकता है उसे जागृत कर नया आकार देने की। तभी भारतीय बहुसंस्कृतिवाद विश्व के समक्ष उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हो सकता हैं।

संदर्भ

1. Understanding Society Culture & change, Subhadra Channa, Blaze Publishers.
2. Profiles of Social Change, Bimal Ghosh, Oxford & IBH Publishing Co.
3. Challenges of Societies in Transition, Ed. Manorama Barnabas; S.K. Hulbe, PS Jacb. Macmillan Company of India Ltd.
4. Cultural Policy, Sheo Kumar Lal, Amar Prakashan, Delhi
5. संस्कृति विमर्श : सच्चिदानन्द सिन्हा, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर
6. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन
7. भारत की राष्ट्रीय संस्कृति : एस. आबिद हुसैन, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया

8. भारतीय समाज : तात्विक और ऐतिहासिक विवेचन, गोविन्द चन्द पाण्डे, नेशनल पब्लिशिंग हाउस
9. हमारी परम्परा : तात्विक और ऐतिहासिक विवेचन, गोविन्द चन्द्र पाण्डे, नेशनल पब्लिशिंग हाउस
10. हमारी परम्परा : सं. वियोगी हरि, सस्ता साहित्य मंडल, प्रकाशन
11. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन : जे.पी. सिंह, पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली

****

दयालुता वह भाषा है जिसे बहरे सुन सकते हैं और अंधे देख सकते हैं।

—मार्क ट्यून

यातना पीड़ितों के पुर्नवास में मानवाधिकार संगठनों की चुनौतियां

कमलेश कुमार*

(बीज शब्द : यातना, कैदी, मानवाधिकार, पुनर्वास कार्यक्रम)

सारांश

भारत में यातना से पीडित कैदियों का इतिहास अत्यंत विचलित करने वाला है। औपनिवेशिक काल से वर्तमान काल तक कैदियों को पुलिस द्वारा अपराध की स्वीकारोक्ति हेतु कई प्रकार की यातनाएं दी जाती रही हैं। जिसके बारे में कई घटनाएं हमारे सामने आई हैं। इस संबंध में समय–समय पर कई निषेधात्मक कानून भी बने, जो किसी भी कारण से दी गई यातना को भारतीय दण्ड संहिता के अनुसार, दण्डनीय अपराध मानता है। यातना का शिकार हुए इन बंदी पीडितों के लिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग द्वारा प्रारंभ किए गए बंदी पुनर्वास कार्यक्रम, इस दिशा में कार्य कर रही विभिन्न संस्थाओं तथा उनकी चुनौतियों की चिंताजनक तस्वीर पेश करती है। जिस पर भारत सरकार को प्रभावी तरीके से काम करने की आवश्यकता है ।

यातना का अर्थ

संयुक्त राष्ट्र की यातना एवं अन्य क्रूर अमानवीय व अपमानजनक या तिरस्कार या दण्डपूर्ण व्यवहार के निवारण हेतु अभिसमय, 1984 के अनुच्छेद –1 के अनुसार "यातना" शब्द का अर्थ है कि कोई भी कार्य जो गम्भीर दर्द या पीड़ा, शारीरिक या मानसिक, जानबूझकर किसी व्यक्ति या तीसरे व्यक्ति के बारे में जानकारी या बयान प्राप्त करने के उद्देश्य से दण्डित करने के रूप में, किसी व्यक्ति को डराने या उसे मजबूर करने के आधार पर दर्द या पीड़ा एक सरकारी अधिकारी के रूप में दिया जाता है तो यातना माना जायेगा (इसमें इस प्रकार का दर्द शामिल नहीं है जो कि अपराधी को न्यायालय द्वारा सजा के रूप में औपचारिक रूप से दिया जाता है।) उपर्युक्त "यातना" शब्द को संयुक्त राष्ट्र अभिसमय में परिभाषित कर निम्न बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है–

(अ) ऐसा कार्य या कृत जिसे शारीरिक एवं मानसिक पीड़ा का बोध होता है।

***पूर्व शोध अधिकारी, टाटा सामाजिक विज्ञान संस्थान, मुम्बई**

(ब) ऐसा कार्य या कृत्य जिसे सरकारी अधिकारी रहते हुऐ किया जाता है।

(स) ऐसा कार्य और कृत्य जिससे पीड़ा या दर्द का अनुभव होता है। किसी सरकारी व्यक्ति द्वारा स्वीकारोक्ति या जाँच के परिवेश में दिया जाता है।

(द) ऐसा कार्य या कृत्य जानबूझकर किया गया हो दुर्घटना न हो।

संयुक्त राष्ट्र की "यातना" की अभिसमय को अब तक 162 देशों द्वारा अनुमोदित किया जा चुका है। 27 देशों ने कोई कार्रवाई नहीं की है एवं 8 देशों ने इसपर केवल हस्ताक्षर किए हैं। इस प्रकार कुल 197 देशों ने कार्रवाई की है। भारतवर्ष एक हस्ताक्षरकर्ता देश है जिसने 1997 में इस अभिसमय को स्वीकार कर भविष्य में रणनीति तय करने हेतु पुष्टि का संकेत दिया है लेकिन अभी तक "यातना" की अभिसमय पुष्टि नहीं हो पायी है। मानव अधिकार आयोगों एवं न्यायालयों द्वारा इस दिशा में दिशा–निर्देश एवं सुझाव भारत सरकार को समय–समय पर दिये गये हैं।

भारत में यातना का ऐतिहासिक परिवेश

भारत में यातना का प्रयोग वैदिक काल से ही अत्याचार और हिंसा के दृष्टांत पाये जाते हैं। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में इसका वर्णन देखने को मिलता है जैसे–

इसके विपरीत गुप्तकाल में कैदियों के विरूद्ध स्पष्ट रूप से तथ्यों को सबूत के द्वारा स्थापित न किए जाने की स्थिति में अग्नि परीक्षा को प्रयोग में लाया जाता था। जो कि एक आम बात थी "अग्नि परीक्षा" का चार प्रकार से प्रयोग में किया जाता था। मुगलों के शासन में किसी भी प्रकार की आपराधिक एवं नागरिक (सिविल) प्रक्रिया का अस्तित्व नहीं था। अतः स्वीकारोक्ति उगाही के लिये पुलिस द्वारा यातना का उपयोग में लेना आम बात थी एवं "यातना" का प्रचार व प्रसार चारों तरफ फैला हुआ था।

ब्रिटिश सरकार ने 1855 में मद्रास प्रेसीडेन्सी में यातना आयोग ने ये तथ्य पाया कि यातना एक प्रकार का दर्द है एवं अपराध को स्वीकार (स्वीकारोक्ति) जबरन की जाती है। यातना आयोग ने यह भी माना कि यातना पुलिस की यक संरचनात्मक समस्या है न कि असाधारण उदाहारण के रूप में कभी कभार होने वाली घटनायें।

प्रथम भारतीय पुलिस आयोग (1902–03) ने यह अवलोकन किया कि पुलिस सामान्यतः भ्रष्टाचार एवं स्वाकारोक्ति हेतु "यातना" द्वारा लोगों का उत्पीडन करती है। आयोग से अपनी सिफारिसों में पुलिस जांच की गुणवत्ता पर ध्यान किया एवं उपनिरीक्षक के पद का सृजन किया जो कि वर्तमान में इसी व्यवस्था द्वारा पुलिस विभाग का प्रशासन द्वारा संचालन किया जाता है। राष्ट्रीय पुलिस आयोग (1980) ने अपनी समग्र एवं व्यापक अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला कि रोजमर्रा के काम के दवाब एवं

पुलिस अधिकारियों द्वारा शीघ्र परिणाम प्राप्त करने बल का प्रयोग उद्देश्य हेतु यातना से जोडकर देखा गया।

वर्तमान स्वरूप– पिछले दो दशकों से मानव अधिकार आयोग ने बहुत मामलों में पुलिस यातना उत्पीड़न के मामलों में मानव अधिकारों के उल्लघंन के कारण क्षति के लिये पुलिस अधिकारियों को व्यक्तिगत एवं राज्य को प्रतिनिधियों को पीडित वर्ग के लिये क्षतिपूर्ति के लिये बाध्य कर मानव अधिकारों की रक्षा की है।

भारतीय न्यायपालिका ने डी0 के0 बसु बनाम पश्चिम बंगाल के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया गया कि यातना को संविधान में एवं अन्य दण्ड विधियों में परिभाषित नहीं किया गया है, "किसी मानव को एक अन्य मानव द्वारा दी जा रही यातना आवश्यक रूप से किसी बलवान द्वारा किसी कमजोर व्यक्ति को पीडा पहुंचाना (पहुंचाकर) कर अपनी इच्छा को अधिरोपित करना है।

आज "यातना" शब्द मानवीय सभ्यता के दूषित पक्ष का पर्यायवाची हो गया है। न्यायालय ने यातना शब्द को परिभाषित कराने का प्रयास भी किया,जैसे "यातना" आत्मा को पहुंचा एक ऐसा घाव है जो इतना दर्दनाक है जिसे लगभग आप स्पर्श कर सकते हैं। किन्तु यह ऐसा अदृश्य भी है जो किसी प्रकार से भर नहीं सकता। "यातना" एक ऐसी पीडा है जो अपनी छाती को दबोचती है बर्फ की ठण्डा, पत्थर की भारी, निद्रा की तरह पक्षाघात और नर्क की तरह अंधकारमय है। यातना वास्तव में एक विषाद, भय, रोष और नफरत है "यातना" मारने या नष्ट करने की ऐसी इच्छा है जिसमें आप भी सम्मलित हैं।

आरम्भ से ही केन्द्रीय सरकार ने यह दलील दी कि भारतीय दण्ड़ संहिता, 1960 के अधीन "यातना" एक दण्डनीय अपराध है (परोक्ष रूप से), क्योंकि स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया। अतः यातना के स्थान पर हर्ट एवं ग्रेवियस हर्ट (क्षति पहुंचाना, चोट करना, घायल करना) शामिल है।

"यातना" शब्द को देश के कानून में अस्पष्ट व्याख्या के चलते यह निश्चय किया गया कि इस बाबत एक विधान (कानून) अधिनियमित किया जाए और संयुक्त राष्ट्र की यातना अभिसमय के उपबन्धों को प्रभावी करने के लिये लोक सभा में यातना निवारण विधयेक (लाया गया), 6 मई 2010 को लोक सभा द्वारा इस विधेयक को पारित किया गया। राज्य सभा ने इस विधेयक को स्थाई समिति को निर्देशित किया गया। जिसने विधेयक में प्रस्तावित संशोधन करके संयुक्त राष्ट्र संघ की "यातना" अभिसमय की ओर अनुगामी बना दिया। दुर्भाग्यवश 15 वीं लोक सभा के विघटन के साथ यह विधेयक व्ययगत होगा।

वर्ष 2016 में सर्वोच्च न्यायालय में रिट सं0 738/2016 फाइल की गई। उच्चतम न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्त्ता ने यह दलील दी कि विदेशी राष्ट्रों से अपराधियों के प्रत्यर्पण में भारत को समस्याओं का सामना करना पड रहा है। क्योंकि हमारे देश में "यातना" को रोकने हेतु कोई विधि या कानून नहीं है। हमारे अपने राष्ट्रीय हित में ऐसी विधि आवश्यक है। याचिकाकर्त्ता सरकार को यह निर्देश करने की इच्छा व्यक्त की जिसके तहत कारागार सहवासियों को "यातना" क्रूरतापूर्ण अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार करने से निवारित करने के लिये अन्तरराष्ट्रीय अभिसमय के उपबन्धों और उचित मार्गदर्शन सिद्धान्तों के अनुसार एक विधिक ढ़ाचा तैयार करें।

विधि आयोग ने अपनी 273 वीं रिपोर्ट में भारत सरकार को (2017) जिसमें यातना निवारण विधेयक 2017 का प्रारूप तैयार करके सरकार को संसद में विधि बनाने हेतु संस्तुति की है।

पुनः प्रस्तावित विधेयक, 2017 के अनुसार धारा–3 में यह उपबन्ध है कि जो कोई ऐसे सेवक की सहमति से ...

1. जानबूझ कर किसी व्यक्ति को, या
2. स्वेच्छा से किसी व्यक्ति को
3. घोर क्षति पहुंचाता है, या
4. प्राण, अंग या स्वास्थ्य के लिये खतरा है। या ...
5. कष्टदायक या लंबी पीडा या मंत्रणा, चाहे शारीरिक या मानसिक हो, जो क्रूरतापूर्ण अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार से पारित की जाती है या ऐसे प्रयोजनों के लिये मृत्यु पारित करना जैसे पीडित व्यक्ति से पर व्यक्ति से पर व्यक्ति की जानकारी या कोई संस्वीकृत, किसी ऐसे कार्य के लिये दण्ड देना जो उसने या पर व्यक्ति ने पारित किया हो या संदेह हो कि उसने या उस व्यक्ति ने पारित किया है या पर व्यक्ति को विवश करना "यातना" का अपराध पारित करता है।

"यातना" निवारण विधेयक–ख में पीडितों,गवाहों एवं शिकायतकर्ताओं की सुरक्षा एवं संरक्षण हेतु प्रावधान किए गये है। **"यातना"** के पीड़ित व्यक्तियों की घोर, मानसिक कष्ट /पीडा एवं सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठिभूमि के आधार पर न्यायालय को यह विवेकाधार होगा कि वे पीडित वर्ग की चिकित्सा एवं पुर्नवास हेतु क्षतिपूर्ति की व्यवस्था का प्रबन्ध कानूनों के तहत करने का प्रयास करें।

पीडित वर्ग– यातना के सामान्यतः तीन प्रकार के पीडित वर्ग पाये जाते हैं जैसे प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीय पीडित वर्ग।

1. **प्राथमिक पीड़ित**– ऐसे व्यक्ति जो प्रत्यक्ष रूप से यातना के द्वारा अभिरक्षा में हिंसा के शिकार होते है। जैसे–चोटिल व्यक्ति, अभिरक्षा में मृत व्यक्ति एवं यौन प्रताडना की शिकार महिला ।

2. **द्वितीयक पीड़ित**– ऐसे व्यक्ति जो अप्रत्यक्ष रूप से यातना के द्वारा अभिरक्षा में हिंसा के शिकार होते है एवं प्राथमिक पीडित वर्ग पर निर्भर होते है। जैसे–विवाहित व्यक्ति की पत्नी, बच्चें, माता–पिता, भाई–बहन एवं रिस्तेदार इत्यादि।

3. **तृतीय पीड़ित**– ऐसे व्यक्तियों का समूह एवं समुदाय के लोग जो परोक्ष रूप से यातना से प्रभावित होते है। जैसे– पडोसी, समुदाय एवं समाज के जनमानस इत्यादि ।

क्षतिपूर्ति का अधिकार– यातना के पीडित वर्ग को क्षतिपूर्ति के अधिकार का समर्थन देश की सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के मूलभूत अधिकारों के उल्लंघन के सन्दर्भ में निम्नलिखित महत्वपूर्ण निर्णयों में किया गया।

1. चार्ल्स शोभराज दिल्ली प्रशासन(1979), एस0सी0सी0 392।
2. खतरी बनाम बिहार राज्य (1981), एस0सी0सी0 635।
3. नीलावती बहेरा बनाम उडीसा राज्य (1993), एस0सी0सी0 746।
4. डी0के0बासु बनाम पश्चिम बंगाल (1997), एस0सी0सी0 610।

उपर्युक्त वादों के अलावा, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने विगत दो दशकों से मानव अधिकारों के उल्लंघन के मामलों जिनमें यातना के मामले भी सम्मलित हैं राज्य की सरकारों से पीडितों को क्षतिपूर्ति की सिफारिश की गई। वर्ष 2015–2016 के नवीन आंकडों के अनुसार आयोग ने 332 मामलों में पीडितों/मृतकों के निकट सम्बन्धी को मौद्रिक राहत/मुआवजे के भुगतान के रूप में 6,05,6000.00 रू० सिफारिश की थी। उनमें से केवल 32 मामलों के अनुपालन हेतु रिर्पोट प्राप्त हुई जबकि 50,55000.00 रू० की राशि का भुगतान किया गया। वर्ष 2014–15 के अनुपालन रिर्पोट के सम्बन्ध में 138 मामले लम्बित थे। वर्ष 2008–09 से 2013–14 के दौरान 72 केसों में से 4 राज्यों ने आयोग के फैसले के खिलाफ उच्च न्यायालयों में चुनौती दी है। जिनमें जम्मू कश्मीर के 02 मामले उडीसा राज्य का 01 तथा केरल राज्य का 01 मामला सम्मलित है। उपर्युक्त आंकडों से यह स्पष्ट है कि आयोग द्वारा पीडितों को क्षतिपूर्ति की सिफारिशों का राज्य सरकारों द्वारा पूर्ण रूप से अनुपालन नहीं किया जा रहा है।

पुर्नवास के अधिकार की मान्यता

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने वर्ष 1996–1997 में यातना के पीड़ित राकेश

विज के मामले में वाराणसी जिले की पुलिस द्वारा पीड़ित को यातना दिये जाने का संज्ञान लेते हुए उ0प्र0 राज्य को जिम्मेदार ठहराया। तथा पीड़ित वर्ग को चिकित्सा सम्बन्धी उपचार पर होने वाले खर्चे एवं यात्रा व अन्य भत्ते जो कि पुर्नवास के लिये आवश्यक सेवाएं मानी गई का वहन राज्य सरकार द्वारा किए जाने का आदेश पारित किया (राकेश विज मामला सं0 12982/96–97)।

संस्थाओं द्वारा पीड़ितों के पुर्नवास हेतु सेवाएं

1. सलाह/परामर्श
2. कानूनी सहायता
3. चिकित्सीय सहायता
4. मनोचिकित्सक सलाह/सहायता
5. मानसिक (मनोवैज्ञानिक) सलाह/सहायता
6. बच्चों की शिक्षा
7. व्यवसायिक प्रशिक्षण (युवाओं को)
8. आर्थिक सहायता (बेरोजगार युवाओं को किराया/मानदेय)
9. दस्तावेज एवं वकालत (पीडित के क्षतिपूर्ति व पुर्नवास अधिकार)
10. रोजगार में मदद।

पीड़ितों के पुर्नवास एवं मानव अधिकार की संस्थाएं

1. तिब्बत यातना (टॉर्चर) कार्यक्रम, धर्मशाला (हि0प्र0)।
2. सुबोधया I पुर्नवास केन्द्र, नई दिल्ली।
3. मानवाधिकार जननिगरानी समिति, वाराणसी (उ0प्र0)।
4. यातना पीडित देखभाल केन्द्र, कलकत्ता (प0व0)
5. वैसवया महिला मण्डली, विजयवाड़ा (आ0प्र0)
6. पीपल्स वाच, मदूरई (तमिलनाडु)

1. तिब्बत यातना कार्यक्रम, धर्मशाला।

विगत कई वर्षो से तिब्बत के लोग चीन की सरकार द्वारा दमन/यातना के विरूद्ध अपनी स्वतन्त्रता एवं मानव अधिकार के लिये विश्व के विभिन्न देशों में शरणार्थी के रूप में शान्तिपूर्वक ढंग से संघर्षरत हैं। पूर्ण आजादी एवं

अधिकारों का मांग का यह सफर भारत में प्रयासरत है। लगभग 60 लाख तिब्बती शरणार्थी भारत में विभिन्न स्थानों खासकर पर्वतीय इलाकों में डेरा डाले हुए हैं। तिब्बत समुदाय के शरणार्थी लोगों द्वारा हिमाचल प्रदेश राज्य के धर्मशाला शहर को एक मिनी तिब्बत के रूप में बसाया है। माननीय श्री दलाई लामा के नेतृत्व में शरणार्थियों के द्वारा निर्वासित तिब्बत का मंत्री परिषद तथा तिब्बती जनप्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष आदि लोकातान्त्रिक संगठनों द्वारा तिब्बती प्रशासन का संचालन किया जाता है। केन्द्रीय तिब्बती प्रशासन के कुल 7 विभाग हैं जिनमें धर्म एवं संस्कृति विभाग, सुरक्षा विभाग, शिक्षा विभाग, वित्त विभाग, सुरक्षा विभाग एवं स्वास्थ्य विभाग प्रमुख हैं।

तिब्बत यातना कार्यक्रम स्वास्थ्य विभाग द्वारा चलाया जाता है। स्वास्थ्य विभाग द्वारा पुर्नवसन के कार्यक्रम हेतु 5 स्वास्थ केन्द्र, 7 अस्पताल, 2 क्लीनिक एवं 38 मोबाइल क्लीनिक 174 स्वास्थय कर्मचारी,व 68 प्रशासनिक कर्मचारी भारत तथा नेपाल देशों में (तिब्बत) शरणार्थियों के पुर्नवास में कार्यरत है।

तिब्बत यातना कार्यक्रम की पिछले एक दशक में निम्न उपलब्धियां हैं (2002–2013):–

1. 50,000 पचास हजार तिब्बत शरणार्थियों की स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी प्राप्त की जा चुकी है।
2. 487 शरणार्थियों को सामाजिक सहायता हेतु व्यापक पुर्नवास।
3. 400 शरणार्थियों को आार्थिक सहायता (मकान का किराया, यात्रा भत्ता व मासिक/दैनिक मानदेय) द्वारा पुर्नवास प्रक्रिया।
4. 21 स्वास्थ्यकर्मियों के पुर्नवास हेतु मानव संसाधन का विकास।

उपर्युक्त उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है तिब्बत यातना कार्यक्रम द्वारा समग्र (पूर्ण) एवं व्यापक पुर्नवास तिब्बत शरणार्थियों हेतु एक महत्वपूर्ण कदम है।

2. सुवोधया पुर्नवास केन्द्र,नई दिल्ली

सामाजिक अनुसंधान, कला एवं संस्कृति परिषद, दिल्ली को कुछ स्वैच्छिक लोगों ने समाज सेवा हेतु चिकित्सक एवं मनोचिकित्सक व्यावसायिक लोगों को संगठित कर एक टीम का रूप देकर मानव अधिकारों की रक्षा का बीड़ा उठाते हुए वर्ष–2000 में सुवोधया पुर्नवास केन्द्र की नींव रखी।

सुवोधया पुर्नवास केन्द्र खासकर "यातना" के पीड़ित वर्ग का पुर्नवास कर

समाज की मुख्य धारा में जोडकर एक तरह से नवीन जीवन जीने के लिये तैयार किया जाता है। पुर्नवास केन्द्र कई कारणों से महत्वपूर्ण है। पहला कारण यह है कि भारत जैसे विकासशील देश में अभी भी सरकार का रवैया "यातनापूर्ण" है हालांकि स्वतंत्रता के 70 वर्ष के बाद भी यह यातना का मुद्दा ज्वलनशील है। क्योंकि किसी प्रजातांत्रिक राज्य द्वारा मनमाने तरीके से जनता के विरूद्ध अधिकतम बल का प्रयोग नहीं किया जा सकता। यदि ऐसा होता है तो वह मानवधिकार का उल्लंघन माना जायेगा।

द्वितीय हमारे देश की सरकार अन्तरराष्ट्रीय विधि जैसे कि "यातना" को पूर्ण रूप से निषेध के लिये संयुक्त राष्ट्र की यातना सम्बन्धी अभिसमय पर सिर्फ 1997 में हस्ताक्षर किए लेकिन इसकी पुष्टि अभी तक न होने की दशा में "यातना" को एक अपराध घोषित नहीं किया जा सका। परिणामस्वरूप आये दिन सरकार व पुलिस द्वारा बल प्रयोग एवं "यातना" को एक यंत्र के रूप में अपराध नियन्त्रण एवं अपराध की जांच के लिये प्रयोग होता है विधि आयोग ने जल्द ही "यातना" विरोधी कानून लाने का प्रस्ताव "यातना" रोकथाम विधेयक 2017 की संस्तुति कर सरकार से की गई है।

स्पष्ट कानून के अभाव में सरकार द्वारा वित्तीय सहायता नहीं के बराबर है। सीमित संसाधनों में भी सुवोधया केन्द्र ने वर्ष 2014 पीडितों में पुर्नवास के लिये प्रयासरत रहकर समाज की मुख्य धारा में जोडने का काम किया है। केन्द्र द्वारा किया गया कार्य सराहनीय है क्योंकि पूरे देश में "यातना" पीड़ितों के पुनर्वास के लिए बहुत ही कम सामाजिक संगठन/स्वयंसेवी संस्थाएं लिप्त हैं। हाल के वर्षो में केन्द्र को मिलने वाली आर्थिक मदद में कमी आने के कारण संयुक्त राष्ट्र की मदद में कमी आने से केन्द्र के LALUZ द्वारा उपलब्ध वित्तीय मदद पर निर्भर रहना पडा जो कि घरेलू हिंसा न कि "यातना" के लिये धन/मदद देती है। इसलिये केन्द्र के द्वारा ऐसी महिलाएं जो घरेलू हिंसा में गिरकर उनके लिये पुर्नवास की योजना/परियोजना पर काम करना पड़ा जिससे यातना के पुर्नवास में बाधा झेलनी पडी।

3. मानवाधिकार जन निगरानी समिति, वाराणसी।

गरीब व वंचित वर्ग के लोगों में अशिक्षा व अज्ञानता के कारण मानव गरिमा व मानव अधिकारों का हनन होना निश्चित है। ऐसे कमजोर (सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक रूप से) लोगों के लिये न्याय मिल पाना असम्भव प्रतीत होता है इसके लिए एक माध्यम की जरूरत को उचित ठहराया गया जो गांव व दूर दराज के इलाकों में बसे लोगों तक न सिर्फ पहुंच बना सके एवं पीड़ित वर्ग की भागीदारी भी सुनिश्चित करके न्याय को सरल बना सके। इस कमी को कुछ कार्यकर्ताओं ने पूरा किया जिन्होंने

अपनी इच्छा शक्ति के बल पर जन–निगरानी समिति का प्लेटफार्म वर्ष 1996 में तैयार किया।

वाराणसी शहर के 45 गांवों को हिंसाविहीन आदर्श गांव का दर्जा दिया जा चुका है। आदर्श गांव एक ऐसा स्थान है जो कि भय एवं हिंसा से मुक्ति व पीड़ित व्यक्ति की मानवीय गरिमा, आत्म सम्मान, भागीदारी एवं सामुदायिक सहयोग व सामाजिक एकजुटता की सकारात्मक सोच पर आधारित है।

4. यातना पीड़ित देखभाल केन्द्र, कोलकाता

"यातना" पीड़ितों के पुनर्वास की अन्तरराष्ट्रीय परिषद डेनमार्क (आई0सी0आर0सी0आर0ओ0, डेनमार्क) ने भारतीय चिकित्सा संघ (आई0एम0ए0) को इस अनुरोध के साथ प्रस्ताव भेजा जिसमें भारत में "यातना" के पीड़ित की देखभाल के लिये एक सामाजिक संस्था के गठन का विचार रखा गया। व्यवसायिक चिकित्सक, मनोचिकित्सक व स्वास्थ्य कर्मी द्वारा सन्1998 में "यातना" पीड़ित देखभाल केन्द्र का आरम्भ हुआ। अपने उत्थान से विकास तक के वर्षो में कई प्रकार के अनुभवों से गुजरना पड़ा जिसमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

1. वित्तीय संकट (अन्तरराष्ट्रीय दानदाताओं द्वारा अनियमितता)
2. स्थानीय लोगों/ समूह द्वारा वैकल्पिक आर्थिक स्वास्थ्य

   पी0के0चौधरी मैमोरियल फण्ड स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य शिक्षा हेतु।

   प्रो0 ए0चौधरी मैमोरियल फण्ड घरेलू हिंसा के पीड़ित के फण्ड का प्रयोग करना।
3. सरकार एवं राज्य मानवाधिकार आयोग द्वारा "यातना" के पीड़ितों के पुर्नवास को असहयोग एवं अमान्य कर (सरकार के विरूद्ध किया कलाप मानना)
4. केन्द्र द्वारा मजबूरी में घरेलू हिंसा के लिये कार्य करना "यातना" के पुर्नवास में बाधा उत्पन्न होना इत्यादि शामिल है। वर्ष 2014–15 की उपलब्धियॉं निम्नलिखित हैं–

1.	सदस्य संख्या	86
2.	आजीवन सदस्य	78
3.	अवैतनिक सदस्य	08
4.	मरीज (पीडित)	52
5.	उपचार केन्द्र	01

6.	शिक्षा द्वारा पुर्नवास	02
7.	जागरुकता कार्यक्रम	11
8.	कुल मीटिंग	02
9.	जीवकी मीटिंग	04
10.	उपकेन्द्र	01
11.	भागीदार संस्थाएं	05
12.	वैकल्पिक वित्तीय	02

सहायता

कुल 11 जागरूकता यातना वर्ष 2014–15 में आयोजित किए गये। इन कार्यक्रमों के भागीदार स्कूल के विद्यार्थी, सरकारी अधिकारी एवं आम आदमी को सम्मलित किया गया। कुल 52 पुर्नवास कार्यक्रम में यातना के पीडितों को उपचार (प्राथमिक,द्वितीय एवं तृतीय) को सम्मिलित किया गया जैसे पीड़ित व्यक्ति,परिवार एवं समुदाय के लोग। 2 मामलों में बाल अपराधी जेल बाल कारागृह में निरूद्ध एवं पश्चिमी बंगाल के 24 परगना भाव नगर व चाल ग्रामीण आंचल से सम्बन्ध रखते हैं।" शिक्षा द्वारा पुर्नवास को क्रियान्वित किया गया।

5. वैसवया महिला मण्डली, विजयवाड़ा–

महात्मा गांधी की विचारधारा से प्रेरित होकर समाज सेवी महिलाओं के स्वैच्छिक समूह ने समाज की सेवा को अपने जीवन का ध्येय बनाया। लगभग 47 वर्षों पहले एक सार्वजनिक पुस्तकालय के द्वारा प्रारम्भ किया गया प्रयास न केवल पढ़ने–लिखने के माध्यम बल्कि जीविका अर्जित करने के लिये जैसे–कढाई–बुनाई, (टेलरिंग),टोकरी बनाना व खान पान की चीजों को अध्ययन के साथ जोड़ दिया गया। ऐसी महिलाओं के अथक प्रयास को कस्तूरवा महिला मण्डली नाम रखा गया। वाद के वर्षो में महिला केन्द्रित योजनाएं/परियोजनाएं एवं कार्यक्रम चलाये गये। महिला सशक्तीकरण के विभिन्न आयामों को विकसित किया गया। जिनमें से महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा व अपराध शामिल है। घरेलू महिलाओं उनके प्रति व परिवार प्रताडना/यातना शामिल किया गया एवं उनके (पीडित महिला) के पुर्नवास हेतु सामुदायिक एवं पारिवारिक परिस्थितयों को अनुकूल वातावरण में पुनः जीवन को जीने लायक बनाया जा सका। महिलाओं के अलावा बच्चों के अधिकार, दलित अधिकार (जनजाति के लोग विशेष रूप से चिह्नित) किए गये। विजयवाड़ा शहर के आसपास के गांवों में महिलाओं को प्रेरित कर उन्हें सक्रिय कार्यकर्ता बनाकर मानवाधिकारों के आन्दोलन में प्रमुख भागीदारी का

स्तम्भ तैयार किया गया जिन्हे (सर्पोट समूह) सहायता ग्रुप या महिला मण्डली का नाम देकर पूरी यात्रा को एक नए नाम (वैनर) के अधीन लाया गया जिसे हम आज वैसवया महिला मण्डली के नाम से जानते है।

1. **सड़क किनारे बच्चों के अधिकार व पुर्नवास** – सड़क के किनारे रहकर जीवन–यापन करने वाले बच्चे सामान्यतः अनाथ होते हैं। ऐसे बच्चों को पुलिस बल द्वारा संवेदना के अभाव के चलते कई बार उत्पीड़त करके पुलिस लॉकअप (हिरासत/अभिरक्षा) में "यातना" का शिकार होना पड़ता है। ऐसे बच्चों को महिला मण्डली द्वारा सरकार की गिरफ्त से निकालकर शिक्षा, स्वास्थ्य एवं रोजगार के अवसर/प्रशिक्षण दिलाकर जीविकोपार्जन द्वारा सशक्त एवं जिम्मेदार नागरिक बनने में सहायता/मदद की जाती है।

2. **जन यातना से पीडित जनजातीय समुदाय** – आन्ध्र प्रदेश राज्य के गुंटूर जिले के पलावडू गॉव में जनजातीय समुदाय के लोगों के खिलाफ पुलिसतंत्र के पूर्वाग्रह के कारण आपराधीकरण प्रक्रिया को समझ विकसित करने के उद्देश्य से विश्व या वेसलवा महिला मण्डली (सामाजिक संस्था) ने एक शोध/अनुसंधान (अनुसंधान) के अध्ययन में यह पाया कि यातना के जनजीवन पर पडने वाले प्रभाव (सामाजिक,आर्थिक एवं राजनैतिक) व भविष्य में पुर्नवास की योजना तैयार करना सम्मलित है।

3. **पीपुल्स वॉच, मदुरई** – भारत वर्ष में मानव अधिकारों के आन्दोलन के इतिहास में पीपुल्स वॉच का स्थान अग्रणी है। यह उन चुनिन्दा सामाजिक संगठनों में से एक है जिन्होंने जमीनी/स्थानीय स्तर मानव अधिकार के संरक्षक का ढ़ाचा तैयार किया। इसलिए एमनेस्टी इण्टरनेशनल संस्था द्वारा मिस्टर हेलरी (संस्थापक) को मानव अधिकार अन्तरराष्ट्रीय पुरस्कार से वर्ष 2016 में सम्मानित किया गया था। हाल के वर्षों में पीपुल्स वॉच ने जो उपलब्धियां हासिल की है वे निम्नलिखित हैं–

1. स्कूली बच्चों में संवेदनशीलता एवं मानवीय गरिमा के मुद्दों को सरल व सजग भाषा एवं पाठय–पुस्तक के द्वारा समझाया गया। शिक्षा, स्वास्थ्य,पर्यावरण, स्वच्छता समानता,सामाजिक एवं राजनैतिक संस्थाएं एवं मानव अधिकार शिक्षा आदि सम्मलित किए गए।

2. मानव अधिकार उच्च शिक्षा में मानव अधिकार के शोध कार्यक्रम–लिंग, जाति, धर्म, संस्कृति, बहुलतावाद, बहुसंस्कृतिवाद, भौगोलिक कारण, बहुराष्ट्रीय कम्पनी, उदासीकरण में मानव अधिकारों पर पडने वाले प्रभाव को शोध पुनरुत्थान से जोडा गया। मानव अधिकार की शिक्षा के साथ–साथ शिक्षकगण को भी

मानव अधिकार शिक्षा के लिये दिशा निर्देश में सम्मलित किया है। जिसके द्वारा शिक्षण भी पहले मानवाधिकार के प्रति संवेदनशीलता को विकसित फिर प्रचार–प्रसार मानवीय एवं मूल्यों के प्रति विद्यार्थियों से जागरूकता लाने का काम किया जाये।

3. वर्ष 2008 में यातना–निरोधक परियोजना को यूरोपीय संघ द्वारा अनुदान दिया गया।

4. इस परियोजना के अन्तर्गत 9 राज्य 47 जिले चुने गये एवं मानव अधिकार के बहुत से कार्यकर्ताओं जैसे सरकारी संगठनों द्वारा साक्ष्य इकठ्ठा करने में मदद की गई व निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले गये।

(अ) यातना के पीडितों में भय/डर व्याप्त होने के कारण न्याय में देरी।

(ब) न्याय की संस्थाओं की अंपगता का होना व न्याय में देरी।

(स) विधि के शासन में भी यातनाकर्ता को सजा न दे पाना शामिल है।

मानवाधिकार संगठन की उपलब्धियां

1. शरणार्थियों के मानव अधिकार का संरक्षण।
2. यातना के पीडित वर्ग के पुर्नवास हेतु मानव संसाधन को प्रशिक्षण।
3. यातना जैसे गम्भीर विषय को मानवीय दृष्टिकोण के द्वारा समाधान।
4. यातना के विरूद्ध अन्तरराष्ट्रीय विधि (यू0एन0यातना अभिसमय) की पुष्टि का आधार।
5. मानव अधिकार के संरक्षण एवं सवर्द्धन हेतु नई तकनीक विकसित करना।
6. हिंसा व अपराध मुक्त आदर्श गांव का निर्माण कार्य।
7. मानव अधिकार जागरुकता कार्यक्रम।
8. शिक्षा/रोजगार द्वारा पीडितों का पुनर्वास।
9. सामाजिक कार्यकर्ताओं को स्थानीय स्तर पर तैयार करना ।
10. यातना के विरूद्ध आन्दोलन में मानव अधिकार शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में संवेदनशीलता का विकास करना।

चुनौतियां

भारत के गैर सरकारी संगठन/सामाजिक एवं मानव अधिकार की संस्थाओं द्वारा चलाये जा रहे पुनर्वास के अधिकार के संघर्ष में निम्नलिखित चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।—

आर्थिक संकट— हाल के वर्षो में विश्व आर्थिक मन्दी के कारण अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मिलने वाली आर्थिक मदद में कमी आती जा रही है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रम विशेषतः यातना पाड़ितों के लिये गैर सरकारी संगठनों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता में अनियमितता का होना। दूसरी तरफ यू0एस0 एड फण्ड में भी कमी आना, परिणामस्वरूप विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों में विकास कार्यक्रम के अधीन मानवाधिकार के कार्यक्रम बुरी तरह प्रभावित हुए हैं।

वैकल्पिक स्रोत पर निर्भरता— आर्थिक अड़चनों के कारण यातना के विरूद्ध मानवाधिकार का आन्दोलन धीमा पड़ गया है। कुछ संगठनों ने इस समस्या से निपटने के लिये यातना से हट कर अन्य सामाजिक मुद्दों जैसे घरेलू हिंसा पर लाचार कार्य किया साथ ही स्थानीय लोगों/ संस्था के सदस्यों के द्वारा आर्थिक मदद से यातना का पुनर्वास हेतु कार्य आंशिक रूप से बरकरार रखे हुए हैं।

यातना के विरूद्ध कानून न होना — भारत जैसे विकास की ओर अग्रसर देश में यातना के विरूद्ध कोई भी स्पष्ट नीति या कानून का न होना भी एक बड़ी समस्या है। सरकार की तरफ से कोई आर्थिक मदद/सहायता गैर सरकारी संगठनों को नहीं दी जा रही है। ऐसी स्थिति में मानवाधिकार के विषय को लेकर यातना की रोकथाम एवं पीड़ितों के पुर्नवास का कार्य बहुत ही कठिन हो गया है एवं कम संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है।

असहयोग की भावना— सरकार यातना के कार्य को सरकार विरोधी कार्य मानती है। राज्य मानवाधिकारों द्वारा सामाजिक संस्थाओं/स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा यातना के पीड़ितों के पुनर्वास का कार्य को मान्यता नहीं दी जा रही है एवं असहयोग की भावना के चलते मानवाधिकार संगठनो को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

कार्यकर्ताओं में डर/भय की स्थिति— वर्तमान सरकार द्वारा कई गैर सरकारी संगठनों के विरूद्ध कानूनी कार्रवाई किए जाने से भय या डर की स्थिति व्याप्त है, जबकि पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व के उद्देश्य हेतु यह जरूरी भी है। हालांकि सामाजिक संगठनों द्वारा यह माना जा रहा है कि सरकार द्वारा उनके विरूद्ध योजना

बना सकती है क्योंकि गैर सरकारी संगठन अपराधियों के मानवाधिकार की वकालत करते हैं एवं अपराधियों को शरण देते हैं। जबकि मानवाधिकार संगठनों का मानना है कि न्यायालय द्वारा जब तक सजा न दी जाए तब तक प्रत्येक व्यक्ति को सारे मानवाधिकार एक प्रजातांत्रिक देश में प्राप्त हैं।

प्रसांगिकता

पिछले कई वर्षो से देश में मानवाधिकार की जागरूकता एवं जन मानस में प्रचार व प्रसार का कार्य मानवाधिकार आयोगों द्वारा निःसंदेह किया जा रहा है। इसी क्रम में जमीनी स्तर पर मानवाधिकार के संरक्षण एवं संवर्द्धन के कार्य में गैर सरकारी संगठनों/सामाजिक संगठनों ने भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस प्रकार स्वैच्छिक संगठनों ने एक महत्वपूर्ण कड़ी जोड़कर सरकार के साथ एक सामूहिक भागीदारी विकसित कर मानवाधिकार का विकास किया है। वर्तमान में कुछ चुनिंदा मानवाधिकार संगठनों ने यातना जैसे ज्वलन्त मुद्दे उठा कर इसके निवारण हेतु एवं पीड़ितों के पुनर्वास के कार्य को बड़ी चुनौती के साथ प्रयासरत किया है। दुर्भाग्यवश इन संगठनों के स्वैच्छिक कार्य को पूर्ण रूप से मान्यता नहीं मिल पा रही है। आर्थिक संकट एवं असहयोग की भावना के चलते यातना के विरूद्ध आन्दोलन का कार्य बहुत दिनों तक नहीं चल सकता, लेकिन यदि इस समाधान हेतु निम्न सुझावों को गंभीरता के साथ विचार कर क्रियान्वित किया जाये तब निश्चय ही यातना मुक्ति युवा भारत का निर्माण किया जा सकता है।

सुझाव

यातना के विरूद्ध मानवाधिकार संरक्षक एवं यातना पीडितों में पुर्नवास के अधिकार को मान्यता प्रदान करने में मानवाधिकार स्वयंसेवी संस्थाओं/सामाजिक संगठनों की भूमिका महत्वपूर्ण सराहनीय निम्नलिखित बिन्दु नीति बनाने एवं योजना/परियोजना में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

1. यातना निरोधक विधेयक–2017 को संसद द्वारा बिना विलम्ब के पारित करना चाहिए। (विधि आयोग भारत सरकार द्वारा तैयार किया गया।)
2. भारत सरकार द्वारा अविलंब संयुक्त राष्ट्र की यातना अभिसमय (1984) जिस पर भारत ने 1997 में हस्ताक्षर किए है की पुष्टि करके यातना को अपराध घोषित होना चाहिए।

3. वैज्ञानिक पद्धति से अपराधों की जांच करना चाहिए।

4. सरकार द्वारा गैर सामाजिक संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान कर प्रोत्साहन देना चाहिए।

5. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 357 ए में संशोधन कर यातना पीड़ितों को भी पीड़ित क्षतिपूर्ति योजना के अर्न्तगत सम्मिलित करना चाहिये।

6. यातना मुक्ति गांव/शहर को चिह्नित कर पुरस्कृत करना चाहिए।

संदर्भ

1. यातना तथा अन्य क्रूर अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दण्ड के विरूद्ध अभिसमय। (1984)
2. घोष, एस0के0 एवं रूस्तमजी, के0एफ0 इन्साइक्लोपीडिया ऑफ पुलिस एन इण्डिया, आशीष पब्लिकेशन नई दिल्ली। (1994)
3. तिब्बत यातना कार्यक्रम रिर्पोट, तिब्बती केन्द्रीय प्रशासन धर्मशाला (2002 से 2013)।
4. सामाजिक अनुसंधान कला एवं सांस्कृतिक परिषद नई दिल्ली वार्षिक रिर्पोट। (2014 व 2015)
5. मानवाधिकार कार्यकर्ता मार्गदर्शिका, मानवाधिकार जन निगरानी समिति वाराणसी (2012)
6. यातना पीड़ितों की देखभाल का केन्द्र कलकत्ता। (वार्षिक रिर्पोट 2014–15)
7. 40 वर्षो का वैसवया महिला मण्डल, विजयबाड़ा। (www.vasavya.org).
8. 20 वर्षो से मानवाधिकार का आन्दोलन, पीपल्स वाच, मदुरई। (www.peoplewatch.org).
9. विधि आयोग भारत सरकार 273वीं रिर्पोट (2017)। (www.lawcommissionofindia.nic.in).
10. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग वार्षिक रिर्पोट। (www.nhrc.nic.in).

****

हमें मानवता को उन नैतिक जड़ों तक वापस ले जाना चाहिए जहाँ से अनुशासन और स्वतंत्रता दोनों का उद्गम हो

—सर्वपल्ली राधाकृष्णन

भाषा, न्याय और मानव अधिकार

शीलेन्द्र कुमार*

बीज शब्द : मानवाधिकार, मातृभाषा, विश्व संस्कृति, न्याय भाषा

सारांश

मानवाधिकार के व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रत्येक व्यक्ति के लिए मातृभाषा की अभिव्यक्ति का अधिकार अनिवार्य है। विश्व संस्कृति में मौजूद कई भाषाओं यथा स्पेनिश, फ्रेंच, जर्मन, चीनी और जापानी, इतावली भाषाओं के उदाहरण के माध्यम से मातृभाषा के प्रति उनके आग्रह को भली भांति समझा जा सकता है। वैश्विक परिदृश्य में शिक्षा तथा न्याय की भाषा के क्षेत्र में अंग्रेजी का बढता हुआ वर्चस्व चिंता का विषय है जिसके कारण अनुवाद के संकट पैदा हो रहे हैं। उच्च शिक्षा में हिंदी के महत्व को रेखांकित किया जाना, विशेष रूप से न्यायिक भाषा की प्रणाली में अत्यंत आवश्यक है। हिंदी एवं क्षेत्रीय भाषाओं में कानून बनाना तथा उसे पारित करना मानवाधिकारों के दृष्टिकोण से बेहद प्रासंगिक है।

किसी समाज को राष्ट्र बनने के लिए राष्ट्रभाषा की भी आवश्यकता होती है। मानवाधिकार के परिप्रेक्ष्य में इन्सान होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मातृभाषा में अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। किसी भी समाज में माँ और मातृभाषा एक दूसरे से जुड़े होते हैं क्योंकि बच्चे का पहला शाब्दिक ज्ञान अपनी मॉ के द्वारा मातृभाषा में ही दिया जाता है। इन्हीं कारणों से कोई भी बच्चा अपने इर्द–गिर्द के समाज को मातृभाषा के जरिये ही समझता और उसी के द्वारा अपने अनुभवों को प्रकट करता है। यही कारण है कि कोई भी समाज अपनी मातृभाषा में समझकर और प्रकट कर विश्व संस्कृति में अपना योगदान देते हैं। इन्सान होने के लिए सबसे पहला कदम यही है कि वह सोच और समझ सके और अपने को अभिव्यक्त कर सके। भाषा किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता को समाप्त करने के लिए सबसे बड़ा अस्त्र होता है। यदि किसी समाज की कोई भाषा और साहित्य नहीं है तो वह समाज पर थोपी गयी भाषा के अलावा कुछ भी न सोच सकता है और न व्यक्त कर सकता है। धीर–धीरे स्वतंत्र रूप से

*अधिवक्ता, इलाहाबाद उच्च न्यायालय, इलाहाबाद

वह अपने को अक्षम पाता है और सबसे दुख की बात है कि वह अपनी इस बीमारी को समझ भी नहीं पाता है। इस कारण वह समाज हीन भावना से ग्रस्त हो जाता है और सदैव के लिए दोयम दर्जे का बन कर रह जाता है।

मानवाधिकार के लिहाज से मातृभाषा की जगह वही है जो कानून के क्षेत्र में स्वतंत्रता की है। जैसे स्वतंत्रता के लिए सभी कानून उसमें बाधा पहुचाने लायक मानकर चुनौती लायक होते हैं उसी प्रकार किसी भी इन्सान को अपनी मातृभाषा में अभिव्यक्त करने का अधिकार भी जन्म सिद्ध है। यह भाषा उसको दूध के साथ अपनी माँ से स्वतः मिल जाती है। बच्चे की समझ और अभिव्यक्ति स्पष्टतः अपनी मातृभाषा में ही होती है। संभवतः इसी कारण किसी राष्ट्र की अनिवार्य शर्तो में राष्ट्र–भाषा एक प्रधान अंग होता है जोकि अधिकतर मातृभाषा ही होती है। यह सही है कि ब्रिटेन के अलावा अंग्रेजी भाषा को राष्ट्र–भाषा मानने वाले अन्य राष्ट्र जैसे कि संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड है परन्तु आंग्ल भाषी इन देशों को अलग राष्ट्र माना भी नहीं जा सकता क्योंकि मूलतः यह आपस में नालबद्ध जुड़े हैं। इसके विपरित फ्रांस, स्पेन, जर्मनी, चीन और जापान अपनी मातृभाषाओं के बल पर न केवल अंग्रेजी को चुनौती ही दे रहें है वरन् ज्ञान के क्षेत्र में इन भाषाओं के प्रतिष्ठित ग्रन्थों के अनुवाद अंग्रेजी विश्वविद्यालयों में करवाये जा रहे हैं जिसके लिए विश्वविद्यालयों में पूर्ण रूप से अनुवाद के अलग विभाग हैं जहां पर शिक्षक और विद्यार्थी जीवनपर्यन्त इन भाषाओं की गूढ़ता समझकर अनुवाद करते रहते है। वस्तुतः आज की दुनिया में ये राष्ट्र अग्रणी देशों में माने जाते हैं।

आज के समय में मूलरूप से अंग्रेजी के अलावा स्पेनिश, फ्रेन्च, जर्मन, चीनी और जापानी भाषाएं विश्व संस्कृति में अपना योगदान दे रहीं हैं। कुछ दिनों पहले तक इटली में शिक्षा–दीक्षा और संस्कृति लैटिन में होती थी, परन्तु वहाँ के विद्वानों ने यह तय किया कि लैटिन में लिखने से उनका साहित्य और ज्ञान समाज के मात्र ऊपरी तबके तक ही पहुँच पाता है। अतः उन्होने तय किया कि भविष्य में उनके द्वारा लैटिन में न लिखकर इतावली में लिखा जायेगा। इस कारण पिछले 50 वर्षों के बाद आज इतावली भाषा किसी भी यूरोपीय भाषा के बराबर हो गयी है। दूसरा उदाहरण जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान हैबरमास का है। उन्होने अपनी ख्याति–प्राप्त पुस्तक 'बिटविन फैक्टस एण्ड नार्म्स' के अंग्रेजी संस्करण के प्रारम्भ में यह बात बतायी कि उपरोक्त पुस्तक के अनुवाद को उन्होने देख लिया और आवश्यकता अनुसार कुछ जगहों पर अंग्रेजी संस्करण में कुछ नया भी लिखा है जिससे कि उनकी बात सम्पूर्ण रूप से समझी जा सके। इस बात से यह प्रकट होता है कि हैबरमास यदि चाहते तो अपनी पुस्तक को मूल रूप में अंग्रेजी में लिख सकते थे परन्तु उन्होने ने अपनी पुस्तक मूलरूप से अपनी

भाषा जर्मन में लिखी जिसका अनुवाद कई वर्षों बाद जब किया गया तो उस अनुवाद को संशोधित करने में उन्होने पूरा योगदान दिया। इसी प्रकार चीनी और जापानी भाषा में आज के विज्ञान और तकनीकी के सारे ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं। कोई भी भाषा तभी विकसित होती है जब उसमें सम्प्रेषण शुरू किया जाता है। हिन्दी के संबंध में अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि हिन्दी में विज्ञान और प्रौद्योगिकी में मूल पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं। अतः इन परिस्थितियों में मजबूरी में शिक्षा अंग्रेजी में ही देनी पड़ती है परन्तु उसका दोषी कौन है? यह प्रश्न विचारणीय है।

वस्तुतः राष्ट्रभाषा यदि मातृभाषा नहीं है तो ऐसा समाज सदैव हीन भावना से ग्रस्त और सिर्फ अनुवादक समाज बन कर ही रह जाता है। सन् 1938 में गॉधी जी ने इस बात को दर्शाया था कि ''हम यह सोचकर चलते हैं कि कोई बोस जैसा बगैर अंग्रेजी ज्ञान के नहीं बन सकता। मेरे लिए इससे बढ़कर और कोई अंधविश्वास नहीं होगा। कोई जापानी इतना कमजोर और असहाय नहीं दिखता जितना कि हम हैं''। उनके अनुसार ''शिक्षा माध्यम की भाषा तुरन्त और किसी भी कीमत पर बदली जानी चाहिए और क्षेत्रीय भाषाओं को उनका सही अधिकार मिलना चाहिये। इसके लिए आवश्यकता पड़ने पर कुछ दिनों के लिए मैं अव्यवस्था कबूल करूंगा बजाय इसके कि इस तरह के आपराधिक कृत्य प्रतिदिन के लिहाज से चलते रहें'' (हरिजन, 09.07.1938 पेज 177–178)[1] । उल्लेखनीय है कि मैकाले द्वारा अंग्रेजी शिक्षा लागू करने के समय स्पष्ट रूप से यह मत प्रकट किया गया था कि कम्पनी राज को ऐसे विचौलिये हिन्दुस्तानी चाहिए जोकि देखने में हिन्दुस्तानी लगें परन्तु जिनका दिल और दिमाग अंग्रेज हो। लगभग 200 वर्षों के बाद ऐसा स्पष्ट होता है कि मैकाले का यह प्रयोग हिन्दुस्तान में पूर्णरूप से सफल है। दुखः की बात यह है कि इस मत के सापेक्ष भारतीय संविधान में भी प्रावधान है जिससे कि न केवल अंग्रेजी की स्थिति बनी रहेगी बल्कि इसको विस्थापित करने के प्रयासों की सफलता की कोई आशा नहीं है। गांधी जी के अनुसार भारतीय मानस पूर्णरूप से बगैर हिन्दी के ज्ञान के सफल हो सकता है (यंग इण्डिया, 2 फरवरी, 1921 पृ. 34)[2]। अंग्रेजी भाषा के जरिये अंग्रेजी प्रशिक्षित भारतीय नपुंसक हो गये हैं और इस भाषा के कारण भारतीय छात्रों के दिमाग पर व्यर्थ दबाव डाला जा रहा है। भारतीय केवल पिछलग्गू बनकर रह गये हैं। इसी के साथ गांधी इस बात को भी जोर देकर कहते थे कि कोई देश राष्ट्र नहीं बन सकता यदि वह केवल अनुवादक पैदा करता है (यंग इण्डिया, 27 अप्रैल, 1921 पृ 130)[3]

अंग्रेजी के विदेशी भाषा होने के कारण उसका सबसे अधिक प्रभाव शिक्षा और न्याय के क्षेत्र में ही पड़ता है। पूरी तरह शासकीय भाषा और उच्च शिक्षा के माध्यम की भाषा होने के बावजूद अंग्रेजी प्राथमिकता के कारण भारत दूसरे या तीसरे दर्जे के राष्ट्रों में गिना जाता है। आजादी के लगभग 70 वर्षों बाद भी भारत देश में शिक्षा के

किसी क्षेत्र या विषय में उत्कृष्ट मूल पुस्तक हिन्दी में नहीं लिखी जा सकी जिसका अनुवाद विश्व की अन्य भाषाओं में किया गया हो। इस स्थिति का दोषी मात्र राजनैतिक प्रशासनिक तबका ही नहीं है। उससे ज्यादा दोषी विश्वविद्यालयों के शिक्षकगण हैं जो यह स्वीकार करते हैं कि ऑग्ल राष्ट्रों में निर्मित ज्ञान को समझ लेना और समझा देना ही शिक्षा का उद्देश्य है। दुखः की बात तो यह है कि उच्च स्तरीय पुस्तकों के अनुवाद भी उपलब्ध नहीं है। सबसे बड़ा विरोधाभास तो यह है कि हमारे देश में प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा को तरजीह दी गयी है परन्तु उच्च स्तरीय कक्षाओं के लिए अंग्रेजी की अत्यधिक महत्ता/आवश्यकता बतायी जाती है। ऐसा छात्र कक्षा 12 तक हिन्दी या अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में ज्ञान अर्जित करके आता है। उससे यह मानकर चलना कि वह अगले पल से अंग्रेजी में सिद्धहस्त हो जायेगा नितान्त हास्यास्पद है परन्तु आज के समय में इसी स्थिति के कारण लगभग 90 प्रतिशत छात्र उच्च शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। उच्च शिक्षा मात्र कान्वेंट में पढे हुए अंग्रेजी छात्र छात्राओं के लिए ही रह जाती है।

न्याय के क्षेत्र में दशा और विकट है क्योंकि कोई व्यक्ति अपनी समस्या के लिए जब अदालत जाता है तो अदालत की भाषा अंग्रेजी होने के कारण उसकी भाषा को स्वयं समझने में परेशानी होती है। मानवाधिकार के अन्तर्गत अंग्रेजी में कानून बनाना और न्याय देना दोनों ही मानवाधिकार का स्पष्ट रूप से उल्लंघन है। जिस वकील के पास वह जाता है उसकी समझ में जितनी अंग्रेजी आती है उसी के अनुसार वह उस समस्या का निदान ढूंढता है। उल्लेखनीय है कि उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय की भाषा अंग्रेजी और समस्त कानून अंग्रेजी में ही बनाये गये हैं। अतः हिन्दी या अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद का तो कोई औचित्य नहीं रह जाता हैं क्योंकि संविधान में दिये गये प्रावधानों के अनुसार प्रमाणित कानून अंग्रेजी भाषा के अन्तर्गत अनुवाद को ही माना जाएगा।

भारतीय संविधान में भाषा संबंधी प्रावधान अनुच्छेद 343 से 348 में दिये गये हैं। भारतीय संविधान सभा में संविधान बनाते समय उलझन भरे प्रकरणों में भाषा संबंधी प्रकरण भी था। संविधान सभा में पहले यह प्रस्ताव किया गया था कि संस्कृत को शासकीय भाषा का दर्जा दिया जाय। भारत के प्रथम प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू भी संस्कृत के महत्व को मानते थे और संभवतः इन्हीं कारणों से 8वीं अनुसूची में संस्कृत को रखा गया है। इस सूची के तहत दी गयी भाषाओं को संविधान के द्वारा संरक्षित भाषाओं का दर्जा दिया गया है। (''बैक टु संस्कृत''– सुभाष कश्यप, द हिन्दू दिनांक–11.01.2000 पेज 21)[4]। अनुच्छेद 351 के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को यह निर्देश दिया गया है कि यह उसका दायित्व है कि वह हिन्दी को आगे बढ़ाने का प्रयास करें ताकि यह भारत की समग्र संस्कृति को उजागर कर सके। इस संदर्भ में हिन्दी में आठवीं अनुसूची

में दी गयी भाषाओं के शब्दों को आमसात कर सकते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा भी संस्कृत को भारतीय संस्कृति को सहेजने के लिए आवश्यक माना गया है (संतोष कुमार बनाम सेक्रेट्री मिनिस्ट्री आफ एच0आर0डी0, (1994) 6 एस0सी0सी0 पेज 579)[5]। उल्लेखनीय है कि संस्कृत और हिन्दी को आगे बढ़ाने के कारण दक्षिण भारत में 1960 के दशक में जबरदस्त विरोध हुआ। इस विरोध के चलते तमिलनाडु की सरकार ने एक पेन्शन स्कीम बनायी जिसमें उन लोगों को पेन्शन का प्रावधान था जिन्होने हिन्दी विरोधी आन्दोलनों में भाग लिया था। इस पेन्शन स्कीम को न्यायालय में चुनौती दी गयी। सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकरण में यह पारित किया कि इस प्रकार की पेन्शन स्कीम राष्ट्र विरोधी है और इन्हें लागू नहीं किया जा सकता (आर0आर0 दलवई बनाम स्टेट आफ तमिलनाडु, ए0आई0आर0 1976 एस0सी0 पेज 1559)[6]

उच्च शिक्षा और हिन्दी

भाषा मूलरूप से शिक्षा और अदालतों में आमजन को प्रभावित करती है। प्राथमिक और उच्च स्तरीय कक्षाओं में शिक्षा का माध्यम क्या हो यह प्रश्न प्रारम्भ से विचारणीय रहा है। प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में हो इस बात को भारतीय अदालतों द्वारा स्वीकार कर लिया गया है परन्तु उच्च शिक्षा के मामले में मातृभाषा में पढ़ाई करने पर कई प्रश्न उठते हैं। हालांकि गांधी जी के मत में उच्च शिक्षा भी मातृभाषा में दी जानी चाहिए परन्तु अदालतों द्वारा कभी इस मत को नहीं माना गया और केन्द्र सरकार के द्वारा भी इस मत को लागू नहीं किया गया। आजादी के बाद भी उच्च शिक्षा अंग्रेजी में ही होती रही और अभी भी हो रही है। आज की परिस्थिति में एक अजीब स्थिति सामने आ गयी है। एक ओर हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं में पढ़ाई करने वाले बच्चे उच्च शिक्षा के लिए आवेदन करते हैं, दूसरी ओर प्राथमिक स्तर से अंग्रेजी में पढ़े हुए बच्चे भी उच्च शिक्षा में आवेदन करते हैं। इस दशा में अंग्रेजी में पढ़े बच्चे सम्प्रेषित/व्यक्त करने के लिए अधिक सुपात्र होते हैं और दूसरे वर्ग के बच्चे स्वभावतः पिछड़ जाते हैं।

शिक्षा

शिक्षा के क्षेत्र में प्राथमिक स्कूलों में माध्यम के तौर पर मातृभाषा को न्यायालयों द्वारा स्वीकार किया गया है। 1989 में कर्नाटक उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ ने यह निर्देश दिये कि प्राथमिक स्तर पर बच्चों की शिक्षा उनकी मातृभाषा में ही होगी और किसी भी राज्य द्वारा उस राज्य की शासकीय भाषा को उन पर लागू नहीं किया जा सकता (जनरल सेक्रट्री लिगस्वीटिक माइनार्टीज प्रोटेक्शन कमेटी बनाम स्टेट आफ कर्नाटक, ए0आई0आर0 1989 कर्नाटक पेज 226)[7]। इसी प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने यह मन्तव्य व्यक्त किया कि विदेशी भाषा के बढ़ने से मातृभाषा कुन्द पड़ जाती है (इंग्लिश

मीडियम स्टूडेन्ट्स पैरेन्ट एसोशियेशन बनाम स्टेट आफ कर्नाटक, ए0आई0आर0 1994 एस0सी0 पेज 1702: (1994) 1 एस0सी0सी0 पेज 550)[8]

उच्च शिक्षा

उच्च शिक्षा के मामले में माध्यम के तौर पर हिन्दी या क्षेत्रीय भाषाओं को संरक्षण और संवर्द्धन के लिए न्यायालय उतने उदार नहीं होते हैं। इस संबंध में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि चूकिं आई0आई0टी0 में थीसिस की भाषा अंग्रेजी रखी गयी है अतः किसी छात्र के द्वारा यदि हिन्दी में यह दी जाती है तो आई0आई0टी0 उसको लेने के लिए बाध्य नहीं है। (सुनील के0आर0 सहस्त्र बुद्धि बनाम डायरेक्टर आई0आई0टी0, कानपुर ए0आई0आर0 1982 इलाहाबाद पृ. 398)[9]। दिल्ली उच्च न्यायालय में सिविल सेवा परीक्षा 2011 के संबंध में एक प्रकरण आया। इस प्रकरण में यह प्रश्न उठाया गया कि सिविल सेवा परीक्षा में अंग्रेजी भाषा से संबंधित 22.5 अंक का एक टेस्ट अंग्रेजी भाषा काम्प्रेहेन्शन स्किल का रखा गया है। इस संबंध में याचिका में यह कहा गया कि इस प्रकार की परीक्षा क्षेत्रीय भाषा जानने वाले विद्यार्थियों को विपरीत प्रभाव डालेगी। खण्डपीठ के द्वारा यह कहा गया कि न ही संविधान में और न ही किसी दूसरे कानून में ऐसा कोई प्रावधान है जो केवल अंग्रेजी में परीक्षा लेने को गलत मानता हो। बल्कि संसद द्वारा पारित शासकीय भाषा अधिनियम 1963 में यह प्रावधान है कि हिन्दी के अलावा अंग्रेजी भाषा में कार्य होता रहेगा। इसी के साथ खण्डपीठ ने यह भी निर्णय दिया कि आधुनिक संदर्भ में अंग्रेजी भाषा के संबंध में कम्प्रिहेन्शन स्किल जरूरी है। (दीनानाथ बत्रा बनाम भारत सरकार, MANU/DE/2602/2013)[10]

दिल्ली उच्च न्यायालय में एक अन्य प्रकरण (लाइव लॉ, 15 जून 2018 आयुष तिवारी बनाम विधि विभाग तथा अन्य)[11] निर्णय हेतु पहुंचा। याचिका के द्वारा माननीय न्यायालय से यह अनुरोध किया गया कि वे दिल्ली विश्वविद्यालय, मुख्यतः विधि विभाग को यह निर्देश दे कि कानून की प्रवेश परीक्षा (एल0एल0बी0 इन्ट्रेन्स एक्जाम) में अंग्रेजी के साथ हिन्दी में भी सवाल पूंछे। खण्डपीठ के द्वारा इस मांग को अस्वीकार कर दिया गया। खण्डपीठ द्वारा एक अन्य खण्डपीठ के आदेश दिनांक–28.05.2014 का हवाला दिया गया जिसमें खण्डपीठ ने यह निर्णित किया था कि यदि विद्यार्थी द्वारा अंग्रेजी समझी नहीं जा सकती और उनके द्वारा उसका संप्रेषण नहीं हो सकता है तो वे अंग्रेजी भाषा का लाभ नहीं ले सकते। इसी के साथ खण्डपीठ ने यह भी निर्णित किया कि चूंकि दिल्ली के न्यायालयों की भाषा सामान्यतः अंग्रेजी है तथा न्यायालयों के निर्णय अंग्रेजी में होते हैं अतः इस ओर से आंख नहीं मूंदी जा सकती। आज के संदर्भ में जबकि अन्य उच्च न्यायालयों से ज़जों तथा प्रमुख

न्यायाधीश का तबादला होता रहता है ऐसी दशा में हिन्दी जानना या न जानना कोई मतलब नहीं रखता है।

खण्डपीठ द्वारा अपने मत के पक्ष में सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों को उद्धृत किया गया है। (1) हिन्दी हित रक्षक समिति (1990) 2 एस0सी0सी0 पेज 352[12] का मामला तथा (2) गुजरात विश्वविद्यालय (1963) सप्लीमेन्ट (1) एस0सी0आर0 पेज 112[13] का मामला। हिन्दी हित रक्षक समिति के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत एक याचिका दायर की गयी थी जिसमें यह प्रार्थना की गयी कि याचिका से संबंधित छात्र पी0एम0टी0/पी0डी0टी0 के प्रवेश परीक्षा हिन्दी या क्षेत्रीय भाषाओं में देना चाहते हैं और उनको इन भाषाओं में परीक्षा न देने पर संविधान के अनुच्छेद 29 का उल्लंघन होगा जोकि याचिकाकताओं के मूलभूत अधिकार का उल्लंघन माना जायेगा। सर्वोच्च न्यायालय के तीन जज़ों की पीठ ने यह माना कि मातृभाषा में ज्ञान देना बच्चों के लिए अधिक प्रभावी है और यह भी माना कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विशेषकर स्वास्थ्य और दन्त शिक्षा के क्षेत्र में अभी इस तरह का ज्ञान उपलब्ध नहीं हैं। इसके बावजूद इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि इस प्रकार के मामले नीति–संबंधी होते हैं तथा संबंधित सरकार या विश्वविद्यालय ही इस संबंध में निर्णय ले सकती है अतः न्यायालय को इसमें दखल नहीं करना चाहिए। सोचने की बात यह है कि 1994 में सर्वोच्च न्यायालय के दो जजों की एक पीठ ने यह निर्णय दिया कि क्षेत्रीय भाषा में ज्ञान देने के संबंध में राज्य अपना निर्णय स्वंय ले सकते हैं।

गुजरात विश्वविद्यालय के मामले का निर्णय सर्वोच्च न्यायालय के 6 जज़ों की संवैधानिक पीठ द्वारा किया गया। इस मामले में गुजरात विश्वविद्यालय द्वारा ऐसा नियम बनाया गया कि उच्च शिक्षा के लिए हिन्दी या गुजराती का माध्यम होना चाहिए। इस नियम को उच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी और उच्च न्यायालयों में याचिका मंजूर करते हुए उन नियमों को गैर–कानूनी माना। उच्च न्यायालय के अनुसार गुजरात विश्वविद्यालय को ऐसे नियम बनाने का कोई अधिकार नहीं है। उच्च न्यायालय के अनुसार विश्वविद्यालय को यह अधिकार तो है कि शिक्षा माध्यम की भाषा के तौर पर यह नियम बना सके कि विद्यार्थी गुजराती या हिन्दी में शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं परन्तु उनको यह अधिकार नहीं है कि विद्यार्थियों के लिए यह अनिवार्य कर दिया जाय कि शिक्षा का माध्यम केवल भाषा विशेष होगी। उच्च न्यायालय के अनुसार गुजरात विश्वविद्यालय अधिनियम के कुछ प्रावधान 7वीं अनुसूची की सूची संख्या–1 एक की प्रवृष्टि 66 का उल्लंघन है जिसके अनुसार कानून बनाने का अधिकार केवल केन्द्र को ही होगा। यह मामला सर्वोच्च न्यायालय में जब पहुंचा तो इसकी सुनवाई 6 जज़ों के संवैधानिक पीठ के द्वारा की गयी। निर्णय के समय पॉच जज़ एक तरफ थे परन्तु न्यायमूर्ति के0 सुब्बा राव के द्वारा विरोध में निर्णय दिया गया। आधिकारिक निर्णय 5

न्यायमूर्तियों का है जो न्यायमूर्ति जे0 सी0 शाह के द्वारा लिखा गया है। न्यायमूर्ति शाह ने उच्च न्यायालय के आदेश को इस बिन्दु पर सही माना कि गुजरात विश्वविद्यालय को केवल गुजराती या हिन्दी माध्यम प्रस्तावित करने का कोई अधिकार नहीं है। इस संबंध में उन्होने यह माना कि सूची–1 के अन्तर्गत दिये गये विषयों को देखते हुए केन्द्र सरकार इस विषय में जो कानून बनायेगी वह अन्तिम होगा और राज्य सरकार द्वारा इस विषय में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। आधिकारिक निर्णय में अन्त में यह निर्णीत किया गया कि विश्वविद्यालय को केवल एक भाषा माध्यम प्रस्तावित करने का अधिकार नहीं है। माननीय न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने इसके विपरीत यह निर्णय दिया कि संविधान में ऐसी कोई योजना नहीं है जिससे कि यह सिद्ध होता हो कि माध्यम के लिए भाषा संबम्धी विधान बनाने का अधिकार केवल संसद को है। इस कारण यह मान लेना कि उच्च शिक्षा केवल अंग्रेजी में ही दी जा सकती है उचित नहीं होगा। दिल्ली उच्च न्यायलय की खण्डपीठ के द्वारा संवैधानिक पीठ के निर्णय का जो पैरा अपने निर्णय में उद्घृत किया गया है वह न्यायमूर्ति सुब्बा राव के निर्णय से लिया गया है जोकि न्यायिक प्रक्रिया में उचित नहीं है। गुजरात विश्वविद्यालय के मामले में संवैधानिक पीठ के बहुमत के फैसले पर कई प्रश्न उठते हैं:

1. बहुमत के फैसले के अनुसार अनुसूची 2 और तीन में दिये गये प्रावधानों का कोई मतलब नहीं रह जाता।
2. समन्वय का मतलब सभी कुछ है और इसके अन्तर्गत राज्य सरकारों को शिक्षा के सम्बन्ध में निर्णय लेने के किसी भी अधिकार को केन्द्र द्वारा उल्टा जा सकता है। इसके अतिरिक्त समन्वय के आधार पर हिन्दी या क्षेत्रीय भाषाओं को पढ़ने वाले बच्चों को उच्च शिक्षा के लिए केवल अंग्रेजी भाषा में ही दक्ष होना पड़ेगा।
3. हालांकि अंग्रेजी भाषा उच्च शिक्षा की एक मात्र भाषा स्पष्टतया नहीं बतायी गयी है परन्तु चूंकि परीक्षा अंग्रेजी में ही होगी अतः विद्यार्थी का अंग्रेजी ज्ञान आवश्यक है।
4. बहुमत में संविधान के अनुक्षेद 343 को संज्ञान में नहीं लिया।
5. न्यायमूर्ति सुब्बा राय द्वारा उठाये गये प्रश्नों को बहुमत के फैसले में कोई उत्तर नहीं मिलता।

सन् 2013 में 5 जजों की एक संवैधानिक पीठ स्टेट आफ कर्नाटक बनाम एशोसियेटड मैनेजमेन्ट (2014) 9 एस.सी.सी. 485[14] द्वारा प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा के सम्बन्ध में अपना निर्णय दिया। इस मामले में कर्नाटक राज्य ने एक आदेश जारी किया

जिसके अन्तर्गत 1994–95 से कक्षा 1 से 4 तक की कक्षाओं के लिए प्रावधान किया गया कि इन कक्षाओं के बच्चों के लिए मातृभाषा या कन्नड़ अनिवार्य होगी। इस प्रावधान को कर्नाटक उच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी। कर्नाटक उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने इस आदेश के कुछ भागों को निरस्त कर दिया। संविधान पीठ के पास जो पाँच प्रश्न भेजे गये उनमें मुख्य तीन निम्न थे:–

1. मातृभाषा का क्या तात्पर्य है? अगर इसका अर्थ वह भाषा है जिसमें की बच्चा स्वाभाविक है तो इसका निर्णय कौन करेगा?

2. क्या किसी बच्चे या माता–पिता या नागरिक को यह अधिकार है कि वह प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के माध्यम की भाषा तय कर सके?

3. क्या मातृभाषा लादने से संविधान के अनुच्छेद 14, 19, 29 और 30 का उल्लंघन होता है?

उल्लेखनीय है कि तीसरा प्रश्न अनावश्यक था क्योंकि अनुच्छेद 343 में स्पष्ट प्रावधान है कि शासन की भाषा हिंदी होगी। गौर करने लायक है कि इस प्रश्न को वास्तव में इस प्रकार बनाया जाना चाहिए था 'क्या अंग्रेजी भाषा लादने से संविधान के अनुच्छेद 14, 21, 29 व 30 का उल्लंघन होता है?' पीठ द्वारा तीसरा प्रश्न अपने आप में दर्शाता है कि किस प्रकार मातृभाषा के विषय में शिक्षा के अधिकार को 'लादना' बताया जा रहा है। उल्लेखनीय है कि इस प्रकरण में प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में शिक्षा ग्रहण करने के लिए मामला सर्वोच्च न्यायालय पहुँचा था अर्थात् स्थिति ये है कि उच्च शिक्षा को छोड़ दिया जाये। आज की परिस्थिति में प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर भी मातृभाषा के द्वारा शिक्षा ग्रहण करने के अधिकार को भी निहित स्वार्थो द्वारा नहीं माना जा रहा है। ऐसे में माध्यमिक और उच्च स्तर की शिक्षा हिन्दी या क्षेत्रीय भाषाओं में होने का प्रश्न भी लगभग समाप्त हो जाता है। दूसरी ओर आज यह माहौल बन गया है कि अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी या क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षा ग्रहण करना लगभग असंभव सा हो गया है और पूरा जोर इस बात पर है कि शिक्षा किसी भी प्रकार से हिन्दी या क्षेत्रीय भाषाओं में न दी जा सके। इन्ही कारणों से न्यायमूर्ति सुब्बा राव का विरोधी मन्तव्य अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

दिल्ली उच्च न्यायलय ने यह भी फैसला किया कि चूंकि संविधान के अनुच्छेद 348 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालयों और उच्च न्यायालयों की भाषा अंग्रेजी है अधिनियम और बिल भी अंग्रेजी में बनते है अतः दिल्ली विश्वविद्यालय को यह निर्देश देना कि वे प्रवेश परीक्षा अंग्रेजी के अलावा हिन्दी में भी ले उचित नहीं होगा। इस तरह का निर्णय दिल्ली विश्वविद्यालय की स्वायत्ता में दखलान्दाजी माना जायेगा। कुल मिलाकर

यह स्थिति बनती है कि कक्षा 12 तब पढ़ाई हिन्दी या क्षेत्रीय भाषाओं में हो सकती है परन्तु उच्च शिक्षा केवल अंग्रेजी में ही संभव है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि गुजरात विश्वविद्यालय में हिन्दी–गुजराती में परीक्षा लेने को रोका नहीं गया परन्तु दिल्ली प्रकरण में परीक्षा केवल अंग्रेजी में ही होगी।

हिन्दी और संविधान

भाषा संबंधी प्रावधानों को संविधान के भाग 17 में दिया गया है। इस भाग में 9 अनुच्छेद वर्णित हैं जो अनुच्छेद 343 से 351 तक दिये गये है। संविधान निर्माण के समय भाषा के प्रश्न पर संविधान निर्माता दिगभ्रमित प्रतीत होते हैं। अनुच्छेद 343 में सबसे पहले यह प्रावधान है कि केन्द्र की शासकीय भाषा हिन्दी होगी और यह देवनागरी लिपि में होगी। इसके तुरन्त बाद यह प्रावधान कर दिया गया कि संविधान लागू होने के 15 वर्षो तक अंग्रेजी भाषा शासकीय तौर पर इस्तेमाल होती रहेगी। इसी के साथ यह प्रावधान किया गया कि राष्ट्रपति अंग्रेजी के साथ हिन्दी के इस्तेमाल के लिए नियम और प्रावधान बना सकते हैं। इसके तुरन्त बाद इसी अनुच्छेद में यह कहा गया कि पिछली बातों को नजरअन्दाज करते हुए संसद 15 वर्षों के बाद एक अधिनियम बना सकती है जिसके अन्तर्गत अंग्रेजी भाषा के इस्तेमाल के विषय में पुनः निर्णय लिया जायेगा। अनुच्छेद के प्रावधानों का अध्ययन करने से यह स्थिति स्पष्ट होती है कि सर्वप्रथम यह कह देने से कि केन्द्र की शासकीय भाषा हिन्दी होगी कोई विशेष मतलब नहीं रह जाता क्योंकि इसी अनुच्छेद में वे सारे प्रावधान दिये गये हैं जिससे हिन्दी को कभी भी शासकीय भाषा बनाने का अवसर न मिले। संविधान निर्माताओं को अंग्रेजी का मोह कुछ अधिक प्रतीत होता है क्योंकि इसके तुरन्त बाद अनुच्छेद 344 में हिन्दी भाषा को शासकीय दर्जा न देने के लिए कमीशन और कमेटी बनाने का प्रावधान है। वस्तुतः इस प्रावधान के द्वारा केवल हिन्दी भाषा लागू न करने के लिए रास्ता निकाला गया है (राजीव धवन, "मिरैकिल सरेण्डर एण्ड मिथ") अनुच्छेद 345 में यह प्रावधान दिया गया है कि कोई भी राज्य अपनी शासकीय भाषा तय कर सकता है, परन्तु अनुच्छेद 346 में यह प्रावधान है कि केन्द्र और राज्यों में संवाद शासकीय भाषा में ही होगा। उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद 343 में हिन्दी को शासकीय भाषा उद्घोषित किया गया है परन्तु इसको न लागू करने के लिए सारे प्रावधान अनुच्छेद 343 में ही दे दिये गये हैं और अन्ततः केन्द्र की शासकीय भाषा के रूप में अंग्रेजी ही प्रतिष्ठित है। अंग्रेजी को किसी भी प्रकार न छोड़ने के लिए भाग 17 अध्याय–3 अन्तिम सत्य है। इस भाग में अनुच्छेद 343, 348 एवं 349 दिये गये हैं। अनुच्छेद 348 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय की भाषा अंग्रेजी होगी। इस अनुच्छेद में यह प्रावधान है कि सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों की भाषा अंग्रेजी ही होगी और इसी के साथ इस अनुच्छेद में यह बताया गया कि कोई भी बिल, ऐक्ट या किसी भी प्रकार के

आदेश सरकारी तौर पर संसद या विधायिका में अंग्रेजी में ही होंगे।

संविधान के अनुच्छेद 348 के अन्तर्गत यह प्रावधान है कि सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय, संसद और विधायिका द्वारा पारित अधिनियम और बिल इत्यादि अंग्रेजी में होंगे हालांकि बाद में यह भी कहा गया हिन्दी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का इस्तेमाल उस राज्य विशेष में संबंधित राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति के बाद किया जा सकता है। इसी के साथ यह भी प्रावधान किया गया कि उपरोक्त प्रावधान उच्च न्यायालयों के निर्णय और आदेशों पर लागू नहीं होगा। यदि विधायिका द्वारा अधिनियम/बिल दूसरी भाषा में पारित किया गया है तो उसका अंग्रेजी अनुवाद भी साथ में किया जाएगा परन्तु कोई समस्या खड़ी होने पर अंग्रेजी में अनुमोदित विधायक या बिल इत्यादि को ही निर्णायक माना जाएगा। इस अनुच्छेद को पढ़ने से एक हास्यापद स्थिति उत्पन्न होती है। संविधान के अनुसार मूल बिल या अधिनियम हिन्दी या क्षेत्रीय भाषा में प्रस्तुत और पास किया जा सकते हैं परन्तु किसी भी प्रकार की समस्या उत्पन्न होने पर इस मूल अधिनियम को निर्णायक नहीं माना जा सकेगा। इसके स्थान पर इस अधिनियम के अंग्रेजी अनुवाद को ही अन्तिम सत्य माना जायेगा। इससे यह सिद्ध होता है कि संविधान बनाने वालों का मन्तव्य यह था कि अधिनियम या बिल इत्यादि अंग्रेजी में ड्राफ्ट किए जाये और उनका अनुवाद हिन्दी या अन्य भाषाओं में कर दिया जाय। तथाकथित अनूदित बिल या अधिनियम को ही संसद या विधायिका द्वारा मूल ''बताकर'' पारित कराया जाए परन्तु लागू करने के लिए किसी और चुनौती के समय ''तथाकथित अनूदित'' अंग्रेजी अधिनियम को ही निर्णायक माना जाए। इससे यह साफ जाहिर होता है कि उपर्युक्त अनुच्छेद जानबूझकर ऐसी शब्दावली में बनाया गया जो अपने झूठ के मन्तब्य को छिपा नहीं पायी।

चूंकि उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय की भाषा अंग्रेजी है और समस्त कानून भी अंग्रेजी में बनते हैं अतः हिन्दी या क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद का कोई प्रश्न ही नहीं उठता अपितु निचली अदालत की कार्यवाही को अंग्रेजी में अनुवाद कराया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय में उसे पेपर–बुक कहते हैं। तथ्य यह है कि हिन्दी बंगाली, तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मराठी, असमी, मलयालम, राजस्थानी, उड़िया इत्यादि का अनुवाद अंग्रेजी में करके सर्वोच्च न्यायालय में उससे पेपर–बुक बनाई जाती है। इस अंग्रेजी अनुवाद के लगभग रू0 100.00 प्रति पेज की दर से सम्पूर्ण पत्रावली और कागजात का अनुवाद किया जाता है। इस अनुवाद में हजारों रूपये लगते है। इस ''अनुवाद इण्डस्ट्रीज'' या ''न्याय इण्डस्ट्रीज'' के कारण एक भारी बोझ जनता पर पड़ता है। इससे यह साफ हो जाता है कि आमजन को सर्वोच्च न्यायालय जाना क्यों महंगा होता जा रहा है। एक सुझाव है कि यदि मानवाधिकार के नाते न्याय मिलना अपनी मातृभाषा में न्याय या विधि सम्मत नहीं है तो आमजन को अनुवाद की सुविधा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मुफ्त

उपलब्ध करायी जाय। वास्तव में अन्य लीगल ऐड के स्थान पर इस सुविधा से सारे न्याय मांगने वालों को बड़ी राहत मिलेगी। पेपर–बुक बनाने में वादकारी को मदद करना पहला कदम होगा। मानवाधिकार के अनुसार अगला कदम हिन्दी या क्षेत्रीय भाषाओं में बहस के अधिकार का होगा। यह इसलिए भी आवश्यक है कि हिन्दी या क्षेत्रीय भाषाओं मे बहस होने पर वादकारी गण यह समझ सकेंगे कि उनके प्रकरण में क्या बहस हो रही है। यह सही है कि गूढ़ बातों को वह नहीं समझ पायेगा परन्तु सामान्य/मोटे तौर पर वह यह जान पायेगा कि उसके वकील ने सही और आवश्यक तथ्य न्यायालय के सम्मुख रखे हैं या नहीं। यह इसलिए भी आवश्यक है कि इस प्रक्रिया से वकील की के जवाबदेही ज्यादा पारदर्शी होगी जोकि मानवाधिकार का एक महत्वपूर्ण अंग है। मानवाधिकार के अनुसार अन्तिम कदम हिन्दी या क्षेत्रीय भाषाओं में कानून बनाना या परित करना होगा और उस समय वस्तुतः हमारा समाज वास्तव में राष्ट्र कहलाने लायक होगा।

1. हरिजन, 09.07.1938 पेज 177–178
2. यंग इण्डिया, 2 फरवरी, 1921 पेज 34
3. यंग इण्डिया, 27 अप्रैल, 1921 पेज 130
4. ''बैक टु संस्कृत''– सुभाष कश्यप, द हिन्दू दिनांक–11.01.2000 पेज 21
5. संतोष कुमार बनाम सेक्रेट्री मिनिस्ट्री आफ एच0आर0डी0, (1994) 6 एस0सी0सी0 पेज 579
6. आर0आर0 दलवई बनाम स्टेट आफ तमिलनाडु, ए0आई0आर0 1976 एस0सी0 पेज 1559
7. जनरल सेक्रेट्री लिगखिस्ट्रिक माइनार्टीज प्रोटेक्शन कमेटी बनाम स्टेट आफ कर्नाटक, ए0आई0आर0 1989 कर्नाटक पेज 226
8. इंगनिश मीडियम स्टूडेन्ट्स पैरेन्ट एसोशियेशन बनाम स्टेट आफ कर्नाटक, ए0आई0आर0 1994 एस0सी0 पेज 1702: (1994) 1 एस0सी0सी0 पेज 550
9. सुनील के0आर0 सहस्त्र बुद्धि बनाम डायरेक्टर आई0आई0टी0, कानपुर ए0आई0आर0 1982 इलाहाबाद पेज 398
10 दीनानाथ बत्रा बनाम भारत सरकार, *MANU/DE/2602/2013*
11. लाइव लॉ, 15 जून 2018 आयुष तिवारी बनाम विधि विभाग तथा अन्य
12. हिन्दी हित रक्षक समिति (1990) 2 एस0सी0सी0 पेज 352
13 गुजरात विश्वविद्यालय (1963) सप्लीमेन्ट (1) एस0सी0आर0 पेज 112
14. सन् 2014 में 5 जजों की एक संवैधानिक पीठ स्टेट आफ कर्नाटक बनाम एशोसिएटेड मैनेजमेन्ट (2014) 9 एस.सी.सी. 485

****

बाजार एवं मानव अधिकार

श्री अग्निहोत्री*

बीज शब्द : बाजार, व्यक्तिगत पूंजी, आर्थिक असमानता, विकास, असंतोष

सारांश

ऐतिहासिक रूप से विश्व स्तर पर बाजार की उत्पत्ति 18वीं शताब्दी के अंत में ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति से मानी जाती है। बाजार निर्मित होने में जिन मूल्यों को आधार बनाया गया है उसमें प्रमुख रूप से व्यक्तिगत पूंजी सर्वोपरि है जिसके कारण समाज में आर्थिक असमानता की खाई और गहरी हुई है। पूंजी की इस व्यवस्था के कारण गरीबी, बेरोजगारी, गैर–बराबरी, सत्यात्मक अपराध, परिवारों में बिखराव जैसी समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। राज्य अपनी लोक कल्याणकारी भूमिकाओं से लगातार पीछे हटा है। वस्तुतः वर्तमान बाजार व्यवस्था पिछले साम्राज्यों के द्वारा अपनायी गई नीतियों का ही परिणाम है। गांधीजी 1909 में लिखित अपनी पुस्तक 'हिंद स्वराज' में भविष्य में पैदा होने वाली इन्ही विसंगतियों से आगाह किया था। आजादी के बाद जिन प्रतिमानों को अपनाया गया उसने समाज के हाशिए के तबके के असंतोष को और बढाया। हालांकि वर्तमान में सरकारी नीतियों में बहुत हद तक इन निजी प्रवृतियों पर रोक लगाने का प्रयास किया गया है। अब नए सिरे से 'किसका विकास, कैसा विकास' जैसे प्रश्नों पर सोचना शुरु किया है।

बाजार का अर्थ सामान्यतः वह स्थान है जहां पर वस्तुओं को खरीदा और बेचा जाता है। हालांकि आज के दौर में बाजार का मतलब केवल वस्तुएं न होकर व्यक्ति के श्रम की बिक्री भी है। बाजार या मार्केट पूंजीवादी व्यवस्था का एक प्रमुख अंग है। इसके अपने नियम होते है जो पूंजीवादी व्यवस्था के द्वारा संचालित होते हैं। बाजार का एक नियम यह है कि इसकी कार्यप्रणाली में सरकार कोई दखलन्दाजी नहीं करेगी। इसके साथ–साथ यह भी प्रचारित और प्रसारित किया जाता है कि बाजार अपने को स्वयं नियंत्रित कर लेता है यानि उसको बाह्य नियंत्रण की आवश्यकता नहीं होती है। आधुनिक परिवेश में बाजार वैश्वीकरण या ग्लोबलाइजेशन के रूप में सामने आया है जो आधुनिक संदर्भ

*अधिवक्ता, इलाहाबाद उच्च न्यायालय, खण्डपीठ, लखनऊ

में विकास के नये मॉडल के तौर पर एक लक्ष्य की तरह बताया जाता है। आधुनिक युग में विकास का जो मॉडल आई0एम0एफ0, विश्व बैंक, वर्ल्ड ट्रेड आर्गनाईजेशन के द्वारा कार्यान्वित किया जाता है उसके अन्तर्गत विकास के तीन लक्ष्य है जिनको लिबरालाईजेशन, प्राईवेटाईजेशन और ग्लोबलाईजेशन (एल.पी.जी.) के तौर पर जाना जाता है। विकास के इस मॉडल को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एल0पी0जी0 मॉडल के तौर पर परिभाषित किया गया है। इस मॉडल में राष्ट्र और समाज की कोई भूमिका नहीं रह जाती, व्यक्ति पूरी तरह बाजार के अधीन होता है। समाज और विश्व को चलाने के लिये बार–बार यह बताया जाता है कि सम्पूर्ण विश्व अब एक मण्डी है जहां पर हर चीज खरीदी और बेची जा सकती है। वस्तुतः मत्स्य न्याय के अनुसार बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है जबकि यह प्रसारित किया गया है कि बाजार ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बढ़ावा दिया है। संभवतः इसी कारण आज के दौर में निगमों (कारपोरेशनों/कम्पनियों) का ही राज चल रहा है। इस वैश्विक बाजार में पूंजी अब देशव्यापी न होकर विश्व व्यापी (आवारा) हो गयी है। अधिकतर कम्पनियां उस देश में अपनी पूंजी लगाती है जहां पर उनके ऊपर प्रतिबन्ध कम लगाये जाते हैं और इसके लिये आवश्यकता पड़ने पर ये कम्पनियां या निगम उस देश की सरकार को प्रभावित करने के लिये उचित और अनुचित सभी प्रकार के हथकण्डे अपनाती हैं। यदि देश–विशेष की सरकार के नेता और नौकरशाह घूस या अन्य अनैतिक प्रलोभनों को लेकर उनके मन–माफिक काम नहीं करते हैं तो ऐसी दशा में उस सरकार को गिराने में उनका सबसे बड़ा प्रभाव होता है। इस तरह के परिदृश्य में पूंजी को केवल लाभ ही दिखता है। राष्ट्र, नागरिक और मानव पर उनका ध्यान नहीं होता। उनकी सोच में मानव का मूल्य उसके केवल श्रम के बराबर होता है जिसका उपयोग केवल लाभार्जन के लिये होता है। दूसरे शब्दों में यदि कोई मानव श्रम लायक नहीं रह जाता तो उसको तुरन्त हटा देना चाहिए क्योंकि उसके न हटाये जाने पर लाभ के बजाय हानि शुरू हो जाती है। मूलरूप से बाजार का मतलब केवल लाभ है और किसी प्रकार की जिम्मेदारी विशेषकर ''सामाजिक–जिम्मेदारी'' बाजार का दायित्व नहीं है। आश्चर्य की बात तो यह है कि इन सारे लक्षणों को ''क्रोनी कैपटलिज्म'' के तौर पर प्रसारित किया जाता है और यह बताया जाता है कि असली कैपटलिज्म या पूंजीवाद बहुत सही और मानवीय है। मुश्किल यह है कि यह तथाकथित असली पूंजीवाद किसी भी राष्ट्र या देश में अभी तक नहीं आया है जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोपीय देशों में आज की प्रणाली को "क्रोनी कैपटलिज्म" के नाम का ही बताया जाता है। पूंजीवाद और अर्थशास्त्र की पुस्तकों में कभी भी इस शब्द पर अधिक चर्चा नहीं होती जबकि मौजूदा दौर में सभी पूंजीवादी सभी देशों में यही व्यवस्था लागू है।

ऐतिहासिक रूप से विश्व स्तर पर बाजार की उत्पत्ति 18वीं शताब्दी के अन्त

में ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति से मानी जा सकती है। इस क्रान्ति के जरिए मशीनी उत्पादन होने के कारण ग्रेट ब्रिटेन के पास उपभोग की अतिरिक्त सामग्री का उत्पादन प्रारम्भ हुआ। चूंकि घरेलू बाजार और यूरोपीय बाजार में इसे पूरा नहीं खपाया जा पा रहा था इसलिए ग्रेट ब्रिटेन को इनको बेचने के लिए नये बाजार की आवश्यकता थी। इसके लिए उन्होंने अपने नये उपनिवेश बनाने प्रारम्भ किए। इन उन निवेशों में ग्रेट ब्रिटेन के द्वारा बनायी गयी वस्तुओं को अधिक दाम पर बेचा जाता था। घरेलू सामान के उत्पादन को कम करने के लिए उपनिवेशों में ऐसी स्थिति पैदा की गई जिससे कि वहाँ के उद्योग–धन्धे पूरी तरह समाप्त हो जाये। इस प्रक्रिया का सर्वाधिक उपयोग हिन्दुस्तान में किया गया। उल्लेखनीय है कि औरंगजेब के शासन के समाप्त होने तक यानि 1725–30 तक हिन्दुस्तान विश्व बाजार का केन्द्र था। इसका अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि सम्पूर्ण विश्व के व्यापार का लगभग 25 से 30 प्रतिशत योगदान हिन्दुस्तान का था। सम्भवतः इसी कारण पूरे विश्व का धन और पूँजी भारत में खिंची चली आती थी। ग्रेट ब्रिटेन और यूरोपीय देशों के द्वारा इस व्यापार पर कब्जा करने के लिए आपस में भयंकर युद्ध हुए। चूंकि हिन्दुस्तान की दृष्टि में समुद्री–व्यापार का कोई विशेष मतलब नहीं था इस कारण मुगल साम्राज्य तथा अन्य राजाओं द्वारा इस ओर ध्यान नहीं दिया गया। वास्तव में समुद्री व्यापार पूर्ण रूप से सूरत और केरल के व्यापारियों के हाथ में था। यह व्यापारी जो लाभ कमाते थे उसका एक हिस्सा राज्य में अवश्य दे देते थे। परन्तु मुगल साम्राज्य या स्थानीय राजाओं द्वारा उनके व्यापार में कोई दखलअंदाजी नहीं की जाती थी। ब्रिटेन और अन्य यूरोपीय देशों जैसे कि स्पेन, फ्रांस, पुर्तगाल और डच के द्वारा समुद्री व्यापार पर कब्जे के लिए हुई लड़ाई में अन्त में ग्रेट ब्रिटेन की विजय हुई और उनके लड़ाकू जहाज समुद्र के अन्दर खड़े रहने लगे। उनके द्वारा अपनायी गई नीतियों के अन्तर्गत समुद्र किनारे के शहरों और राज्यों पर जबरन कब्जा किया जाना उपनिवेश बनाने का सर्वप्रथम प्रयास था, क्योंकि लूट का माल लेकर वे समुद्र में भाग जाते थे जिस कारण उनको पकड़ना आसान नहीं होता था। यह प्रक्रिया कई दशकों तक चलती रही और अन्त में ब्रिटेन के द्वारा बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में अपने किले बनाये गये जिनको उस समय के अनुसार 'फैक्ट्री' कहा जाता था। मूल रूप से इन तीन स्थानों से ब्रिटेन ने हिन्दुस्तान पर शासन प्रारम्भ किया। चूंकि भारत की राजनैतिक स्थित उस समय काफी बिगड़ गयी थी अतः ब्रिटेन को बेवजह दखल अंदाजी करने का मौका मिल गया। मुगल साम्राज्य समाप्त हो रहा था और उसके स्थान पर कोई केन्द्रीय सत्ता नहीं आ पायी थी। दुर्भाग्य से उसी समय भारत में केन्द्रीय सत्ता को हिलाने के लिए नादिर शाह का आक्रमण हुआ। ऐसा कहा जाता है कि नादिर शाह के द्वारा इतना धन ले जाया गया कि हाथी घोड़े की पहली खेप अफगानिस्तान पार कर गयी थी परन्तु अभी उसका एक छोर दिल्ली में ही

था। इसके तुरन्त बाद पानीपत की तीसरी लड़ाई में अब्दाली के भयंकर आक्रमण से हिन्दुस्तान का उत्तरी भाग पूरी तरह तहस नहस हो गया। इन सब का फायदा ब्रिटेन के द्वारा उठाया गया और उन्होंने हिन्दुस्तान के घरेलू बाजार को पूर्णतः अपने अधीन कर लिया। जिस हिन्दुस्तान का कपड़ा पूरे विश्व में प्रसिद्ध था और विश्व के उच्च वर्ग के द्वारा इस्तेमाल किया जाता था उस कपड़े का उत्पादन बन्द करने के लिए ब्रिटेन के द्वारा स्थापित ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने वे सारे काम किए जो कि किसी भी आतताई के द्वारा सम्भव हो सकते हैं। ऐसा कहा जाता है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों के द्वारा स्थानीय कारीगरों के हाथ कटवा दिये गये थे। इसके बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने माल को बेचने के लिए हिन्दुस्तान के लोगों को अपना एजेन्ट बनाना शुरू किया। इस प्रक्रिया में भारत विश्व बाजार में निर्यातक से मात्र एक आयातक बन कर रह गया।

चूंकि पूंजीवाद में दृष्टि केवल लाभ पर केन्द्रित होती है, अतः सामाजिक दायित्व और मानवाधिकार पर पूंजीवाद में केवल सतही चर्चा होती है। हालांकि संयुक्त राज्य अमेरिका के द्वारा "लोकतांत्रिक व्यवस्था" और "मानवाधिकार" की मुहिम पूरे विश्व में चलायी जा रही है परन्तु वास्तव में न तो संयुक्त राज्य अमेरिका में, न उसके द्वारा समर्थित देशों में "लोकतांत्रिक व्यवस्था" लागू है। उन देशों में "मानवाधिकार" के ऊपर भी अधिक ध्यान नहीं दिया जा रहा है। वस्तुतः यहां पर बाजार ''सर्वोपरि अर्थव्यवस्था'' के कारण व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं रह जाता। एक अर्थ में 'लोकतांत्रिक व्यवस्था' और "मानवाधिकार" 'बाजार व्यवस्था' के विपरीत है क्योंकि 'बाजार–व्यवस्था' में व्यक्ति के अधिकारों का कोई मूल्य नहीं रहता और कोई भी व्यक्ति अपने श्रम के लिये किसी प्रकार का कोई मोल–भाव करने की स्थिति में नहीं होता। बाजार द्वारा उसके श्रम का जो मूल्य दिया जाता है उसको स्वीकार कर लेना उसकी मजबूरी है।

बाजार निर्मित होने में जिन मूल्यों को आधार बनाया गया है उनमें प्रमुख व्यक्तिगत/निजी भूमि और धन सर्वोपरि हैं। कार्यान्वन की दृष्टि से "व्यक्तिगत–भूमि" की नीति लागू होने से आमजन में वैमनस्य बढ़ा है जबकि समाज के ऊपरी वर्ग को यह पूंजी निर्मित करने में काम आया है। "पूंजी–व्यवस्था" के अन्तर्गत काम करने से प्रत्येक समाज में जो समस्याएं उत्पन्न हुई और लगातार बढ़ रही हैं उनमें गरीबी, बेरोजगारी, गैर–बराबरी, अपराध, टूटते परिवार और पर्यावरण विनाश मुख्य है। शासक वर्ग द्वारा इनके समाधान के लिये जो बातें कही जाती हैं उसके अनुसार मुख्य रूप से आर्थिक वृद्धि को तेज करना और इसके लिये विनियमन, करों में कटौती, व्यापार अवरोधों को हटाना, उद्योग को अधिक इन्सेटिव और सब्सिडी देना, कल्याणकारी लाभ पाने वाले कामगारों को काम करने के लिये मजबूर करना, आवश्यकता से अधिक भर्ती करना है जबकि

काम के बदले नाम–मात्र की पगार देना और ज्यादा से ज्यादा जेलों को बनाना दूसरा बड़ा कदम होता है। वास्तव में 1909 में गांधी जी ने ''हिन्द–स्वराज'' नाम की पुस्तक में इस समस्या के बारे में काफी स्पष्ट विश्लेषण किया है। उनके अनुसार तथाकथित सभ्यता की पहचान है जिसमें लोग बाहरी दुनिया की खोज में और शरीर सुख में धन्यता मानते हैं। सभ्यता की निशानी के तौर पर गांधी जी जिन बातों का जिक्र करते हैं उसमें तोप–बन्दूक, भाप के इन्जन से हल चलाकर बहुत सी जमीन जोत लेना और बहुत सा पैसा जमा कर लेना, रेलगाड़ी और मिल शामिल हैं। हजारों आदमी अपने गुजारे के लिये इकट्ठा होकर बड़े कारखानों या मिलों में काम करते हैं उनकी हालत जानवरों से भी बदतर हो गयी है। विशेष कर सीसा और खनिज बनाने के कारखानों में जान जोखिम में डालकर लोग काम करते हैं परन्तु इसका लाभ केवल अमीर लोगों को मिलता है। पहले लोगों को मारपीट कर गुलाम बनाया जाता था परन्तु अब लोगों को पैसे और भोग का लालच देकर गुलाम बनाया जाता है (हिन्द स्वराज पेज 20–21) 1। गांधी जी के मुताबिक पैगम्बर मोहम्मद की सीख के अनुसार यह शैतानी सभ्यता है और हिन्दू–धर्म इसे कलियुग मानता है। वास्तव में यह सभ्यता दूसरों को नाश करने वाली और खुद नाश होने वाली है। (हिन्द स्वराज पेज 22) 2। मूलरूप से इस सभ्यता में पैसा ही सर्वोपरि है। बाजार व्यवस्था के द्वारा इस मूल्य प्रणाली को विश्व में प्रसारित और प्रचारित किया जा रहा है। इसके अनुसार किसी भी प्रकार धन अर्जित करना और अधिक से अधिक उपभोग करना जीवन का मात्र एक लक्ष्य है। बाजार आधारित अर्थव्यवस्था में इसी लिये व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं रह जाता और वह बाजार का एक अंग बनकर ही रहता है। वस्तुत गांधी जी न केवल मिलों के खिलाफ थे बल्कि उनका मानना था कि विदेशी शासन को यथा संभव बनाये रखने में देशी मिल मालिकों का भी हाथ है। उनके अनुसार "अमेरिका के रॉकफेलरों से हिन्दुस्तान के रॉकफेलर कुछ कम हैं, ऐसा मानना निरा अज्ञान है। गरीब हिन्दुस्तान गुलामी से छूट सकेगा, लेकिन अनीति से पैसे वाला बना हुआ हिन्दुस्तान गुलामी से कभी नहीं छूटेगा।" (हिन्द स्वराज पेज 78–79) 3।

महात्मा गांधी के ये विचार 1909 में लिखे गये थे। 1995 में एक प्रमुख अमेरिकी विचारक 'डेविड सी0कार्टन' अपने विचार–प्रवाह से जिन निष्कर्षों पर पहुंचे उसके अनुसार ''जो हमारी परम्परागत आध्यात्मिक प्रकृति है, उससे दार्शनिक अथवा संकल्पनात्मक अलगाव पैदा करने में यांत्रिक विश्व की पश्चिमी वैज्ञानिक दृष्टि ने योगदान किया है। इस बात को हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी ने पुख्ता किया है। हमारे संस्थानों का बाजार के मूल्यों से जुड़ जाने के कारण जितना अधिक हमारे जीवन में धन का प्रभावी स्थान बनता जा रहा है उतनी ही कम जगह उस आध्यात्मिक जुड़ाव के लिये बची है जो समुदाय और प्रकृति से सन्तुलित संबंधो के आधार पर है। लोग

आध्यात्मिक तुष्टि की खोज को लगातार हटाते हुए उसकी जगह आत्मघाती धन की खोज में पागलपन के साथ फंस रहे हैं। धन उपयोगी है परन्तु पूर्णतः तत्वहीन और स्वभावतः मूल्यहीन शिल्पतथ्य है।'' (डेविड सी0 कार्टन– ''जब दुनिया में निगमों का राज चले'', पृष्ठ 6) 4

कार्टन के अनुसार ''जिस नीति की वकालत अमेरिका दुनिया के लिये करता रहा है उन्हीं नीतियों के कारण अमेरिकी समाज ने एक तीसरी दुनिया खड़ी कर दी और जिसके कारण अमीर और गरीब के बीच खाई बढ़ती जा रही है''। जिन प्रमुख समस्याओं की ओर कार्टन ने ध्यान दिलाया उनके अनुसार विदेशी कर्ज पर निर्भरता, शिक्षा–व्यवस्था का बिगड़ना, बाल मृत्यु–दर बढ़ना, वनों का विध्वंस और निर्यात पर अधिक निर्भरता, जहरीले कचरे की डम्पिंग, परिवार तथा समुदाय के बीच विघटन शामिल है। (डेविड सी0 कार्टन– ''जब दुनिया में निगमों का राज चले'', पृष्ठ 9) 5। इस विश्लेषण के उपरान्त कार्टन निम्न निष्कर्ष पर पहुंचते हैंः–

''अब मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि जो व्यवस्थात्मक शक्तियां वैश्विक निगमों की वृद्धि और सत्ता को पोषित करने वाली हैं, वहीं वर्तमान मानव संकट के केन्द्र में है। अब मेरा विश्वास है कि सामूहिक महाविपत्ति से बचने के लिये व्यवसाय की अन्तर्निहित प्रणाली में मूलचूल बदलाव लाना होगा जिससे लघु और स्थानीय उद्योगों को सत्ता फिर से मिल सके। मेरा यह भी विश्वास है कि आवश्यक बदलाव लाने के लिये इस प्रणाली के बाहर कार्यरत जन–आन्दोलन प्रयत्नों के साथ–साथ उन लोगों की सहयोगी भूमिका की जरूरत होगी जो इस प्रणाली के अन्दर काम कर रहे हैं जैसे प्रमुख निगमों के अध्यक्ष।''

(डेविड सी0 कार्टन– ''जब दुनिया में निगमों का राज चले'', पृष्ठ 9) 6

वस्तुतः बाजार व्यवस्था पिछले साम्राज्यों के द्वारा अपनायी गयी साम्राज्यवादी नीतियों का ही परिणाम है। 19वीं शताब्दी के अन्त में अंग्रेजी साम्राज्य के साथ–साथ स्पेन, फ्रान्स, जर्मन और पुर्तगाल साम्राज्य अपनी प्रभाव–भूमि बढ़ाने में उत्सुक थे। इसी के चलते 20वीं सदी के पूर्वार्ध में दो विश्व युद्ध हुए जिसके परिणाम से कई साम्राज्य पूरी तरह नेस्तनाबूत हो गये। आटोमन साम्राज्य पूरी तरह तहस–नहस हो गया और उसके स्थान पर लोकतांत्रिक तुर्की का उदय हुआ। दूसरे विश्व–युद्ध के बाद अंग्रेजी साम्राज्य भी छिन–भिन्न हो गया और विश्व पटल पर संयुक्त राज्य अमेरिका अंग्रेजी साम्राज्य का उतराधिकारी बना। इसी के साथ–साथ व्यक्तिगत पूंजी पहली बार विश्व पटल पर सामने आ गयी। पूर्व में यह पूंजी साम्राज्यों के पीछे छिपी थी परन्तु दूसरे विश्व युद्ध के बाद व्यक्तिगत पूंजी राज्य–राष्ट्र की परिधि से ऊपर आ गयी। विश्व–युद्ध में व्यक्तिगत पूंजी ने राष्ट्रों को काफी सहायता की थी और जीतने के बाद इन राष्ट्रों

ने व्यक्तिगत पूंजी को स्वतंत्र रूप से विकसित होने के लिये माहौल प्रदान किया।

उल्लेखनीय है कि एक तरफ दूसरे विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ (यू0एन0ओ0) बनाने के लिये विचार–विमर्श हो रहा था वहीं दूसरी ओर जो संस्थाएं विश्व पटल पर सामने आयीं जिनको आज के दौर में ब्रिटेन वुड संस्थाएं कहा जाता है, ये संस्थाएं विश्व–बैंक और आई0एम0एफ0 है। बाद में बीसवी सदी के अन्त तक एक नई संस्था विश्व व्यापार संगठन (डब्लू.टी.ओ.) बना। इन तीन संस्थाओं के द्वारा व्यक्तिगत पूंजी ने पूरे विश्व को संचालित करने के लिये पराराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य (ट्रान्सनेशन पैराडाईम) निर्मित करना प्रारम्भ किया। इस परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रों की अवधारणा लगभग समाप्त हो जाती हैं और व्यक्तिगत पूंजी जो कारपोरेशन या निगम के रूप में जानी जाती है विश्व में कहीं भी आने जाने के लिये स्वतंत्र हो गयी। उल्लेखनीय है कि दूसरे विश्व–युद्ध के बाद दो धाराएं विपरीत दिशा में चलीं। पहली धारा के अन्तर्गत राजनैतिक स्तर पर नये राष्ट्र बनने शुरू हुए जो यू0एन0ओ0 में शामिल होते गये और दूसरी ओर आर्थिक स्तर पर व्यक्तिगत पूंजी राष्ट्रों की अवधारणा को समाप्त करके केवल लाभ आधारित विश्व व्यवस्था के व्यापक निर्माण में लग गयी। इस नयी विश्व व्यवस्था को इन्हीं संस्थाओं के द्वारा नियंत्रित किया जाता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति के मानवाधिकार का मूल्य लगभग समाप्त हो चुका है। यदि कोई व्यक्ति व्यक्तिगत पूंजी को अधिक लाभ नहीं दिला सकता तो उसको निगम/कारपोरेशन या कम्पनी के द्वारा निकाल दिया जाता है। ऐसे में व्यक्ति के मानवाधिकार का कोई मतलब नहीं रह जाता।

बाजार के मुख्य लक्षण निजी पूँजी की उत्पत्ति, संवर्द्धन और संरक्षण है। चूँकि इसके लिए नैतिक और अनैतिक साधनों का कोई अन्तर नहीं रह जाता अतः इन उद्‌देश्यों की पूर्ति के लिए व्यक्ति, संस्थान और सरकार को प्रभावित करना बाजार का दूसरा मुख्य उद्‌देश्य होता है। बाजार के पक्ष में सरकारी नीतियाँ और कानून बनाना, निजी पूँजी का अन्य उद्‌देश्य होता है। चूँकि न्यायालय का काम न्यायिक समीक्षा का होता है अतः जब तब किसी कानून की संवैधानिकता प्रभावित न हो रही हो तब तक संसद द्वारा बनाये गये कानून को न्यायालय के द्वारा लागू करना बाध्यता होती है

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि बाजार का लक्षण व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा करना, पूंजी–पतियों या निजी कम्पनियों को बढ़ावा देना मुख्य रूप से है। सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा आजादी के तुरन्त बाद कामेश्वर सिंह के प्रकरण में (1952) एस0सी0आर0 889) 7 निजी सम्पत्ति के संबंध में यह निर्णय लिया गया कि यदि सरकार निजी सम्पत्ति को अधिग्रहण करती है तो उसको बाजार–दर के बराबर मुआवजा देना पड़ेगा। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को प्रथम

संविधान संशोधन के द्वारा उलट दिया गया परन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान–संशोधन को सही नहीं माना। यह प्रकरण 1967 तक सर्वोच्च न्यायालय में किसी न किसी रूप में आता रहा और 'गोलक नाथ' के मामले में (1967) 2 एस0सी0आर0 762) पीठ ने यह निर्णय दिया कि संसद को संविधान संशोधन के जरिये मूलभूत अधिकार समाप्त करने का अधिकार नहीं है। इसी के साथ बैंक नेशनलाइजेशन के प्रकरण में (1970) 3 एस0सी0आर0 530) 9 सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि सम्पत्ति रखने का अधिकार सारी स्वतंत्रताओं का आधार है। अतः बैंकों के अधिग्रहण के संबंध में उनको मुआवजा सही दर से मिलना चाहिए। इसके लिये मनमानी प्रक्रिया नहीं अपनायी जा सकती। इसी प्रकार प्रिवी पर्स के केस (1971) 3 एस0सी0आर0 9) 10 में सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि आजादी के पूर्व देशी रियासतों के राजाओं को प्रिवी पर्स (आजीवन भत्ता) मिलने का अधिकार भी निजी सम्पत्ति के दायरे में आता है और उसको मनमाने ढंग से सरकार के द्वारा नहीं समाप्त किया जा सकता।

तत्कालीन सरकार के द्वारा 24वें और 25वें संविधान–संशोधन में इन तीनों केसों में दिये गये निर्णयों को उलटने का प्रावधान किया गया और संविधान के अनुच्छेद 31 में 31–सी जोड़ा गया। 'केशवा नन्दन भारती' के प्रकरण में इन सारे मसलों को फिर से उठाया गया और इसकी सुनवाई के लिये 13 जजों की संविधान पीठ बैठी (1973) सप्लीमेन्ट एस0सी0आर0 पृष्ठ 1) 11। इस प्रकरण में 6 जजों ने केन्द्र सरकार के विरोध में मत व्यक्त किया तथा 6 जजों ने समर्थन में व्यक्त किया। 13वें ज़ज एच0आर0खन्ना ने अपना निर्णय अलग से दिया जिसमें उन्होंने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि संसद द्वारा 'मूलभूत तत्वों' का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। उन्होने यह कहा कि संविधान के कुछ 'मूलभूत तत्व' (बेसिक स्ट्रक्चर) हैं जिनको किसी भी हालत में समाप्त नहीं किया जा सकता। उल्लेखनीय है कि 44वें संविधान संशोधन के जरिये अनुच्छेद 31 को समाप्त कर दिया गया।

निजी सम्पत्ति के अतिरिक्त बाजार में निजी पूंजी के लाभ की प्रमुखता है। इस लाभ के लिये इन कम्पनियों को किसी भी स्तर पर जाने की छूट सरकारों द्वारा दी जा रही है।

नन्दनी सुन्दर बनाम स्टेट ऑफ छत्तीसगढ़, (2011) 7एस.सी.सी. पेज–547: ए.आई.आर. 2011 एस.सी. पेज–2839 14 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह पाया कि मौजूदा समय में विकास के नाम पर कुछ क्षेत्रों में भूमि के नीचे स्थित खनिजों को निकालने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों के द्वारा मनमाने तरीके अपनाये जा रहे हैं। ऐसा पाया गया कि इन प्राकृतिक संशोधनों के दोहन के लिए गरीब किसानों और आदिवासियों को अपने खेतों और घरों से उजाड़ा जा रहा है।

भारत के योजना आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों के एक समूह ने अपनी रिपोर्ट 'डेवेलपमेंट चैलेन्ज़ेज इन एक्स्ट्रीमिस्ट एफेक्टेड एरियाज' में यह मत व्यक्त किया गया है

''आजादी के बाद विकास के जिस प्रतिमान (पैराडाइम) को अपनाया गया, उसने समाज में हाशिए पर पड़े तबकों में पहले से मौजूद असंतोष को और भी ज्यादा बढ़ाया.... नीति–निर्माताओं द्वारा तय किए गये विकास के प्रतिमान को इन समुदायों पर थोप दिया गया... इससे इन लोगों को अपूरणीय क्षति हुई। इस विकास प्रतिमान की अधिकांश कीमत गरीबों ने चुकाई, लेकिन इसके फायदों के बड़े हिस्से पर समाज के प्रभुत्वशाली तबके का कब्जा होता रहा है और गरीबों को बहुत ही कम फायदा मिला है। दरअसल, विकास इन समुदायों की जरूरतों के प्रति असंवेदनशील ही रहा है। इस कारण इन्हें अनिवार्य रूप से विस्थापन का सामना करना पड़ा है और इसने इन्हें अमानवीय जिन्दगी जीने को मजबूर किया है। खासतौर पर आदिवासियों के मामले में इसने उनके सामाजिक संगठन, सांस्कृतिक पहचान और संसाधनों को नष्ट किया है... इन सबके कारण इनका शोषण और आसान हो गया है। विकास के तरीके और इसके क्रियान्वयन ने नौकरशाही के भ्रष्ट व्यवहार और ठेकेदारों, बिचौलियों, व्यापारियों और व्यापक समाज के लोभी तबकों द्वारा किए जाने वाले खूंखार शोषण को और भी ज्यादा बढ़ाया है जो इनके संसाधनों पर कब्जा करने और उनकी गरिमा का हनन करने पर उतारू हैं। (पैरा 1, 18, 1 और 1, 18, 2)

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नन्दनी सुन्दर के प्रकरण में उक्त रिपोर्ट को आधार बनाया और बढ़ते बाजार के दुःखद पहलुओं की तरफ इशारा किया। सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा दी गयी कुछ टिप्पणियाँ निम्न हैं:–

'भारत के नव–उदारवादी विकास प्रतिमान के पुराने और नये समर्थकों द्वारा अमूमन बहुत ही खतरनाक अंदाज में तर्क दिया जाता है कि जब तक प्राकृतिक संसाधनों का तेजी से दोहन करके विकास नहीं किया जायेगा, तब तक भारत न तो वैश्विक स्तर पर होड़ कर पायेगा और न ही इतनी सम्पदा का निर्माण कर पायेगा जिसके बगैर गरीबी, अशिक्षा, भूख और गन्दगी जैसी अंतहीन और भयावह लगने वाली समस्याओं का समाधान हो पाये। इस बात पर कई मर्तबा वाद–विवाद होता है कि इस तरह से प्राकृतिक संसाधनों का दोहन उस क्षेत्र के पर्यावरण या सामाजिक संरचना को चलाये रखने (सस्टेनेबुल) की स्थिति में है या नहीं, पर इसे फौरन ही दबा दिया जाता है। इस सम्बन्ध में न तो नीति–निर्माता और न ही भारत के अभिजन, जो विस्थापित और बेदखल लोगों की अमानवीय पीड़ा को नजरंदाज कर देते है, कोई विश्वसनीय जवाब नहीं देते हैं। इससे भी बुरी बात यह है कि ये इस ऐतिहासिक प्रमाण की उपेक्षा

करते हैं कि प्राकृतिक संसाधनों की लूट–खसोट पर निर्भर विकास के प्रतिमान अक्सर राज्य को असफलता की ओर ले जाते हैं। इस नियति के रास्ते लाखों लोगों को असहाय तकलीफों और निराशा की जिन्दगी में धकेल देते हैं।' (पैरा–10)

राज्य में सीधे तौर पर संवैधानिक मानकों और मूल्यों का उल्लंघन करके पूंजीवाद के लुटेरे रूपों को, अमूमन जिसने खनन पर आधारित उद्योगों के आसपास गहरी जड़ें जमा ली हैं समर्थन और बढ़ावा दिया जाता है। हम देखते हैं कि भारत के संसाधन–सम्पन्न क्षेत्रों में ऐतिहासिक तौर पर और आज भी सामाजिक अशांति उत्पन्न करने वाली बहुत सारी घटनाएं होती रहती हैं। विडम्बना यह है कि इन्हीं इलाकों में मानव विकास का स्तर बहुत नीचा है। यह तर्क कि इस तरह का विकास प्रतिमान आवश्यक है, और इसके ये परिणाम अपरिहार्य है, बहुत ही खोखला है। संविधान में स्पष्ट शब्दों में यह मांग की गई है कि राज्य को अनथक इस बात की कोशिश करनी चाहिए कि उसके नागरिकों के बीच बंधुत्व को बढ़ावा मिले। इस प्रक्रिया में हर नागरिक की गरिमा की हिफाजत होनी चाहिए, उसे मजबूती और बढ़ावा मिलना चाहिए। संविधान के निदेशक सिद्धांतों को आधार बनाकर न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटाया जा सकता, इस पर भी उनका देश का शासन चलाने में बुनियादी महत्व है। ये राज्य को यह निर्देश देते हैं कि वह समुदाय के भौतिक संसाधनों का उपयोग सभी की सामान्य भलाई के लिये करें। हमारा संविधान सभी नागरिकों के लिये– सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक, पूर्ण न्याय का वायदा करता है। इस तरह का वायदा, अपने कमजोरतम रूप में भी उन नीतियों की अनदेखी नहीं कर सकता है, जो साफ तौर पर जनसंख्या के एक बड़े हिस्से को जानबूझ कर कष्ट पहुंचाते हैं। (पैरा–12)

निजी क्षेत्र द्वारा संसाधनों का तेजी से दोहन करने की नीतियां लाभ और उसकी कीमत, बिना समान वितरण की किसी विश्वसनीय वचनबद्धता व पर्यावणीय सस्टेनिबिलिटी के अनिवार्य तौर पर उन सिद्धांतों का उल्लंघन करती है जिन्हें 'शासन की बुनियाद' माना जाता है और जब इतने बड़े पैमाने पर इस तरह का उल्लंघन होता है यह अनुच्छेद 14 तथा अनुच्छेद 21 में दिये गये प्रावधानों का उल्लंघन करता है। गौरतलब है कि अनुच्छेद 14 में कानून के समक्ष समानता और कानून की समान सुरक्षा और अनुच्छेद 21 में जीवन की गरिमा का प्रावधान दिया गया है। इसके अलावा खनन उद्योग, जिन्हें कुछ स्थानों पर खनन माफिया भी कहा जाता है, और राज्य के कुछ एजेंटों का गठजोड़, नैतिक अधिकार को प्रभावहीन बना देता है। यह अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 को और ज्यादा कमजोर कर देता है। जैसा कि योजना आयोग की विशेषज्ञ समिति ने भी स्वीकार किया है कि यदि राज्य इस तरह की उथल–पुथल को सिर्फ कानून और व्यवस्था की समस्या मानकर, स्थानीय लोगों के खिलाफ बड़े पैमाने

पर हिंसक कदम उठाता है, तो इससे सिर्फ ज्यादा विद्रोह और हिंसा पैदा होगी।....... (पैरा–13)

मानो इतना ही काफी नहीं था, इस अंधेरे से सरकारी कार्रवाईयों की एक और खतरनाक प्रवृत्ति के उभरने का संकेत मिलने लगा है जो कि अब हमारे नीति–निर्माता को आच्छादित करने लगी है। वे संवैधानिक विवेक और मूल्यों से भी तेजी से मुंह फेरने लगे हैं। एक ओर निजी क्षेत्र को टैक्स छूट के रूप में लगातार सब्सिडी दे रहा है, वहीं वह यह भी कह रहा है कि उसके पास इतना राजस्व नहीं है कि वह सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों द्वारा गरीबों की मदद करने के अपने दायित्वों को पूरा कर सके। दूसरी ओर, राज्य गरीबों के असंतोष और गुस्से का दमन करने के लिये गरीब युवकों का ही सहारा ले रहा है और उन्हें बंदूक थमा रहा है।....... (पैरा–15)

ऐसा लगता है कि राज्य की सुरक्षा और आर्थिक नीति के बारे में फैसला करने वाले लोगों का नया मंत्र यही है कि अमीरों को टैक्स में छूट दो और गरीब युवकों के एक हिस्से को बंदूक, ताकि गरीब आपस में ही लड़ते रहें। लगता है यह एक ऐसे राष्ट्र के विकास का बड़ा स्वप्न (विजन) है जिसने खुद को प्रभुसत्ता सम्पन्न, सेकुलर, समाजवादी और लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में संगठित किया है। संविधान का दर्शन और मूल्य राज्य को यह सकारात्मक दायित्व देता है कि वह हर नागरिक की गरिमा को सुनिश्चित करे। इसलिये स्वाभाविक रूप से यह सवाल सामने आता है कि क्या सत्ताधारी नीति–निर्माता संविधान के दर्शन, मूल्यों और सीमाओं से निर्देशित हो रहे हैं?....(पैरा–16)

बाजार की यह नीति और प्रक्रिया लगातार लागू है और लोहा, तांबा, कोयला, एल्मुनियम, गैस आदि को जमीन से निकालने और बेचने के लिये इन कम्पनियों को हर प्रकार की सुविधा केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा दी जा रही है। इसके अन्तर्गत गांव के गांव और पहाड़ियां उजाड़ी जा रही है और सरकारों द्वारा इन जमीनों का अधिग्रहण करके इनका मालिकाना हक इन्हीं कम्पनियों को दिया जा रहा है। इस काम में केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा पुलिस और अर्धसैनिक बलों का भरपूर इस्तेमाल किया जा रहा है। इन अधिग्रहणों के द्वारा उजाड़े गये गांव और पहाड़ो से लाखों लोग बेघर हो रहे हैं जिनको विकास के नाम पर विकास और राष्ट्र विरोधी बताया जा रहा है। ऐसी स्थिति में बाजार के बढ़ते प्रभाव के कारण आम जन के जीवित रहने के अधिकार अपने आप समाप्त होते जा रहे हैं।

बाजार और अनैतिक पूंजी

अभी हाल में पूंजी उत्पादन का एक नया तरीका पूंजीपतियों द्वारा निकाला

गया है जिसमें सार्वजनिक बैंकों के अफसर भी सम्मिलित है। इस मॉडल के अन्तर्गत कोई कम्पनी बैंकों से कर्ज लेती है परन्तु उसका भुगतान नहीं करती। वापस करने की अवधि समाप्त होने पर इस कम्पनी को रिस्ट्रक्चरिंग के नाम पर पुनः एक बड़ी रकम कर्जे में दे दी जाती है। यह रकम जब अत्यधिक हो जाती है तो उसको अनुत्पादक पूंजी यानी एन0पी0ए0 बता दिया जाता है और बैंक द्वारा उस रकम को बट्टे–खाते में डाल दिया जाता है। आज की हालात में लाखों करोडों रूपये का एन0पी0ए0 हो गया है और ऐसी उम्मीद की जाती है कि यह अगले वर्ष तक 2 से 3 लाख रूपये और बढ़ जायेगा।

बाजार और सरकारी नीतियाँ

बाजार के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने अभी हाल में अपनी न्यायिक प्रक्रिया में बदलाव किया है। पूर्व में सर्वोच्च न्यायालय का यह मत था कि आर्थिक क्षेत्र में सरकार द्वारा बनाई गयी नीतियों में कोई दखल न दिया जाये। परन्तु भ्रष्टाचार एवं निहित स्वार्थ के कारणों से ऐसा देखा गया कि बाजार की शक्तियाँ सरकारी नीतियों को अपने मन–माफिक किसी भी स्तर तक ले जा रही है। बाल्को (2002) 2 एस.सी.सी. पेज–333 15 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यही मत अपनाया गया था कि आर्थिक नीतियों को बनाने और लागू करने के क्षेत्र को सरकार पर छोड़ दिया जाये। इसी कारण बाल्को कम्पनी के निजी करण के समय वहाँ के कर्मचारियों के दखल देने के अधिकार को सर्वोच्च न्यायालय ने नहीं माना परन्तु अब सर्वोच्च न्यायालय ने अपना मत बदल दिया है। इस विषय में सर्वाधिक महत्वपूर्ण निर्णय पाँच जजों की संवैधानिक पीठ के द्वारा नेच्यूरल रिसोर्सेज एलोकेशन (2012) 10 एस.सी. सी पेज–1 16 के निर्णय में दिया है। इसके अतिरिक्त गोवा फांउण्डेशन के दोनों मामले, (2014) 6 एस.सी.सी. पेज–59017, (2018) 4 एस.सी.सी. पेज–218 18, और आज़ार इन्टरप्राइज़ेज (2018) 12 एस.सी.सी. पेज–756 19 के मामलों में उक्त न्यायिक प्रक्रिया के बारे में स्पष्ट होता है। इन निर्णयों से बाजार के दुष्प्रभाव को सीमित करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने अब निम्न मत अपना रखा है :–

1. आर्थिक मामलों की नीतियों के सम्बन्ध में बनाने और लागू करने का अधिकार सरकारों का है।

2 प्राकृतिक संसाधन के दोहन के संबंध में ठेका या बेचने की दशा में ये आवश्यक नहीं है कि टेण्डर की प्रक्रिया अपनायी जाये।

3. जहाँ पर प्राकृतिक संसाधन में टेण्डर की प्रक्रिया नहीं अपनायी गयी है उसको न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। ये चुनौती विशेष कर उन परिस्थितियों

में दी जा सकती है जबकि प्राकृतिक संसाधनों का ठेका या बेचना व्यापारिक कारणों के लिए अधिक लाभ कमाने के लिए निजी हाथों में दिया जा रहा हो।

4. यदि इन प्राकृतिक संसाधनों का दोहन सामाजिक न्याय और जनहित में किया जा रहा है तो इसमें टेण्डर प्रक्रिया अपनाना आवश्यक नहीं है। सामाजिक न्याय और जनहित में गरीबों के घर बनाना इसका एक उदाहरण है।

5. व्यक्तिगत निजी संस्थानों को प्राकृतिक संसाधन के दोहन की दशा में संविधान के अनुच्छेद 14 में दिये गये सिद्धान्तों का पालन करना होगा।

भारत में बाजार निर्माण तीन चरणों में हुआ पहले चरण में निजी पूंजी को बचाने का काम जाने–अन्जाने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया गया। आजादी के बाद केन्द्र सरकार द्वारा निजी भूमि का अधिग्रहण लगभग बिना मूल्य के किया जा रहा था। इस प्रक्रिया से निजी भूमि सार्वजनिक भूमि में बदल रही थी। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह निर्णय लिया गया कि निजी भूमि के अधिग्रहण में उसका मुआवजा 'तर्क संगत' होगा जो लगभग बाजार मूल्य के बराबर था। दूसरे अर्थो में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निजी पूंजी को बचाने का काम किया गया। यह चरण 1973 में केशवा नंदन भारती के मामले में समाप्त हुआ। निजी पूंजी अब संवैधानिक अधिकार नहीं रह गयी परन्तु यह कानूनी अधिकार होने के कारण संविधान–सम्मत होनी चाहिए। आज यदि सरकार चाहे तो काननू बनाकर "कुछ" भी निजी पूंजी को दे सकती है। इसकी चुनौती केवल संवैधानिकता के क्षेत्र में ही की जा सकती है। दूसरे चरण में निजी पूंजी को 1991 के बाद नैतिक–अनैतिक और सामाजिक न्याय के उद्देश्यों से मुक्त कर दिया गया। अब तीसरे चरण में कानून बनाकर देश के प्राकृतिक संसाधन "विकास" के लिए निजी पूंजी को दिया जा रहे हैं इसमें मुख्य भूमिका केन्द्र और राज्य सरकारों की है जिनके पास ताकत की अंतिम पूंजी होती है और सामान्य नागरिक "विकास विरोधी" हो जाते है। इस परिस्थिति में मानवाधिकार के सरोकार 'विकास' के सन्दर्भ में लगभग समाप्त हो जाते हैं। इस स्थिति में सभी को यह सोचने का समय आ गया है कि "विकास क्या हो, कैसा हो और इसमें नागरिकों का कोई अधिकार रहेगा या नहीं।

संदर्भ:

1. हिन्द स्वराज पेज 20–21
2. हिन्द स्वराज पेज 22
3. हिन्द स्वराज पेज 78–79
4. डेविड सी0 कार्टन– "जब दुनिया में निगमों का राज चले", पृष्ठ 6
5. डेविड सी0 कार्टन– "जब दुनिया में निगमों का राज चले", पृष्ठ 9

6. डेविड सी0 कार्टन– ''जब दुनिया में निगमों का राज चले'', पृष्ठ 9
7. कामेश्वर सिंह के प्रकरण में (1952) एस0सी0आर0 889)
8. 'गोलक नाथ' के मामले में (1967) 2 एस0सी0आर0 762
9. बैंक नेशनलाइजेशन के प्रकरण में (1970) 3 एस0सी0आर0 530
10. प्रिवी पर्स के केस (1971) 3 एस0सी0आर0 9) 10
11. 'केशवा नन्दन भारती' (1973) सप्लीमेन्ट एस0सी0आर0 पृष्ठ 1
12. (1973) सप्लीमेन्ट एस0सी0आर0 पृष्ठ 1
13. चरनजीत लाल साहू बनाम भारत सरकार (1990) 1 एस0सी0सी0 पृष्ठ 613
14. यूनियन कार्बाइड बनाम भारत सरकार (1991) 4 एस0सी0सी0 पृष्ठ 584
15. बाल्को (2002) 2 एस.सी.सी. पेज–333
16. नेच्यूरल रिसोर्सेज एलोकेशन (2012) 10 एस.सी.सी पेज–1
17 (2014) 6 एस.सी.सी. पेज–590
18. (2018) 4 एस.सी.सी. पेज–218
19. आज़ार इन्टरप्राइज़ेज (2018) 12 एस.सी.सी. पेज–756

****

खण्ड VIII

मानव अधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र

मनुष्य अपने सबसे अच्छे रूप में सभी जीवों में सबसे उदार होता है, लेकिन यदि कानून एवं न्याय न हो तो वह सबसे खराब बन जाता है

—अरस्तु

मानव अधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा-पत्र

1993-2018
एन एच आर सी • पच्चीस वर्ष • असंख्य आशाएं
NHRC • Twenty Five Years • Billion Hopes

अनुच्छेद 1.

सभी मनुष्यों को गौरव और अधिकारों के मामले में जन्मजात स्वतन्त्रता और समानता प्राप्त है। उन्हें बुद्धि और अन्तरात्मा की देन प्राप्त है और परस्पर उन्हें भाईचारे के भाव से बर्ताव करना चाहिए।

अनुच्छेद 2.

सभी को इस घोषणा में सन्निहित सभी अधिकारों और आज़ादियों को प्राप्त करने का हक़ है और इस मामले में जाति, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीति या अन्य विचार–प्रणाली, किसी देश या समाज विशेष में जन्म, सम्पत्ति या किसी प्रकार की अन्य मर्यादा आदि के कारण भेदभाव का विचार न किया जाएगा।

इसके अतिरिक्त, चाहे कोई देश या प्रदेश स्वतन्त्र हो, संरक्षित हो या स्त्रशासन रहित हो या परिमित प्रभुसत्ता वाला हो, उस देश या प्रदेश की राजनैतिक, क्षेत्रीय या अन्तरराष्ट्रीय स्थिति के आधार पर वहां के निवासियों के प्रति कोई फ़र्क न रखा जाएगा।

अनुच्छेद 3.

प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वाधीनता और वैयक्तिक सुरक्षा का अधिकार है।

अनुच्छेद 4.

कोई भी गुलामी या दासता की हालत में न रखा जाएगा, गुलामी–प्रथा और गुलामों का व्यापार अपने सभी रूपों में निषिद्ध होगा।

अनुच्छेद 5.

किसी को भी शारीरिक यातना न दी जाएगी और न किसी के भी प्रति निर्दय,

अमानुषिक या अपमानजनक व्यवहार होगा।

अनुच्छेद 6.

हर किसी को हर जगह कानून की निगाह में व्यक्ति के रूप में स्वीकृति–प्राप्ति का अधिकार है।

अनुच्छेद 7.

कानून की निगाह में सभी समान हैं और सभी बिना भेदभाव के समान कानूनी सुरक्षा के अधिकारी हैं। यदि इस घोषणा का अतिक्रमण करके कोई भी भेद–भाव किया जाया उस प्रकार के भेद–भाव को किसी प्रकार से उकसाया जाया, तो उसके विरुद्ध समान संरक्षण का अधिकार सभी को प्राप्त है।

अनुच्छेद 8.

सभी को संविधान या कानून द्वारा प्राप्त बुनियादी अधिकारों का अतिक्रमण करने वाले कार्यों के विरुद्ध समुचित राष्ट्रीय अदालतों की कारगर सहायता पाने का हक है।

अनुच्छेद 9.

किसी को भी मनमाने ढंग से गिरफ्तार, नजरबन्द या देश–निष्कासित न किया जाएगा।

अनुच्छेद 10.

सभी को पूर्णतः समान रूप से हक है कि उनके अधिकारों और कर्तव्यों के निश्चय करने के मामले में और उन पर आरोपित फ़ौजदारी के किसी मामले में उनकी सुनवाई न्यायोचित और सार्वजनिक रूप से निरपेक्ष एवं निष्पक्ष अदालत द्वारा हो।

अनुच्छेद 11.

(1) प्रत्येक व्यक्ति, जिस पर दण्डनीय अपराध का आरोप किया गया हो, तब तक निरपराध माना जाएगा, जब तक उसे ऐसी खुली अदालत में, जहां उसे अपनी सफाई की सभी आवश्यक सुविधाएं प्राप्त हों, कानून के अनुसार अपराधी न सिद्ध कर दिया जाय।

(2) कोई भी व्यक्ति किसी भी ऐसे कृत या अकृत (अपराध) के कारण उस दण्डनीय अपराध का अपराधी न माना जाएगा, जिसे तत्कालीन प्रचलित राष्ट्रीय या

अन्तरराष्ट्रीय कानून के अनुसार दण्डनीय अपराध न माना जाए और न उससे अधिक भारी दण्ड दिया जा सकेगा, जो उस समय दिया जाता जिस समय वह दण्डनीय अपराध किया गया था।

अनुच्छेद 12.

किसी व्यक्ति की एकान्तता, परिवार, घर या पत्रव्यवहार के प्रति कोई मनमाना हस्तक्षेप न किया जाएगा, न किसी के सम्मान और ख्याति पर कोई आक्षेप हो सकेगा। ऐसे हस्तक्षेप या आक्षेपों के विरुद्ध प्रत्येक को कानूनी रक्षा का अधिकार प्राप्त है।

अनुच्छेद 13.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक देश की सीमाओं के अन्दर स्वतन्त्रतापूर्वक आने, जाने और बसने का अधिकार है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को अपने या पराये किसी भी देश को छोड़ने और अपने देश वापस आने का अधिकार है।

अनुच्छेद 14.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को सताये जाने पर दूसरे देशों में शरण लेने और रहने का अधिकार है।

(2) इस अधिकार का लाभ ऐसे मामलों में नहीं मिलेगा जो वास्तव में गैर–राजनीतिक अपराधों से सम्बन्धित हैं, या जो संयुक्त राष्ट्रों के उद्देश्यों और सिद्धान्तों के विरुद्ध कार्य हैं।

अनुच्छेद 15.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी राष्ट्र–विशेष को नागरिकता का अधिकार है।

(2) किसी को भी मनमाने ढंग से अपने राष्ट्र की नागरिकता से वंचित न किया जाएगा या नागरिकता का परिवर्तन करने से मना न किया जाएगा।

अनुच्छेद 16.

(1) बालिग स्त्री–पुरुषों को बिना किसी जाति, राष्ट्रीयता या धर्म की रुकावटों के आपस में विवाह करने और परिवार को स्थापन करने का अधिकार है। उन्हें विवाह के विषय में वैवाहिक जीवन में तथा विवाह विच्छेद के बारे में समान अधिकार हैं।

(2) विवाह का इरादा रखने वाले स्त्री–पुरुषों की पूर्ण और स्वतन्त्र सहमति पर ही विवाह हो सकेगा।

(3) परिवार समाज की स्वाभाविक और बुनियादी सामूहिक इकाई है और उसे समाज तथा राज्य द्वारा संरक्षण पाने का अधिकार है।

अनुच्छेद 17.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को अकेले और दूसरों के साथ मिलकर सम्मति रखने का अधिकार है।

(2) किसी को भी मनमाने ढंग से अपनी सम्मति से वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 18.

प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अन्तरात्मा और धर्म की आजादी का अधिकार है। इस अधिकार के अन्तर्गत अपना धर्म या विश्वास बदलने और अकेले या दूसरों के साथ मिलकर तथा सार्वजनिक रूप में अथवा निजी तौर पर अपने धर्म या विश्वास को शिक्षा, क्रिया, उपासना, तथा व्यवहार के द्वारा प्रकट करने की स्वतन्त्रता है।

अनुच्छेद 19.

प्रत्येक व्यक्ति को विचार और उसकी अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिकार है। इसके अन्तर्गत बिना हस्तक्षेप के कोई राय रखना और किसी भी माध्यम के जरिए से तथा सीमाओं की परवाह न कर के किसी की सूचना और धारणा का अन्वेषण, ग्रहण तथा प्रदान सम्मिलित है।

अनुच्छेद 20.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को शान्ति–पूर्ण सभा करने या समिति बनाने की स्वतन्त्रता का अधिकार है।

(2) किसी को भी किसी संस्था का सदस्य बनने के लिए मज़बूर नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद 21.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश के शासन में प्रत्यक्ष रूप से या स्वतन्त्र रूप से चुने गए प्रतिनिधियों के जरिए हिस्सा लेने का अधिकार है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की सरकारी नौकरियों को प्राप्त करने का समान अधिकार है।

(3) सरकार की सत्ता का आधार जनता की इच्छा होगी। इस इच्छा का प्रकटन समय–समय पर और असली चुनावों द्वारा होगा। ये चुनाव सार्वभौम और समान मताधिकार द्वारा होंगे और गुप्त मतदान द्वारा या किसी अन्य समान स्वतन्त्र मतदान पद्धति से कराए जाएंगे।

अनुच्छेद 22.

समाज के एक सदस्य के रूप में प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के उस स्वतन्त्र विकास तथा गौरव के लिए–जो राष्ट्रीय प्रयत्न या अन्तरराष्ट्रीय सहयोग तथा प्रत्येक राज्य के संगठन एवं साधनों के अनुकूल हो–अनिवार्यतः आवश्यक आर्थिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक अधिकारों की प्राप्ति का हक है।

अनुच्छेद 23.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को काम करने, इच्छानुसार रोजगार के चुनाव, काम की उचित और सुविधाजनक परिस्थितियों को प्राप्त करने और बेकारी से संरक्षण पाने का हक है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को समान कार्य के लिए बिना किसी भेदभाव के समान मज़दूरी पाने का अधिकार है।

(3) प्रत्येक व्यक्ति को जो काम करता है, अधिकार है कि वह इतनी उचित और अनुकूल मजदूरी पाए, जिससे वह अपने लिए और अपने परिवार के लिए ऐसी आजीविका का प्रबन्ध कर सके, जो मानवीय गौरव के योग्य हो तथा आवश्यकता होने पर उसकी पूर्ति अन्य प्रकार के सामाजिक संरक्षणों द्वारा हो सके।

(4) प्रत्येक व्यक्ति को अपने हितों की रक्षा के लिए श्रमजीवी संघ बनाने और उनमें भाग लेने का अधिकार है।

अनुच्छेद 24.

प्रत्येक व्यक्ति को विश्राम और अवकाश का अधिकार है। इसके अन्तर्गत काम के घंटों की उचित हदबन्दी और समय–समय पर मज़दूरी सहित छुट्टियां सम्मिलित है।

अनुच्छेद 25.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे जीवनस्तर को प्राप्त करने का अधिकार है जो उसे और उसके परिवार के स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिए पर्याप्त हो। इसके अन्तर्गत खाना, कपड़ा, मकान, चिकित्सा–सम्बन्धी सुविधाएं और आवश्यक सामाजिक सेवाएं सम्मिलित है। सभी को बेकारी, बीमारी, असमर्थता, वैधव्य, बुढापे या अन्य किसी ऐसी परिस्थिति में आजीविका का साधन न होने पर जो उसके काबू के बाहर हो, सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है।

(2) जच्चा और बच्चा को खास सहायता और सुविधा का हक है। प्रत्येक बच्चे को चाहे वह विवाहिता माता से जन्मा हो या अविवाहिता से, समान सामाजिक संरक्षण प्राप्त होगा।

अनुच्छेद 26.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है। शिक्षा कम से कम प्रारम्भिक और बुनियादी अवस्थाओं में निःशुल्क होगी। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य होगी। टेक्निकल, यांत्रिक और पेशों–सम्बन्धी शिक्षा साधारण रूप से प्राप्त होगी और उच्चतर शिक्षा सभी को योग्यता के आधार पर समान रूप से उपलब्ध होगी।

(2) शिक्षा का उद्देश्य होगा मानव व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और मानाव अधिकारों तथा बुनियादी स्वतन्त्रताओं के प्रति सम्मान को पुष्टि। शिक्षा द्वारा राष्ट्रों, जातियों अथवा धार्मिक समूहों के बीच आपसी सद्भावना, सहिष्णुता और मैत्री का विकास होगा और शांति बनाए रखने के लिए संयुक्त राष्ट्रों के प्रयत्नों के आगे बढ़ाया जाएगा।

(3) माता–पिता को सबसे पहले इस बात का अधिकार है कि वे चुनाव कर सकें कि किस किस्म की शिक्षा उनके बच्चों को दी जाएगी।

अनुच्छेद 27.

(1) प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रतापूर्वक समाज के सांस्कृतिक जीवन में हिस्सा लेने, कलाओं का आनन्द लेने, तथा वैज्ञानिक उन्नति और उसकी सुविधाओं में भाग लेने का हक है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी ऐसी वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक कृति में उत्पन्न नैतिक और आर्थिक हितों की रक्षा का अधिकार है जिसका रचयिता वह स्वयं हो।

अनुच्छेद 28.

प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी सामाजिक और अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था की प्राप्ति का अधिकार है जिसमें इस घोषणा में उल्लिखित अधिकारों और स्वतन्त्रताओं को पूर्णतः प्राप्त किया जा सके।

अनुच्छेद 29.

(1) प्रत्येक व्यक्ति का उसी समाज के प्रति कर्तव्य है जिसमें रहकर उसके व्यक्तित्व का स्वतन्त्र और पूर्ण विकास संभव हो।

(2) अपने अधिकारों और स्वतन्त्रताओं का उपयोग करते हुए प्रत्येक व्यक्ति केवल ऐसी ही सीमाओं द्वारा बद्ध होगा, जो कानून द्वारा निश्चित की जाएंगी और जिनका एकमात्र उद्देश्य दूसरों के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं के लिये आदर और समुचित स्वीकृति की प्राप्ति होगा तथा जिनकी आवश्यकता एक प्रजातन्त्रात्मक समाज में नैतिकता, सार्वजनिक व्यवस्था और सामान्य कल्याण की उचित आवश्यकताओं को पूरा करना होगा।

(3) इन अधिकारों और स्वतन्त्रताओं का उपयोग किसी प्रकार से भी संयुक्त राष्ट्रों के सिद्धान्तों और उद्देश्यों के विरुद्ध नहीं किया जायगा।

अनुच्छेद 30.

इस घोषणा में उल्लिखित किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए जिससे यह प्रतीत हो कि किसी भी राज्य, समूह या व्यक्ति की किसी ऐसे प्रयत्न में संलग्न होने या ऐसा कार्य करने का अधिकार है, जिसका उद्देश्य यहां बताये गए अधिकारों और स्वतन्त्रताओं में किसी का भी विनाश करना हो।

****

हजारों दिलों को एक ही दिए से, बिना उसके प्रकाश को कम किये जलाया जा सकता है। खुशी बांटने से कभी खुशी कम नहीं होती।

—गौतम बुद्ध

सलाहकार मण्डल के सदस्यों की पते सहित सूची

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय
पिपरी, वर्धा, महाराष्ट्र–442001

प्रो. फैज़ान मुस्तफा
कुलपति, नलसार यूनिवर्सिटी ऑफ लॉ
पो. बो. नं.–1, जस्टिस सिटी, समेरपेट,
हैदराबाद, तेलंगाना–500101

प्रो. नन्दकिशोर आचार्य
सुथारों की बड़ी गुवाड़,
बीकानेर–334005 (राजस्थान)

प्रो. आनन्द प्रकाश, दिल्ली
प्रोफेसर, मनोविज्ञान
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110007

श्री राहुल देव
190, नेशनल मीडिया सेन्टर,
शंकर चौक, एन.एच.–8,
गुडगांव – 122002 (हरियाणा)

लेखकों की पते सहित सूची

डॉ. कृपाशंकर चौबे
प्रोफेसर एवं प्रभारी
क्षेत्रीय केंद्र, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
आईए 290, सेक्टर–3, साल्टलेक, कोलकाता–97

डॉ. सुप्रिया पाठक
सहायक प्रोफेसर एवं प्रभारी विभागाध्यक्ष, स्त्री अध्ययन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,
वर्धा–442001 (महाराष्ट्र)

डॉ. आकांक्षा
स्त्री अध्ययन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,
वर्धा–442001 (महाराष्ट्र)

सुश्री नम्रता वर्मा
बी0 36/38 ए, कबीर नगर,
दुर्गाकुण्ड, वाराणसी –221005 (उ.प्र.)

श्री कृष्ण कुमार चौधरी
क्वार्टर न. 20, टाइप– iv, आयकर कॉलोनी,
भरत नगर, भोपाल– 462039 (म. प्र.)

श्री राम शरण तिवारी
डी–12, डीडीए फ्लैट्स, बिन्दापुर,
द्वारका, उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059

डॉ. अर्चना मिश्रा
प्राचार्य, राजकीय स्नातकोतर महाविद्यालय,
सैक्टर–1, पंचकूला – 134114 (हरियाणा)

प्रो. प्रतिभा
आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
इतिहास विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय
उदयपुर – 313001 (राजस्थान)

सुश्री श्री अग्निहोत्री, एडवोकेट
32, सरोजनी देवी लेन, मकबूलगंज,
लखनऊ– 226001 (उ.प्र.)

डॉ. विजय लक्ष्मी बरार
सह–आचार्य,
सेंटर फॉर मणिपुर स्टडीज,
मणिपुर वि.वि., इम्फाल–795003

डॉ. भवानी शंकर
ई–10, शंकरनगर, बीडीए,
कॉलोनी शिवाजीनगर, भोपाल–462016

डॉ. राजेश कुमार शर्मा
एल 7/ए, महात्मा गांधी मार्ग,
राजस्थान वि.वि. कैम्पस,
राजस्थान वि.वि., जयपुर–302004 (राज.)

सुश्री फरहनाज़ खान
सहायक प्रोफेसर,
अल्पाइन कॉलेज, उज्जैन

डॉ. राजकुमार
बी–5, राममोहन नगर,
सिकन्दरा–282007 आगरा (उ.प्र.)

डॉ. सुदर्शन वर्मा
अध्यक्ष, विधि विभाग
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर वि.वि.,
रायबरेली–226025 (उ.प्र.)

श्री नीतेश कुमार चतुर्वेदी
कटहरी बाग, हूमायूंपुर नार्थ,
गोरखनाथ, गोरखनाथ–273001 (उ.प्र.)

श्री के.पी. सिंह, आईपीएस
पुलिस महानिदेशक
मानव अधिकार आयोग, हरियाणा
प्लॉट नं.–1, निर्माण भवन,
सेक्टर–33ए, चंडीगढ़–160020

डॉ. तुहिना जोहरी
एवं
डॉ. विश्वास पटेल
राजनीति विज्ञान विभाग
सेंट एलयोसिस कॉलेज,
जबलपुर–482004 (म.प्र.)

डॉ. आलोक चांटिया
12/119, इंदिरा नगर,
लखनऊ–226016 (उ.प्र.)

डॉ. कमलेश कुमार
59, मिश्रराना,
मैनपुरी–205001 (उ.प्र.)

डॉ. शीलेन्द्र कुमार
अधिवक्ता,
सी–16, एल पार्क, महानगर एक्सटेंशन,
लखनऊ–226006 (उ.प्र.)

ISSN : 0973-7588

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत
मानव अधिकार भवन, ब्लॉक-सी,
जी.पी.ओ. कॉम्प्लेक्स, आई. एन. ए., नई दिल्ली - 110023
ई-मेल : covdnhrc@nic.in वेबसाइट : www.nhrc.nic.in

कवर डिजाइन : बोर्ड मारकर्स
9990224091